स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAGO-119

मानव भूगोल में मॉडल सिद्धान्त नियम

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAGO-119

मानव भूगोल में मॉडल, सिद्धान्त, नियम

पाठ्यक्रम

इकाई–1	भूगोल में मॉडल एवं प्रतिरूप, मात्रात्मक क्रांति	4
इकाई–2	तन्त्र की संकल्पना, तन्त्र के प्रकार, भूगोल में तन्त्र विश्लेषण	26
इकाई–3	केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त, लॉश का केन्द्र स्थल सिद्धान्त, वाल्टर क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त	35
इकाई–4	जिफ का कोटि आकार नियम एवं प्राथमिक नगर की संकल्पना	43
इकाई–5	सीमाएं, सीमान्त क्षेत्र के नियम	50
इकाई–6	भू–राजनीतिक सिद्धान्त रिमलैण्ड संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन, हृदय–स्थल की संकल्पना	68
इकाई–7	रोस्टोव का आर्थिक वृद्धि सिद्धान्त, स्मिथ का स्थानिक सीमा का सिद्धान्त	85
इकाई–8	औद्योगिक अवस्थिति सिद्धाँत	95
इकाई–9	उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्त–बेवर का सिद्धान्त, बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त, समन्वित सिद्धान्त	109
इकाई–10	कृषि के स्थानीयकरण के सिद्धान्त–वानथ्यूनेन का सिद्धान्त, कृषि अवस्थित के आधुनिक सिद्धान्त	124
इकाई–11	फ्रीडमैन का केंद्र परिधि मॉडल, पैराक्स एवं बाउडविले का विकास ध्रुव सिद्धात	137
इकाई–12	नगरीय आंतरिक संरचना के सिद्धान्त	148
इकाई–13	माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत, नव माल्थसवाद, अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत	163
इकाई–14	जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत	174
इकाई–15	संघवाद की संकल्पना तथा भौगोलिक आधार	184

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 सत्यकाम	कुलपति, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाजविज्ञान, विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. अभिषेक सिंह	सहा. आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एन.के. राना	आचार्य, भूगोल विभाग बी.एच.यू., वाराणसी
प्रो. ए.आर. सिद्दीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. अरूण कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी.एच.यू. वाराणसी

लेखक

प्रो. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. वी.सी. जाट	प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, रादावास जयपुर, राजस्थान
प्रो. अंजू सिंह	आचार्य भूगोल, यू.पी. कालेज, वाराणसी
डॉ. सीमा मिश्रा	अध्यक्ष, भूगोल होली कास महिला कालेज अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)
डॉ. यस.पी. अग्निहोत्री	पूर्व प्राचार्य यम.यम.यम. पी.जी. कालेज कालाकाकर, प्रतापगढ़
डॉ. श्वेता श्रीवास्तव	सहायक आचार्य भूगोल, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. अभिषेक सिंह	सहा. आचार्य, भूगोल स. वि. उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. देवेन्द्र नारायन पाण्डेय	सहायक आचार्य, भूगोल नागरिक पी.जी. कालेज जंघई, जौनपुर
डॉ. बृजेश कुमार यादव	सहायक आचार्य, भूगोल रा.पी.जी. कालेज जंमुहाई जौनपुर

सम्पादन

प्रो. बी.एन. सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

समन्वयक

प्रो. संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सह–समन्वयक

डॉ. अभिषेक सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक

2024 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2024

ISBN- 978-93-48270-10-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024

मुद्रक :–चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज– 211006

इकाई –1– भूगोल में मॉडल एवं प्रतिरूप, मात्रात्मक क्रांति

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रतिरूप एवं अनुरूप (Models and Analogues)

1.3 प्रतिरूप के प्रकार (Types of Model)

1.4 भूगोल में प्रतिरूपों का प्रयोग (Use of Models in Geography)

1.5 मानव भूगोल में मॉडल (Models in Human Geography)

1.6 भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति (Quantitative Revolution in Geography)

1.7 भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की दिशा

1.8 सारांश

1.9 शब्द सूची

1.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

1.12 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

1.0 प्रस्तावना

भूगोल में मॉडल एवं मात्रात्मक क्रांति नामक इस इकाई में परास्नातक स्तर पर शिक्षार्थी को मॉडल क्या है, मॉडल कितने प्रकार का होते हैं, मॉडल की विशेषताएं क्या हैं, मॉडल का प्रयोग भूगोल में किस–किस क्षेत्र में किया जाता है, मॉडल कितने प्रतिरूप में होते हैं, मानव भूगोल में मॉडल को विस्तार से समझाया है इसके अलावा इस इकाई में कंप्यूटर मानचित्र मॉडल स्थानिक वितरण संबंधी कारलो मॉडल का भी सविस्तार वर्णन किया गया है परास्नातक स्तर पर इस इकाई में मॉडल के साथ मात्रात्मक क्रांति को भी शामिल किया गया है मात्रात्मक क्रांति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भूगोल में चरमोत्कर्ष पर पहुंची मात्रात्मक क्रांति में भूगोलवेत्ता यह मानते थे कि गणितीय सूत्रों के द्वारा हम विषय को और अधिक तर्कसंगत, शुद्ध, क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। ब्रिटेन, स्वीडन, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी आदि अनेक देशों में भूगोलवेत्ताओं ने मॉडल और मात्रात्मक क्रांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किये है। प्रस्तुत इकाई में मात्रात्मक क्रांति के गुण–दोष मात्रात्मक क्रांति के पीछे क्या कारण थे तथा मात्रात्मक क्रांति की आलोचनाओं का वर्णन किया गया है जिससे शिक्षार्थी अपने स्तर से मॉडल और मात्रात्मक क्रांति दोनों सविस्तार व्याख्या कर सके।

1.1 उद्देश्य

- भूगोल में प्रतिरूपों के पक्ष को उजागर करना।
- भूगोल में प्रतिरूपों में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट करना।
- भूगोल के प्रतिरूप के प्रकार स्पष्ट करना।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति का अध्ययन करना ।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की दिशा स्पष्ट करना।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की गुणो को स्पष्ट करना।

1.2 प्रतिरूप एवं अनुरूप (Models and Analogues)

भूगोल में प्रतिमान निष्ठापन के सन्दर्भ में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त मात्रात्मक क्रान्ति के रूप में प्रतिरूपों का प्रयोग आरम्भ हुआ। प्रतिमान विस्थापन (Paradigm Shift) के सम्बन्ध में टी.एस. कुहन ने अपनी पुस्तक **'वैज्ञानिक क्रान्तियों की संरचना'** में बताया है कि वैज्ञानिक क्रांतियाँ किसी स्थापित प्रतिमान को नये प्रतिमान द्वारा विस्थापित करने के उपरान्त होती हैं। ये नये प्रतिमान अधिक सूचनापूर्ण एवं आकर्षक होते हैं। उदाहरण के लिए पृथ्वी की संरचना से सम्बन्धित पूर्व सिद्धान्त कमजोर पड़ते जा रहे हैं, जिनमें जीव–जन्तुओं के प्रवास को बताया गया था, क्योंकि प्लेट विवर्तिनिकी सिद्धान्त के अनुसार स्वयं महासागर भी वृहद् प्लेटों से बने हैं। इस प्रकार नवीन प्रतिमान के रूप में स्थानीयकरण के सिद्धान्त एवं मात्रात्मक विधियों तथा प्रतिमानों (मॉडल) के प्रयोग पर बल दिया जाने लगा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सन् 1960 के दशक में भूगोल में प्रतिरूपों (Models) का प्रयोग होने लगा। थॉमस कुहन के प्रभाव से विभिन्न मॉडलों का विकास किया गया। इस दिशा में पीटर हैगेट, चोर्ले, बेरी तथा हार्वे का प्रयास महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

प्रतिरूप या मॉडल वास्तविकता का आदर्शीकृत प्रतीक है, जो अनुसंधान के क्षेत्र में दृष्टि–पथ का कार्य करते हैं। प्रतिरूप सिद्धान्त हो सकता है। उसके द्वारा आँकड़ों का विश्लेषण–संश्लेषण किया जा सकता है। भौगोलिक अध्ययन में प्रतिरूप अवस्थितिक विश्लेषण करने, अधिवासों के प्रभाव क्षेत्र के सीमांकन में सहायक सिद्ध होते हैं। अतः मॉडल के सिद्धान्त, नियम एवं समीकरण होते हैं, जिनके द्वारा भौगोलिक अध्ययन को प्रभावी बनाकर सरलतम स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। मॉडल के द्वारा किसी भौगोलिक स्थिति की वास्तविकता को आसानी से समझा जा सकता है।

1967 के अनुसार, "प्रतिरूप एक ऐसी वैज्ञानिक विधि है, जिसमें वास्तविकता में विद्यमान जटिल अन्तर्सम्बन्धों की सरल झलक मिलती है।" **चोर्ले** के अनुसार "प्रतिरूप सिद्धान्त तभी हो सकता है, जब वह वास्तविक संसार के किसी भाग का उसमें चित्रण करे।" **कैम्पवल** के मतानुसार, "प्रतिरूप किसी न किसी रूप में सिद्धान्तों के विकास एवं निर्माण में सहायता प्रदान करते हैं। प्रतिरूप किसी भी भू–क्षेत्र (Terrestrial Area) या भूखण्ड (Part of the Earth) का विभिन्न मापनियों पर छोटे पिण्ड द्वारा प्रदर्शन करता है, जिसमें उस क्षेत्र की विशिष्टताओं का निरूपण किया जाता है।"

प्रतिरूप (Model) की अग्रांकित विशेषतायें होती हैं :–

1. प्रतिरूप चयनात्मक होते हैं। वास्तविक दुनिया के अवांछित महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के अतिरिक्त प्रतिरूप उन घटकों एवं तत्त्वों का चयन करता है, जो वास्तविक दर्शन के सार्थक पक्ष को निरूपित करते हैं।
2. प्रतिरूप का निर्माण निश्चित मापनियों पर होता है।
3. प्रतिरूप संरचनापरक होता है तथा अपने वास्तविक क्षेत्र के चयनित गुणों का प्रदर्शन समुचित ढंग से करता है।
4. इस प्रकार प्रतिरूप वास्तविकता के प्रतीक होते हैं।
5. प्रतिरूपों की विशेषताओं के आधार पर वास्तविक भौगोलिक जगत् की विशेषतायें तलाश कर सकते हैं।
6. प्रतिरूपों के आधार पर वास्तविक जगत् के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। वर्तमान समय में बढ़ते तकनीकी विकास के साथ कम्प्यूटर पर विभिन्न प्रकार के त्रिआयामी (Three–Dimensional) प्रतिरूपों का निर्माण किया जा रहा है, जिनकी सहायता से सटीक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही प्रतिरूप शोध कार्य में परिकल्पना की भूमिका का निर्वाह भी करते हैं।

1.3. प्रतिरूप के प्रकार (Types of Model)

भू–तल पर पायी जाने वाली भौगोलिक विविधताओं के अनुसार भौगोलिक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के प्रतिरूपों का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः प्रतिरूपों को वर्णनात्मक (Descriptive) एवं मानकी (Normative) दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। वर्णात्मक प्रतिरूपों द्वारा वास्तविकता का व्यवस्थित (क्रमबद्ध) विवरण दिया जाता है, जबकि मानकी प्रतिरूपों द्वारा नमूने के तौर पर प्रमुख दशाओं को कथनात्मक ढंग से स्पष्ट किया जा

सकता है। वर्णात्मक प्रतिरूप आनुभाविक सूचनाओं तथा तथ्यों से सम्बन्धित होते हैं तथा ये आँकड़ों एवं प्रयोगों पर आधारित होते हैं। मानकी प्रतिरूपों द्वारा किसी तथ्य का ज्ञान इस प्रकार प्रदर्शित होता है कि उस तथ्य की जानकारी प्रभावात्मक रूप से प्रकट होने के कारण वास्तविकता से अधिक प्रतीत होनी है (त्रिपाठी एवं विरले)।

'एकाफ' ने प्रतिरूपों के अग्रांकित तीन प्रकार बताये हैं।–

1. **मूर्तिदर्शी प्रतिरूप (Iconic Models)** :– ये प्रतिरूप किसी वास्तविकता के लक्षणों, विशेषताओं या गुणधर्मों का उल्लेख विभिन्न मापनियों पर करते हैं।
2. **अनुरूप प्रतिरूप (Analogue Models)**:– ये वास्तविकता के लक्षणों या गुणधर्मों को दूसरे गुणधर्म द्वारा निरूपित करते हैं।
3. **प्रतीकात्मक मॉडल (Symbolic Models)**:– ये प्रतिरूप लक्षणों को प्रतीकों (Symbols) द्वारा निरूपित करते हैं।

1.4. भूगोल में प्रतिरूपों का प्रयोग (Use of Models in Geography)

किसी भी विषय में उसकी विषय सामग्री को प्रस्तुत करने, समझने तथा प्रत्यक्ष अनुभवों से प्राप्त सूचनाओं एवं आँकड़ों से सार्थक निष्कर्ष तक पहुँचने में प्रतिरूप बहुत सहायक होते हैं। इसे मद्देनजर रखते हुए नवीन शोधों के उपरान्त सन् 1960 के दशक में भूगोल में प्रतिरूपों का प्रयोग होने लगा, जिसका श्रेय प्रमुख रूप से पीटर हैगेट, रिचर्ड चोर्ले, बेरी, हार्वे आदि को है। इस प्रकार भौगोलिक वास्तविकताओं की जटिलता का स्पष्ट निरूपण प्रतिरूपों के द्वारा किया जाने लगा। इससे भौगोलिक स्थिति को भी सरल रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा ताकि भौगोलिक तथ्यों का तर्कपूर्ण विवेचन करने के लिए गणितीय प्रतिरूपों का निर्माण किया जाता है। भौगोलिक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के प्रतिरूपों का प्रयोग किया जा रहा है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :–

मापनी प्रतिरूप (Scale Model)

इन प्रतिरूपों की सहायता से किसी भौगोलिक क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई का त्रिआयामी (3-Dimensional) निरूपण किया जाता है। इसके द्वारा भौतिक एवं मानवीय प्रक्रमों का भी त्रिविम रूप में सरल प्रदर्शन करके सटीक (Exact) निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है।

मानचित्र प्रतिरूप (Map Model)

मापनी प्रतिरूप का विकसित रूप मानचित्र प्रतिरूप होते हैं। मानचित्र प्रतिरूप में मानचित्रों पर भौगोलिक तथ्यों को सांकेतिक चिह्नों द्वारा निरूपित करते हैं। इनका उपयोग प्रधानतः उच्चावच निरूपण करने में किया जाता है।

छद्म या अनुकार प्रतिरूप (Simulation Models)

अनुकार प्रतिरूप को विकसित करने का श्रेय स्वीडन के भूगोलवेत्ता **टी. हैगरस्ट्रेण्ड** (Trosten Hagerstrand) को है। अनुकार प्रतिरूप को प्रदर्शित करके भावी परिस्थितियों का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रतिरूप द्वारा नवीन विचारों के **स्थानिक प्रसार** (Spatial Diffusion) का अध्ययन किया जाता है। इस प्रतिरूप द्वारा परिवहन विकास, नगरीकरण तथा औद्योगिक विकास के पारस्परिक प्रभावों को समझकर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। हैगरस्ट्रेण्ड ने ही **काल–स्थान भूगोल** (Time-Space Geography) की अवधारणा दी।

स्वीडन के भूगोलवेत्ता टी. हैगरस्ट्रेण्ड ने अनुकार (छद्म) प्रतिरूप की सहायता से स्वीडन में सरकार द्वारा कृषि फार्मों को धनराशि सहायताओं की स्वीकृति का, पशुओं में यक्ष्मा रोग नियंत्रण का, एक विशेष प्रकार के चर्च संगठन के प्रकार का तथा मोटर–कारों के स्वामित्व का अध्ययन किया था। उन्होंने सर्वप्रथम सम्बन्धित तथ्यों के वास्तविक वितरण की जानकारी प्राप्त की, तत्पश्चात् अनुकार प्रतिरूप में विसरण के छद्म परिणामों को समान रेखा (Isopleth) मानचित्र पर निरूपित करके समझाया तथा उनकी वास्तविक भौगोलिक स्थिति (वितरणों) से तुलना करके देखा था।

अनुकार विधि द्वारा विचारों के प्रसार का अध्ययन किया जाता है। भारत में आर.पी. मिश्रा ने मैसूर जनपद की कृषि सहकारी समितियों के प्रसार का अध्ययन 'अनुकार प्रतिरूप' का प्रयोग करके किया था। इसके साथ ही

भारत में परिवहन नियोजन के प्रसार का, जापान में हाथ ट्रेक्टरों के प्रसार का, पूर्वी अफ्रीका में राजनीतिक संगठनों के प्रसार का अध्ययन छद्‌म मॉडल निर्माण द्वारा किया गया है।

मारिल (Morrill R. 1962, 1965) ने संयुक्त राज्य अमेरिका के सिएटल क्षेत्र के नगरों में घेटो क्षेत्र (नीग्रो लोगों की बस्तियाँ) के प्रसार का विश्लेषण अनुकार प्रतिरूप के द्वारा किया है। इस प्रकार इस विधि से भौतिक एवं मानवीय तथ्यों के तथा राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। छद्‌म प्रतिरूप निम्नांकित प्रकार के होते हैं–

1. भौतिक प्रतिरूप (Physical Models)
2. मानवीय तथ्यों के प्रतिरूप (Models of Human Facts)
3. राजनीतिक तथ्यों के प्रतिरूप (Models of Political Facts)

इन प्रतिरूपों की रचना द्वारा किसी तल के बिन्दुओं का यादृच्छिक वितरण (Random Distribution of Points on a Surface), किसी रेखा पर बिन्दुओं का यादृच्छिक वितरण (Random Distribution of Points on a Line) तथा यादृच्छिक आकृति (Random Shape) व यादृच्छिक विसरण (Random Diffusion) का वितरण भी निरूपित किया जाता है। इनकी विस्तृत विवेचना कोल एवं किंग (1967) ने की है।

गणितीय प्रतिरूप (Mathematical Models)

गणितीय प्रतिरूप दो प्रकार के होते हैं– (i) भौतिक तथ्यों के प्रतिरूप, एवं (ii) मानवीय तथ्यों के प्रतिरूप। इन प्रतिरूपों का भूगोल में प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। भूगोलवेत्ता इनका प्रयोग करके ढाल विकास, प्रवाहित जल के कार्यों, हिमानी के कार्यों आदि का विश्लेषण कर रहे हैं। जे.एफ. न्ये ने हिमानी को प्लास्टिक पदार्थ के रूप में मानकर गणितीय प्रतिरूप द्वारा उसके हिम प्रवाह की गणना की है।

मानवीय तथ्यों का विश्लेषण करने में जी.के. जिफ, सिमान, बेरी (B.J.L. Berry), गैरीसन, हैगेट, मार्कोव, ग्रेन्गर एवं इलियट तथा बार्टलेट आदि भूगोलवेत्ताओं ने गणितीय प्रतिरूपों का प्रयोग किया है। विलियम गैरीसन तथा वाल्टर इजाई ने रेखीय कार्यक्रम तथा अनुकूलतम प्रतिरूपों का प्रयोग स्थानिक समस्याओं के समाधान के लिए किया है। हार्वे (1967) एवं कोलिन गणितीय प्रतिरूपों द्वारा जनसंख्या एवं औद्योगिक प्रवसन का विश्लेषण किया है। मार्कोव ने इस तकनीकी द्वारा स्थानिक निर्भरता की गतिशीलता पर चर्चा की है। ग्रेगर एवं इलियट ने इंग्लैण्ड में गेहूँ के बाजारों की प्रादेशिक अन्तर्निर्भरता का अध्ययन किया है। पीटर हैगेट (1988) ने दक्षिणी पश्चिमी इंग्लैण्ड के आठ खण्डों में बेरोजगारी का अन्तर प्रादेशिक अध्ययन किया है। साथ ही हैगेट ने मानव भूगोल में अवस्थिति विश्लेषण के लिए ग्राफ सैद्धान्तिक विधि को अपनाते हुए गणितीय प्रतिरूपों का निर्माण किया है। इस प्रकार भूगोल में सटीक एवं स्पष्ट परिणामों को प्राप्त निर्माण करने के लिए गणितीय प्रतिरूपों का प्रयोग बढ़ रहा है।

संकल्पनात्मक प्रतिरूप (Conceptual Model)

इन्हें सैद्धान्तिक प्रतिरूप भी कहते हैं। केन्द्रीय स्थान तथा अवस्थिति सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जैसा कि सन् 1955 में वाल्टर क्रिस्टालर ने अपने **'केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त'** (Central Place Theory) को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए षट्‌कोणीय प्रतिरूप (Hexagonal Models) का प्रयोग किया था जिसका अनुसरण लॉश ने भी किया था।

अनुरूप प्रतिरूप (Analogue Model)

अनुरूप प्रतिरूप सैद्धान्तिक प्रतिरूपों के निर्माण का ऐसा प्रयास है, जिसके द्वारा भौतिक एवं मानवीय तथ्यों को स्पष्ट किया जा सकता है। अनुरूप (Analogues) एवं प्रतिरूप (Models) परस्पर भिन्न होते हैं। प्रतिरूप के द्वारा आकारों या लक्षणों को मूल रूप से प्रदर्शित करने के लिए प्रतीकात्मक (Symbolic) छोटी या बड़ी प्रतिकृतियों का उपयोग किया जाता है, ये त्रिविम होते हैं। जबकि अनुरूप (Analogies) की सहायता से आकारों या लक्षणों को प्रत्येक दशा के विभिन्न रूपों में निरूपित किया जाता है, ये त्रिविम नहीं होते हैं।

गुरुत्व प्रतिरूप (Gravity Model)

गुरुत्व प्रतिरूप विभिन्न केन्द्रों के प्रभाव क्षेत्रों के आकार का आकलन करने का सर्वाधिक उपयुक्त प्रतिरूप है,

जिसे भौतिक विज्ञान से लिया गाया है। यह न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार 'The potential power of attraction between two bodies increase with the product of their masses and decrease with distance between them." अर्थात् दो पदार्थों (उत्पादों) के मध्य आकर्षण संहतियों (Masses) के गुणनफल के अनुपात में होता है। इस प्रतिरूप को सर्वप्रथम भूगोल में दूरी और अन्तः क्रियाओं के मध्य सम्बन्धों को दर्शाने के लिए सामान के संचलन एवं प्रवास सन्दर्भ में बिशप जॉर्ज वर्कले (1915), हेनरी केरी (H.C. Carey, 1858), रेवन्स्टीन (Ernst G. Ravenstein, 1885), तथा हर्बर्ट स्पेन्सर (1892) लिखा है। ये कार्य भूगोल में दूरी क्षय (Distance Decay) तथा गुरुत्व मॉडल के बारे में माने जाते हैं। रायली (Reilly, William J., 1899–1970) ने खुदरा बाजार सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करते हुए सन् 1929 में यह अभिगृहित किया कि किसी स्थान के द्वारा नगरीय केन्द्र से प्राप्त किये गये फुटकर व्यापार की मात्रा उस नगर की जनसंख्या के प्रत्यक्ष अनुपात में तथा उस स्थान एवं नगर के मध्य की दूरी में वर्ग के विपरीत अनुपात में होती है। उन्होंने इसके आधार पर व्यापारिक क्षेत्रों की पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन किया था। रैली ने जनसंख्या प्रवास सूचकांक का अध्ययन भी किया था जिसका सूत्र निम्न था–

$$\text{प्र.सू.} = \text{अ} = \frac{\text{ज}_1\text{ज}_2}{\text{द}^2}$$

यहाँ प्र. सू. = प्रवास सूचकांक,

अ = अचल समानुपाती,

ज_1 = प्रथम अधिवास की जनसंख्या,

ज_2 = द्वितीय अधिवास की जनसंख्या, तथा

द^2 = दो अधिवासों के मध्य की दूरी।

गुरुत्व मॉडल के आधार पर दो स्थानों के मध्य अन्तःक्रिया का आकलन निम्न सूत्र से भी किया जा सकता है–

यहाँ I = अन्तःक्रिया (Interaction),

P_1 = एक स्थान की जनसंख्या (Population of one of the Places)

P_2 = दूसरे स्थान की जनसंख्या (Population of the other Place)

d = दोनों स्थानों के मध्य की दूरी (Distance between them)

इस प्रकार गुरुत्व मॉडल द्वारा अधिवासों के जनसंख्या का आकार उनके प्रभाव क्षेत्रों का विस्तार, जनसंख्या के प्रवास तथा व्यापारिक क्षेत्रों के मध्य सीमा निर्धारण आदि का अध्ययन किया जा सकता है। सन् 1949 में जिफ (G.K. Zipf, 1902–1950) ने मानवीय व्यवहार में न्यूनतम प्रयास के सिद्धान्त (Principle of Least Effort) का प्रतिपादन किया। लेकिन जेम्स एवं मार्टिन के अनुसार न्यूटन के गुरुत्व के नियम पर आधरित समाआकारिकी सिद्धान्तों (Isomorphic Relationship) पर प्रथम बार विवेचन स्टीवर्ट (Stewart, J.Q.) ने सन् 1947 में किया था।

i. **नगर प्रभाव क्षेत्र के सीमांकन से सम्बन्धित गुरुत्व सिद्धान्त** – इसका प्रतिपादन प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री हेनरी चार्ल्स कैरी (H.C. Carey, 1793–1879) ने सन् 1858 में किया जिसका आधार न्यूटन द्वारा भौतिकशास्त्र में प्रयुक्त गुरुत्व मॉडल का प्रभाव है। इसे अन्तर्क्रिया नियम (Intraction Model) भी कहते हैं। ये मॉडल दो क्षेत्रों के मध्य के सम्बन्धों को तर्कसंगत तरीके से जाँचने का कार्य करता है, जो निम्न सूत्र पर आधारित है–

यहाँ I = दो स्थानों के मध्य सापेक्षिक अन्तर्सम्बन्ध

P_1 = दो स्थानों में से बड़े स्थान की जनसंख्या

P_2 = दो स्थानों में से छोटे स्थान की जनसंख्या

d = दोनों स्थानों के मध्य की दूरी।

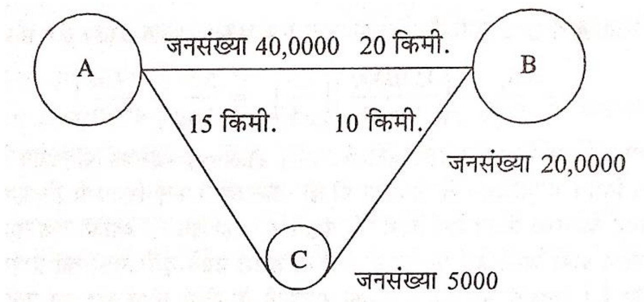

साधारण गुरुत्व मॉडल का परिकल्पित रूप

चित्र के अनुसार A, B, C तीन नगरीय केन्द्र हैं। इनके प्रभाव क्षेत्र का सीमांकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

$$\text{I (A, B)} = \frac{(40{,}000)(20{,}000)}{20} = 40.0$$

$$\text{I (A, C)} = \frac{(40{,}000)(5{,}000)}{15} = 15.5$$

$$\text{I (B, C)} = \frac{(20{,}000)(5{,}000)}{5} = 5.0$$

केरी के अनुसार नगरीय जनसंख्या आकार तथा दूरी के अनुपात में ही उसका प्रभाव क्षेत्र होगा।

ii. **फुटकर गुरुत्वाकर्षण नियम (Law of Retail Gravitation)** – टेक्सास विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डब्ल्यू.जे. रैली ने 1951 में यह नियम प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार किस स्थान के द्वारा नगरीय केन्द्र से प्राप्त किये गये फुटकर व्यापार की मात्रा उस नगर की जनसंख्या के प्रत्यक्ष अनुपात में तथा उस स्थान एवं नगर के मध्य की दूरी में वर्ग के विपरीत अनुपात में होती है, इसे रैली ने निम्न सूत्र द्वारा स्पष्ट किया है–

$$\frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{P_1}{P_2}\right)\left(\frac{D_2}{D_1}\right)^2$$

यहाँ $S_1, S_2 =$ दिये गये दो नगरों के सापेक्षिक फुटकर विक्रय का भाग जो कि उनके मध्य स्थित किसी नगर या कस्बे को प्राप्त होता है।

$P_1, P_2 =$ दोनों दिये गये नगरों की जनसंख्या

$D_1, D_2 =$ मध्यवर्ती कस्बे या गाँव से दोनों नगरों की दूरियाँ

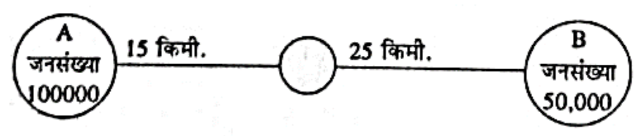

रैली का फुटकर गुरुत्व नियम

चित्र के अनुसार। व **B** दो नगर हैं, जिनके मध्य एक कस्बा, इनके प्रभाव क्षेत्र सीमा निम्न होगी–

$$\frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{1{,}00{,}000}{50{,}00}\right)\left(\frac{25}{15}\right)^2 = \frac{5.58}{1.00}\ \frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{P_1}{P_2}\right) \text{———} \left(\begin{matrix}\text{नगर A}\\ \text{नगर B}\end{matrix}\right)$$

iii. **अलगाव बिन्दु सिद्धान्त (Breaking Point Theory)**– इसका प्रतिपादन रैली के फुटकर गुरुत्व नियम में संशोधन के उपरान्त पी.डी. कनवर्स ने सन् 1949 में किया। अलगाव बिन्दु दो नगरों के मध्य स्थित उस

बिन्दु को कहते हैं, जहाँ तक के व्यक्ति एक नगर में सेवा कार्यों का लाभ प्राप्त करने हेतु आ सकते हैं तथा उससे आगे दूसरे नगर का प्रभाव क्षेत्र वृद्धि कर सकता है। कनवर्स महोदय ने इसको समझाने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया है –

$$B = \frac{d}{1 + \sqrt{\frac{P_1}{P_2}}}$$

यहाँ $B =$ दो नगरों के मध्य अलगाव बिन्दु

$d =$ दोनों नगरों के मध्य की दूरी

$P_1, P_2 =$ क्रमशः दोनों नगरों की जनसंख्या।

चित्रानुसार। व B दो नगर हैं, जिनके मध्य अलगाव बिन्दु की स्थिति निम्न प्रकार होगी–

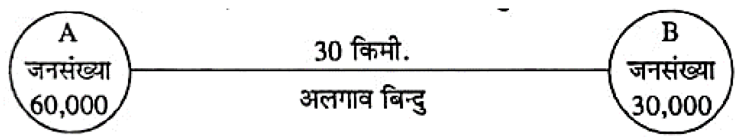

केनवर्स का अलगाव बिन्दु नियम

एवरट ली (Everett Lee) ने प्रवास का सिद्धान्त सन् 1966 में दिया था, जिसमें उन्होंने किसी क्षेत्र से जनसंख्या की स्थानिक गतिशीलता (Spatial Mobility of Population) को एक सकारात्मक एवं नकारात्मक कारकों के समूह से नियंत्रित माना है। ली के अनुसार इन कारकों में उत्पत्ति क्षेत्र में क्रियाशील कारक, गन्तव्य स्थान पर क्रियाशील कारक, वे कारक जो अन्तःस्थ के रूप में क्रियाशील है व व्यक्तिगत कारक, जो व्यक्तियों के लिए विशिष्ट हैं आदि प्रमुख हैं।

भूगोल में अन्तराल मापन (Spacing in Geography)

भूगोल में अन्तराल (Spacing) का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। बस्तियों एवं सेवा–केन्द्रों के मध्य अन्तराल उनके आकार तथा कार्यों पर निर्भर करता है। अधिवासों के सेवा–केन्द्रों के आकार का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अक्सर यह देखा जाता है कि बड़े आकार के सेवा–केन्द्र अधिक अन्तर पर स्थित (दूरी पर) होते हैं तथा लघु सेवा केन्द्र पास–पास स्थित होते हैं। बड़े सेवा–केन्द्र अनेक कार्यों के कारण प्रमुख आकर्षण के केन्द्र होते हैं। केन्द्रों के आकार व उनकी संख्या में सतत् परिवर्तन होता है, जिसका प्रभाव उनके मध्य की दूरी पर पड़ता है।

अधिवासों के आकार तथा अन्तराल (Spacing) के सन्दर्भ में सन् 1955 में क्रिस्टालर ने बताया कि सेवा केन्द्रों के मध्य की दूरी प्रमुखतः उनके जनसंख्या पर निर्भर करती है। (Spacing of service centres is largely a matter of their population)। एल.जे. किंग के अनुसार, सेवा–केन्द्रों का अन्तराल उनके आकार, व्यावसायिक, संरचना और निकटवर्ती क्षेत्र की विशेषता का परिणाम होती हैं। सेवा–केन्द्रों का अन्तरण एक मिश्रित तथ्य है जो विभिन्न भू–आर्थिक कारकों के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम होता है।

अन्तरण को मापने के लिए समय–समय पर विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने प्रयास किया है। वेलेन्टी विनिड नामक पोलिश भूगोलवेत्ता ने बताया कि आयताकार रेखाजाल के प्रतिच्छेदन बिन्दुओं पर स्थित अधिवासों की पारस्परिक दूरी को परिगणित (Calculate) करने की सबसे उपयुक्त विधि सकल क्षेत्र को अधिवासों की संख्या से विभाजित करके उसके वर्गमूल द्वारा ज्ञात किया जा सकता है, इसे निम्न सूत्र में परिणाम ज्ञात किया जा सकता है –

$$D = \sqrt{\frac{N}{A}}$$

यहाँ D = अधिवासों के मध्य औसत अन्तराल

A = अध्ययन क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल

N = अधिवासों की कुल संख्या

सन् 1940 में वारनेस तथा रॉबिन्सन ने बताया कि किसी क्षेत्र के क्षेत्रफल तथा उसमें स्थित अधिवासों की संख्या ज्ञात करके निम्न सूत्र द्वारा दो अधिवासों के मध्य समीपवर्ती औसत दूरी का निर्धारण किया जा सकता है –

$$Hd = 1.1 \sqrt{\frac{N}{A}}$$

यहाँ Hd = क्षैतिजीय दूरी (Horizontal Distance)

A = क्षेत्रफल (Area)

N = अधिवासों की संख्या (Number of Settlements)

इस सूत्र में A/N एक अधिवास में स्थित औसत क्षेत्र को प्रदर्शित करता है।

सन् 1944 में मेथर (Mather, E.C.) ने अधिवासों के मध्य अन्तरण (Spacing) ज्ञात करने का एक नवीन सूत्र प्रस्तुत किया, जो इस प्रकार है–

$$D = 1.015 \sqrt{\frac{N}{A}}$$

D = एक अधिवास की अपने समीपवर्ती छः अधिवासों से औसत दूरी,

A = क्षेत्रफल, N = अधिवासों की संख्या।

ए.बी. मुकर्जी ने षट्कोण के स्थान पर अधिवास के सेवा क्षेत्र का आकार वृत्ताकार माना है। इन वृत्ताकार आकृतियों के मध्य में कुछ स्थान रिक्त रह जाता है। उन्होंने बताया कि ऐसी स्थिति में अधिवास का क्षेत्रफल होगा। इस आधार पर ए.बी. मुखर्जी से निम्न सूत्र द्वारा राजस्थान के ग्रामीण अधिवासों के अन्तरण का अध्ययन किया है –

$$\pi r^2 = \frac{A}{N}$$

$$r^2 = \frac{A}{N\pi} \; vFkok \; r = 1.1284 \sqrt{\frac{N}{A}}$$

अधिवासों के स्थानिक वितरण के माप के रूप में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण (Nearest Neighbour Analysis) विधि

किसी भी प्रदेश में अधिवासों के क्षेत्रीय या स्थानिक वितरण को ज्ञात करने के लिए यह सर्वोत्तम उपयुक्त विधि है। इस विधि का प्रयोग अधिवासों के क्षेत्रीय वितरण को ज्ञात करने के साथ अन्य विभिन्न प्रकार की सुविधाओं के क्षेत्रीय वितरण को भी ज्ञात किया जाता है। इसका सर्वप्रथम उपयोग प्रसिद्ध पादप पारिस्थितिज्ञ **क्लार्क एवं ईवान्स** (Clark J.P. and Evans, F.C., Ecology, 1954) ने विभिन्न प्रकार के पौधों के स्थानिक या क्षेत्रीय वितरण को ज्ञात करने के लिए किया। ईवांस के अनुसार, "यह विधि किसी भी क्षेत्र में अनियत दशा से बस्तियों की अन्तरालन (Spacing) की विचलन दशा को दर्शाने में सहायक है।" इसका भूगोल में सर्वप्रथम उपयोग **डेसी** (Dacy M.P.) ने सन् 1960 में अधिवासों के क्षेत्र को ज्ञात करने के लिए किया था। उन्होंने बताया कि यह विधि किसी भी क्षेत्र को अनियत दशा में बस्तियों की अन्तरण (Spacing) की विचलन दशा को स्पष्ट करने में सहायक है।

यह एक मात्रात्मक विश्लेषण विधि है, जिसके द्वारा किसी क्षेत्र के विभिन्न अधिवासों के मध्य साधारण वस्तुनिष्ठ तुलना की जाती है, जिसके अन्तर्गत किसी यादृच्छिक वितरण प्रतिरूप में विभिन्न बिन्दुओं के मध्य की अवक्षेपित दूरी (Observed Spacing) तथा उनके मध्य की अपेक्षित दूरी (Expected Spacing) के मध्य तुलना की जाती है, अत: अवक्षेपित दूरी एक यादृच्छिक (Random) प्रतिदर्श की गहनता (Intensity) की जानकारी देती है। अवक्षेपित

दूरी सभी बिन्दुओं या स्थानों के मध्य की दूरी को स्पष्ट करती है। इनमें बिन्दुओं को उनके निकटतम बिन्दु से परस्पर एक रेखा द्वारा संयोजित करके औसत दूरी ज्ञात की जा सकती है।

अधिवासों के स्थानिक वितरण की सैद्धान्तिक विचारधारा को उनके अन्तरण या दूरी (Spacing) के मापन द्वारा अच्छी तरह से व्यक्त किया जा सकता है। यह सैद्धान्तिक अन्तरण प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिवासों के घनत्व पर निर्भर करती है। प्रति इकाई क्षेत्र की गणना N/A के सूत्र पर निर्भर करती है।। का तात्पर्य है प्रदेश का क्षेत्रफल तथा N का तात्पर्य उस प्रदेश में स्थित कुल अधिवासों से है। निकटवर्ती पड़ोसी विश्लेषण की विचारधारा अधिवासों के स्थानिक वितरण, को परिकलित करने का प्रयास करती है, जो दो निकटवर्ती अधिवासों के मध्य एक सीधी रेखीय दूरी के माप पर निर्भर करती है। यह माप वास्तविक दूरी (Actual Distance) होती है, जिसे कहते हैं। जब अधिवास यादृच्छिक रूप में वितरित होते हैं तो इसे सूत्र रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं–

$$R = \frac{r^0}{r^0}$$

यहाँ R = निकटतम पड़ोसी सांख्यिकी

R = दूरी

r^0 = औसत अवलोकित दूरी

r^0 = औसत सम्भावित दूरी

$r^0 = \frac{\sum d}{N}$

यहाँ d – एक अधिवास से निकटतम अधिवास के मध्य की दूरी (दिशा के ज्ञान के बिना)

N = अधिवासों की कुल संख्या

A = कुल क्षेत्रफल

$$A = \frac{1}{\sqrt{2\sqrt{\frac{N}{A}}}}$$

इस प्रकार r^0 सम्भावित दूरी को व्यक्त करती है जो निकलता है। यहाँ अधिवासों के बिन्दुओं के घनत्व का वर्गमूल से R मापनी प्राप्त होगी जो अधिवासों के स्थानिक वितरण को स्पष्ट करेगी। यह R मापनी सदैव 0 से 2. 1391 के मध्य प्राप्त होता है जो अधिवासों के स्थानिक वितरण प्रारूप में झुकाव की प्रवृत्ति को प्रकट करता है। इस प्रारूप को विभिन्न अनियत मानों में अधिवासों के स्थानिक वितरण की प्रकृति को समझने के लिए निम्न वर्गों में रखा जा सकता है, जो विभिन्न अवलोकनों से प्राप्त सूचकांक मापनी (R) से प्राप्त होता है–

क्र.सं.	'R' का मान	स्थानिक वितरण की प्रकृति
1.	0–0.09	पूर्ण संकेन्द्रण (Absolute Concentration)
2.	0.1–0.50	उच्च संकेन्द्रण (High Concentration)
3.	0.51–0.99	पूँजित प्रतिरूप (Clustered Pattern)
4.	1.00–1.19	यादृच्छिक प्रतिरूप (Random Pattern)

5.	1.20—139	समरूपीय प्रारूप (Uniform Pattern)
6.	1.40—2.13	प्रकीर्ण प्रतिरूप (Dispersed Pattern)
7.	2.1391	पूर्ण षट्कोण प्रतिरूप (Perfect Hexagon Pattern)
8.	2.1391 < (अधिकतम 5.00)	उच्च प्रकीर्ण (Highly Dispersed) ®

न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त (Principle of Least Effort)

अनेक प्रवसन शोधों में जनसंख्या आकार एवं दूरी सम्बन्ध निर्धारण का प्रयत्न किया गया है। सन् 1940 में जिफ द्वारा प्रस्तुत 'न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त' की व्याख्या में एक समाज व्यवस्था में वस्तुओं, सूचनाओं तथा लोगों के परिसंचरण को अंकित किया गया। इसमें विभिन्न समुदायों का पारस्परिक संचरण इस तरह होता है, जिससे सम्पूर्ण व्यवस्था का कुल कार्य न्यूनतम हो सके। इस आधार पर दो विभिन्न समुदायों के बीच में प्रवास की मात्रा निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की जा सकती है–

$\underline{ज_1 ज_2}$

स = द

स = दो समुदायों के मध्य संचरण की मात्रा,

अ = अचल समानुपाती,

$ज_1$ = प्रथम समुदाय की जनसंख्या,

$ज_2$ = द्वितीय समुदाय की जनसंख्या, तथा

द = दो समुदायों के मध्य की दूरी।

इस प्रकार जिफ महोदय ने दूरी व प्रवास में विपरीत सहसम्बन्ध स्पष्ट किया है। उनके अनुसार दो नगरों के मध्य प्रवास की मात्रा उनके मध्य की दूरी का प्रतिफल होती है। दूरी जितनी अधिक होगी, उसके रास्ते की कठिनाइयों को पार करने के लिए उतना ही अधिक प्रयास करना होगा। इस प्रकार उतनी ही प्रयास की मात्रा कम होगी।

अन्तरालयी अवसर मॉडल (Intervening Opportunity Model)

अन्तरालयी अवसर मॉडल को सन् 1940 में एस. स्टोफर ने प्रस्तुत किया। उनके अनुसार संचरण के निर्धारण में रेखीय दूरी का स्थानिक (क्षेत्रीय) प्रकृति की अपेक्षा कम महत्त्व होता है। अतः ज्यामितीय दूरी की जगह सामाजिक–आर्थिक दूरी को मद्देनजर रखना चाहिए। इस प्रकार वास्तविक दूरी का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना अन्तरालयी सुविधाओं का होता है। स्टोफर महोदय की संकल्पना यह थी कि एक दी हुई दूरी में प्रवास करने वाले लोगों की मात्रा उस दूरी पर उपलब्ध अवसरों की समानुपाती तथा विद्यमान अन्तरालयी अवसरों की परस्पर विपरीत समानुपाती होती है। अन्तरालयी अवसरों का आशय दो स्थानों के मध्य स्थित बिन्दुओं पर उपलब्ध अवसर (Opportunities) से है। इस मॉडल को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है।

$$Y = k\frac{\Delta X}{X}$$

यहाँ Y = एक स्थान से एक केन्द्रीय क्षेत्र में प्रवासियों की मात्रा,

ΔX = उस क्षेत्र में विद्यमान अवसरों की मात्रा,

X = उस क्षेत्र (Zone) से उत्पत्ति बिन्दु से कटिबन्ध के अन्तरालयी क्षेत्र में उपलब्ध अवसर, तथा

K = अचल समानुपाती।

इस प्रकार वास्तविक अवसरों में रोजगार के अवसर, वातावरण, आवास आदि को सम्मिलित किया जाता है, जिनके कारण प्रवासियों के आकर्षण में वृद्धि होती है।

लॉश का सिद्धान्त (Theory of Losch)

लॉश का पूर्व में प्रस्तुत सिद्धान्त अधिवासों एवं जनसंख्या के वितरण के बारे में केन्द्र–स्थल सिद्धान्त था तथा यह उद्योगों की अवस्थिति के बारे में दिया गया है। लॉश के सिद्धान्त का प्रमुख आधार आर्थिक इकाई की स्थापना (Economics of Location) था। यद्यपि प्रो. वेबर ने अपने सिद्धान्त में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के सन्दर्भ में उल्लेख किया है, परन्तु किसी भी व्यापारिक केन्द्र की स्थापना के सन्दर्भ में अपने विचार लॉश ने व्यक्त किये थे।

प्रो. लॉश (Losch) उन परिस्थितियों में इस विचारधारा में पड़े जबकि संसार के कई देशों में आर्थिक उथल–पुथल हो रही थी। इन परिस्थितियों में इन्होंने न केवल औद्योगिक इकाई की स्थापना वरन् उसका क्षेत्रीय विकास पर भी अध्ययन किया। लॉश ने अपने सिद्धान्त में जनसंख्या विकास (Demographic Development) एवं आर्थिक चक्र (Economic Cycles) के सहसम्बन्ध का अध्ययन किया है।

जनसंख्या प्रवसन से सम्बन्धित सिद्धान्त (Theories Related to Migration of Population)

रेवेन्स्टीन का प्रवास सिद्धान्त (Ravenstein's Laws of Migration)

प्रवास के सम्बन्ध में सर्वप्रथम रैवेन्स्टीन ने सन् 1885 में यह नियम प्रतिपादित किया जो इस प्रकार है–

1. स्थानान्तरण (प्रवास) और दूरी–अधिकांश प्रवासी छोटी दूरी तक प्रवास (संचरण) करते हैं। फलस्वरूप जनसंख्या में स्थानीय परिवर्तन होता है, जिससे प्रवास प्रवाह का जन्म होता है, जिसकी दिशा विस्तृत व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्रों की ओर होती है।
2. पदानुक्रम प्रवास–तीव्रता से वृद्धि करते हुए नगरों में उनके आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में जो रिक्तियाँ विद्यमान होती हैं, उन्हें पूर्ण करने के लिए सुदूर क्षेत्रों से प्रवासी आते हैं। यह क्रिया नगरीय प्रभाव के दूरस्थ क्षेत्रों में पहुँचने तक सक्रिय रहती है।
3. धारा एवं प्रतिधारा–प्रत्येक प्रवास की मुख्य धारा क्षतिपूर्ति के लिए प्रतिधारा को उत्पन्न करती है।
4. ग्राम–नगर विभेदन–ग्रामीण लोगों की अपेक्षा नगरीय लोगों में प्रवास की भावना भिन्न होती है।
5. स्त्रियों की अधिकता–न्यूनतम दूरियों के प्रवास में स्त्रियों का बाहुल्य होता है।
6. तकनीकी विकास एवं प्रवास–तकनीकी विकास के साथ प्रवास की मात्रा में वृद्धि होती है।
7. प्रवास के प्रेरक–प्रवास की मात्रा को निर्धारित करने वाले घटकों में आर्थिक उद्देश्य भी प्राथमिक होती है।

रैवेन्स्टीन के अधिकांश सिद्धान्तों को प्रापर (1969) ने अपने मलेशिया तथा अन्य देशों के प्रवास के अध्ययन में मान्य पाया है।

संक्रियात्मक खेल प्रतिरूप (Operational Game Model)

संक्रियात्मक खेल प्रतिरूपों का निर्माण मानव भूगोल सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। कोल तथा किंग ने रेलवे निर्माण खेल प्रतिरूप का प्रयोग करते हुए किसी भौगोलिक क्षेत्र में रेलवे निर्माण की लागत का आकलन किया है।

सन् 1950 के दशक के उपरान्त भूगोल में मॉडल निर्माण में तीव्रता आयी है, जिसके तहत कम्प्यूटर मानचित्र मॉडलों का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है। आर्थिक भूगोल, परिवहन भूगोल तथा नगरीय भूगोल के क्षेत्र में अवस्थिति विश्लेषण मॉडलों का प्रयोग किया जा रहा है। इनमें वॉन ध्यूनेन (Von Thunen, 1826), क्रिस्टालर (Christallar, 1955), लॉश (स्वेबी, 1954), वेबर (Weber, 1909) आदि का प्रयास सराहनीय रहा है। **एडवर्ड एल. उलमेन** (Ullman)' ने **स्थानिक अन्योन्य–क्रिया** (Spatial Interaction) के अन्तर्गत पत्तन–पश्चभूमि (Port-hinterland) सम्बन्धों, रेलमार्ग जालों (Railway Network) एवं वस्तु–प्रवाह (Commodity Flow) का अध्ययन गुरुत्व मॉडल के आधार पर किया है। इसे प्रवाह सिद्धान्त (Flow Theory) भी कहते हैं। उन्होंने अपने मॉडल में तीन

आधार–पूरकता, स्थानान्तरणशीलता एवं अन्तरवर्ती अवसर को माना था। उलमेन का 1954 में प्रतिपादित स्थानिक अन्तर्किया एवं क्षेत्रीय आर्थिक संरचना का अध्ययन करने के लिए वस्तु प्रवाह सम्बन्धी अध्ययन संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था पर आधारित था। भूगोल में स्थानिक समस्याओं के लिए गैरीसन (Garrison) तथा इजार्ड (Isard) ने रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming) तथा इष्टतम मॉडलों (Optimizing Models) का प्रयोग किया है।

1.5. मानव भूगोल में मॉडल (Models in Human Geography)

मॉडल निर्माण की आवश्यकता को पुष्ट करते हुए पीटर हैगेट (P. Haggett)' ने इस सम्बन्ध में निम्नांकित तीन तर्क प्रस्तुत किये हैं–

1. मॉडल के सिद्धान्त, नियम व समीकरण इस प्रकार के होते हैं, जो हमारे द्वारा दृष्टिगत एवं संविचारित विश्व (Universe) के बारें में हमारे विश्वासों का कथन करते हैं।
2. मॉडल निर्माण करना मितव्ययी है, क्योंकि इसके द्वारा सामान्यीकृत सूचना को बहुत संक्षिप्त संपीड़ित (Compressed) रूप में प्रस्तुत कर देते हैं।
3. मॉडल निर्माण करना उद्दीप्त (Stimulate) करने वाला होता है।

कोशिक महोदय ने बताया है कि मॉडल के द्वारा वास्तविकता (Reality) के कुछ निर्धारित लक्षणों एवं गुणों (Properties) का आदर्श निरूपण होता है। इनसे सम्पूर्ण सत्य का तो बोध नहीं होता लेकिन सत्य के कुछ अंश को समझने में सहायता अवश्य मिलती है।

हैगेट ने मानव भूगोल के अध्ययन के लिए, अवस्थितिक संरचना (Locational Structure) के मॉडलों के पाँच प्रकरण वर्णित किये किये है –

1. **संचालन (Movement)** – उनके अनुसार प्रदेशों या क्षेत्रों में परिवहन (Transport), यातायात (Traffic), अभिगमन (Commuting) की दूरियाँ तथा विसरण (Diffusion) आदि के रूप में संचालन होता है।
2. मार्ग जाल (Network)।
3. मार्ग संगम केन्द्र (Nodes), इसमें मानवीय अधिवासों के प्रतिरूपों की आकृतिकी, जनसमूह आदि आते हैं।
4. पदानुक्रम (Hierarchies) ।
5. भू–सतह (Surface) के मॉडल।

कम्प्यूटर मानचित्र मॉडल (Computerized Map Model)

वर्तमान समय में भूगोल में कम्प्यूटर मानचित्र मॉडलों का प्रयोग बढ़ रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, कनाड़ा आदि देशों में कम्प्यूटर की सहायता से मानचित्र मॉडलों का निर्माण किया जा रहा है। रूस में मॉस्को कम्प्यूटर केन्द्र में वायु फोटो चित्रों से मानचित्रों का निर्माण किया जा रहा है। कम्प्यूटर मानचित्र मॉडलों के निर्माण में जर्मनी में स्टूटगार्ट का कम्प्यूटर केन्द्र, संयुक्त राज्य में हारवर्ड का कम्प्यूटर ग्राफिक्स केन्द्र, कनाड़ा में मांट्रियल का कम्प्यूटर केन्द्र आदि प्रमुख हैं।

भारत में भी कम्प्यूटर मॉडलों का निर्माण किया जा रहा है। इनमें सुदूर संवेदन तकनीकी से प्राप्त आँकड़ों का भौगोलिक सूचना तंत्र के अन्तर्गत विश्लेषण करके भी मानचित्र मॉडल तैयार किये जा रहे हैं। इसे अंकीय मानचित्रण (Digital Mapping) कहते हैं।

स्थानिक विवरण सम्बन्धी मॉण्टे कार्लो मॉडल (Monte Carlo Model of Spatial Diffusion)

मॉण्टे कार्लो मॉडल' द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक तथ्यों के स्थानिक विसरण का विश्लेषण किया जा सकता है, इसे 'मॉण्टे कालों अनुकार प्रतिरूप' (Monte Carlo Simulation Model) कहते हैं। सन् 1955 में स्वीडिश भूगोलवेत्ता हैगरस्ट्रेण्ड ने नवाचार एवं विसरण (Innovation and Diffusion) का मूल्यांकन किया तथा एक लघु शोध–प्रबन्ध लिखा जिसका एलेन प्रेड ने सन् 1979 में अंग्रेजी में Innovation Diffusion as a Spatial Process नाम से अनुवाद किया। हॅंगरस्ट्रेण्ड ने इस प्रतिरूप में प्रधानतः यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि किसी विचार के विसरण को

किस विधि के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने सिमुलेशन विधि का प्रयोग किया, जिसके द्वारा स्वीडन में कृषि एवं पशुचारण के क्षेत्र में विकास के लिए सरकार द्वारा जारी वित्त राशि सहायताओं की स्वीकृति के विसरण तथा पशुओं में यक्ष्मा रोग प्रसरण (Epidemic Diffusion) आदि का अध्ययन किया था। यह मॉडल कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित था। इन मान्यताओं का विवेचन करने से पूर्व स्थानिक विसरण सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है।

स्थानिक विसरण (Spatial Diffusion)

किसी नवीन प्रविधि, आविष्कार, नवीन प्रक्रिया, सांस्कृतिक प्रसार, विचारों का प्रसार आदि के एक केन्द्र से अन्यत्र क्षेत्रों में होने वाले प्रसार को विसरण (Diffusion) कहते हैं। यह विसरण प्राकृतिक वातावरण, लोगों के ज्ञान के स्तर, परिवहन तथा संचार के साधनों से प्रभावित होता है। नवीन विचारों के विसरण के बारे में मॉरिल (1988) ने बताया कि नवीन विचारों का प्रसरण स्थान एवं समय की सहभागी प्रक्रिया है। हैगरस्ट्रेण्ड ने दक्षिणी स्वीडन से इस प्रक्रिया का अध्ययन करके बताया कि, "The Spread of information occurs via the neighbourhood effect and the likelihood of one adopter generating another declines with distance in a form calculated from migration and telephone interaction over space.”

भूगोल में विसरण (Diffusion) का अध्ययन रेटजेल द्वारा प्रकाशित Anthropogeographie के द्वितीय खण्ड से माना जाता है। इसके बाद संस्कृति के प्रसार पर सेम्पुल का अध्ययन महत्त्वपूर्ण रहा। लेकिन स्थानिक विसरण की प्रक्रिया को गणितीय मॉडलों द्वारा 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में दर्शाया जाने लगा, जिसकी शुरुआत सन् 1955 में हैगरस्ट्रेण्ड द्वारा की गई तथा सन् 1953 में Spatial Diffusion शब्द भूगोलवेत्ताओं के सामने विश्वस्तर पर प्रचारित हुआ।

भौगोलिक दृष्टि से विसरण दो प्रकार के होते हैं–

1. **विस्तारित विसरण (Expansion Diffusion)**– इसमें कोई सूचना या वस्तु अपने मूल स्थान में रहते हुए दूसरे क्षेत्रों में प्रसारित होता है।
2. **पुनः अवस्थित विसरण (Relocation Diffusion)**– इसमें प्रसरित विचार या सूचनाएँ अपने मूल स्थान को छोड़कर नवीन स्थानों में पहुँच जाते हैं।

समयावधि के अनुसार विसरण संक्रामक या तीव्रगामी तथा प्रपाती होता है। संक्रामक विसरण में नवीन विचार प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। जैसे छूत की बीमारी का विसरण परस्पर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में होता है। प्रपाती विसरण में विचारों का प्रसार निर्धारित क्रम में होता है। हैगरस्ट्रेण्ड ने नवोन्मेष की प्रक्रिया का प्रसार निम्नांकित 6 कारकों पर निर्भर बताया है।

1. भौगोलिक परिस्थितियाँ जिसमें धरातल समतल हो,
2. प्रसार की समयावधि एक निश्चित क्रम वाली होनी चाहिए,
3. प्रसार का साधन,
4. उद्‌भव के स्थल,
5. प्रसार की पहुँच का निश्चित स्थान, तथा
6. प्रसार का मार्ग।

स्थानिक विसरण पर संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त हैगरस्ट्रेण्ड ने अपने मॉडल के लिए निम्नांकित मान्यताएँ एवं नियम बताये हैं–

1. प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र समरूप मैदानी भाग हो जो एक समान कोष्ठों द्वारा विभाजित हो और सभी कोष्ठों में जनसंख्या का समान वितरण हो। ये कोष्ठ वर्गाकार होने चाहिए।
2. क्षेत्र की परिवहन प्रणाली सुव्यवस्थित एवं आदर्श हो।
3. क्षेत्र में प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक बाधाएँ न हों।

4. विचारों का प्रसार निश्चित समयावधि में हो।
5. आरम्भ में एक व्यक्ति के द्वारा ही दो कोष्ठों से सम्पर्क होना चाहिए।
6. किसी नवीन विचार को प्रसार के उपरान्त अपना लिया जाता है।
7. विभिन्न लोगों के परस्पर मिलने एवं वार्तालाप से विचारों का प्रसार होता है।
8. नवीन विचार का प्रसार जानकारी देने वाले एवं प्राप्त करने वाले व्यक्ति के मध्य की दूरी से भी प्रभावित होता है।

इस प्रकार हैगरस्ट्रेण्ड ने स्पष्ट किया कि विचारों का प्रसार सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के उपरान्त उक्त क्षेत्र में एक ऐसे प्रतिरूप का निर्माण होता है जो इस तथ्य को निरूपित करता है कि आरम्भिक अवस्था में विसरण केवल छोटे क्षेत्रों तक ही सीमित था। धीरे–धीरे अन्य क्षेत्रों में विसरण होने से इसका प्रभाव फैलता है।

हैगरस्ट्रेण्ड के इस मॉडल का भारतीय परिस्थितियों में प्रयोग प्रो. आर.पी. मिश्रा ने किया है। इन्होंने इस मॉडल के आधार पर मैसूर जनपद को 1 वर्गाकार कोष्ठों में विभक्त करके सन् 1895 से 1965 तक के 150 वर्षों की अवधि को 15 समान समयावधियों में विभाजित करके वहाँ कृषि सहकारी समितियों के विसरण की विवेचना की है।

1.6. भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति (Quantitative Revolution in Geography)

भूगोल में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अनुभवात्मक (Empirical) अध्ययनों के स्थान पर मात्रात्मक (परिमाणात्मक) अध्ययनों पर अधिक बल दिया जाने लगा, जिसे भूगोल में मात्रात्मक क्रांति कहते हैं। इस प्रकार के अध्ययनों में उच्चस्तर की गणित तथा सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करके मॉडल बनाये गये जो प्रादेशिक भौगोलिक अध्ययन व सामान्य भूगोल के अध्ययन में उपयोगी सिद्ध हुए। मात्रात्मक क्रांति के समर्थक भूगोलवेत्ता मानते हैं कि गणितीय सूत्रों के द्वारा हम इस विषय को और अधिक तर्कसंगत, विशुद्ध तथा क्रमबद्ध (Systematic) स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। इन गणितीय सूत्रों के द्वारा विभिन्न भौगोलिक सिद्धान्तों की जाँच करके उनमें यथासम्भव परिवर्तन किया जा सकता है जिससे भूगोल की वर्णात्मक भाषा पर गणितीय प्रभाव पड़ा।

मात्रात्मक क्रान्ति का दार्शनिक आधार प्रत्यक्षवाद है। भौगोलिक व्यवस्था को समझने के लिए सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों का प्रयोग मात्रात्मक क्रांति का मुख्य बिन्दु था। इस दिशा में प्रथम प्रयास बर्टन का रहा है। उन्होंने सन् 1965 में जर्नल ऑफ कनेडियन ज्यॉग्राफर के अंक 15 में एक शोध–पत्र 'The Quantitative Revolution and Theoretical Geography' नाम से प्रकाशित किया। ऐसी सम्भावना सन् 1958 में एकरमेन ने भी बतायी थी कि आने वाले समय में भौगोलिक विश्लेषणों में व्याख्यात्मक मॉडलों, प्रत्यागमन (Regression), सहसम्बन्ध (Correlation), विचलन (Variance) आदि का प्रयोग बढ़ेगा। इस प्रकार भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का प्रथम प्रयास तो सन् 1940 के दशाक में किया जा चुका था जिसको पृष्ठभूमि में वॉन थूनेन (1826), मार्क जेफरसन (1951), अल्फ्रेड वेबर (1909), वाल्टर क्रिस्टालर (1955) के विचार महत्त्वपूर्ण रहे हैं लेकिन सन् 1950 के दशक में सेफर तथा एकरमेन के प्रयासों को विशेष मान्यता मिली। हार्टशोन ने भी सन् 1959 में प्रकाशित "Perspective on Nature of Geography' में भूगोल में गणितीय विधियों के प्रयोग को स्वीकार किया था। भूगोल में मात्रात्मक क्रांति के सूत्रपात में वॉन न्यायमैन तथा मार्गेनस्टर्न को सन् 1944 में प्रकाशित पुस्तक "Theory of Games and Economic Behaviour" नोबर्ट बाइनर की सन् 1949 में प्रकाशित पुस्तक "Cybermatics" जी.के. जिफ की सन् 1949 में प्रकाशित पुस्तक 'Human Behaviour and the Principle of Least Effort' प्रमुख रही हैं।

मात्रात्मक भूगोल का आरम्भ सन् 1960 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका की विस्कोसिन, आयोवा, शिकागो, वाशिंगटन विश्वविद्यालयों से हुआ तथा शीघ्र हो ब्रिटेन, स्वीडन लुण्ड विश्वविद्यालय, फ्रांस व अन्य यूरोपियन देशों के विश्वविद्यालयों में फैल गया। ब्रिटेन में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पीटर हैगेट (Locational Analysis in Human Geography, 1965; Geography: Modern Synthesis, 1979) तथा रिचार्ड चोले (Models in Geography] 1967; Intergrated Models in Geography:1969; Socio Economics Models in Geography] 1969 सभी पी. हैगेट के साथ) तथा डेविड हार्वे नामक भूगोलवेत्ता ने स्थानीय विश्लेषणों (Locations Analysis) के लिए गणितीय विधियों का पूरा उपयोग किया। इसी प्रकार वाशिंगटन विश्वविद्यालय (USA) के विलियम गेरीसन, बी.जे.एल. बेरी (Computer Graphics and Environmental Planning] 1985) मार्बल, न्यास्ट्रन, मोरिल, नोफॉन (Kniffon) तथा आयोवा

विश्वविद्यालय से मेककार्टी तथा किंग (L-C- King) आदि प्रमुख गणितीय भूगोलवेत्ता हैं। इनके अतिरिक्त टो. हैगरस्टैण्ड तथा एलन प्रेड ने भी गणितीय विधियों का प्रयोग किया है। मात्रात्मक क्रान्ति के दौरान विलियम बुंगी (Theoretical Geography) ने भूगोल को भविष्यसूचक प्रतिरूपों को खोज के रूप में परिभाषित किया है।

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त सन् 1950 के दशक में भूगोल में गणितीय विधियों के प्रयोग को एक आवश्यकता बना दिया। भू–आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान तथा जीव भूगोल आदि प्राकृतिक भूगोल की शाखाओं में भी मात्रात्मक विधियों के प्रयोग को स्वीकार कर लिया गया। मानव भूगोल में सम्भववादी चिन्तन से प्रेरित होने के कारण इनके प्रयोग में थोड़ी कठिनाई आयी लेकिन बाद में इस पर सहमति बन गई थी। स्पेट ने सन् 1960 में प्रकाशित पुस्तक 'Quantity and Quality in Geography' में लिखा था कि प्रत्येक युवा भूगोलवेत्ता के लिए गणितीय विधियों का ज्ञान आवश्यक है। बर्टन ने भौगोलिक अध्ययन में सैद्धान्तिक अध्ययन की अनुशंसा करते हुए लिखा था कि, वैज्ञानिक सिद्धान्त वह छलनी है जिसके माध्यम से विद्यार्थी असंख्य सूचनाओं को अलग–अलग वर्गों में रख सकता है। इसके बिना सूचनाएँ निरर्थक अम्बार की तरह हैं। सिद्धान्त हमें वह साधन प्रदान करता है जिसकी सहायता से हम असामान्य तथा अनहोनी घटनाओं की पहचान कर सकते हैं। संक्षेप में सिद्धान्तों के अभाव में कोई अपवाद नहीं होता, प्रत्येक वस्तु अनूठी इकाई होती है। यही कारण है कि भूगोल के वैज्ञानिक अध्ययन में सिद्धान्तों का प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण है। भौगोलिक अध्ययनों में मात्रात्मक क्रांति के बाद उपयोग में ली गई गणितीय विधियाँ अनेक रूपों में उपयोगी सिद्ध हुई।

मात्रात्मक तकनीक आनुभाविक अवलोकन दृढ़ता से आधारित तथा तुरन्त सत्यापनीय है। सांख्यिकीय विधियाँ अनेक प्रेक्षण आँकड़ों व तथ्यों के कारकों के सीमित संख्या में घटाने में सहायक होती है। इस तकनीक द्वारा आँकड़ों के अनुमान, अन्तर्वेशन (Interpolation) व अनुरूपण (Simulation) में सहायता मिलती है। ये विश्लेषण पूर्वानुमान में भी सहायक हैं। इनसे भौगोलिक व्यवस्था का वर्णन एवं विश्लेषण करने व सरल बनाने में सहायता मिलती है। उद्योगों के अवस्थिति सिद्धान्त, कृषि भूमि उपयोग एवं भू–आकृतियों के विकास की अवस्थाओं को समझने में मात्रात्मक तकनीकी सहायक है। गणितीय विधियों के प्रयोग से संक्षिप्त भाषा एवं स्पष्टता के साथ विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं। भौगोलिक अध्ययनों में प्रयुक्त मॉडल स्पष्ट एवं पक्षपात रहित होते हैं तथा सम्बन्धित तथ्यों की प्रवृत्ति का भी स्पष्ट पता लग जाता है। जैसे अपरदन चक्र का मॉडल, जनांकिकीय संक्रमण मॉडल, विश्व के ताप कटिबन्धीय व्यवस्था एवं पवनों का विवरण आदि बिना अतिरिक्त विवरण के देखने मात्र से स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार भूगोल में मात्रात्मक तकनीकी के समावेश ने अनेक विश्लेषण एवं भविष्यवाणी आसान बनाई है।

एकरमेन का मानना था कि भौगोलिक अध्ययन में वास्तव में सिद्धान्त आधारित शोधकार्य होने चाहिए।

भौगोलिक शोधकार्य में साधारणीकरण को बढ़ावा देना चाहिए। शोधकार्य द्वारा ही भूगोल के विस्तृत क्षेत्र को परस्पर संयोजित कर समझा जा सकता है तथा शोधकार्यों में वास्तविक एवं सूक्ष्मदृष्टि का गुण गणितीय विधियों के समावेश से ही सम्भव है। इस सन्दर्भ में एकरमेन ने कहा था कि यथार्थपरक अध्ययन मात्राकरण पर निर्भर है। एकरमेन के इस लेख द्वारा भूगोल के तत्कालीन दर्शन में परिवर्तन आया तथा मात्राकरण को बढ़ावा मिला।

प्रो. आर.डी. दीक्षित के अनुसार, तत्कालीन विचारधारा के अनुसार भौगोलिक चिन्तन में वांछित परिवर्तनों के लिए आवश्यक था कि भूगोल में मात्रात्मक वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति अर्थात् गणितीय और सांख्यिकीय विधियों पर निर्भरता बढ़ाई जाए। इसी कारण सन् 1950 के दशक में भौगोलिक चिन्तन में आये इस व्यापक व क्रांतिकारी परिवर्तन को 'मात्रात्मक क्रांति' कहा गया। भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का बीजारोपण तो वास्तव में सन् 1940 के दशक में ही हो गया था लेकिन सन् 1950 के दशक में शेफर, एकरमेन व हैगेट के प्रयासों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मात्रात्मक क्रांति का चरमोत्कर्ष काल सन् 1960 के मध्य का माना जाता है। सन् 1959 में रिचार्ड हार्टशोर्न ने भी अपनी पुस्तक 'परस्पेक्टीव ऑन नेचर ऑफ ज्यॉग्राफी' में सांख्यिकीय विधियों की उपयोगिता को स्वीकार किया है।

पीटर हैगेट, रिचार्ड चोर्ले तथा डेविड हार्वे से पूर्व भी कुछ भूगोलवेत्ता मात्रात्मक विधि का प्रयोग करके मॉडल तथा सिद्धान्त प्रस्तुत कर चुके हैं, इनमें वॉन थ्यूनेन (John Henric Von Thunen, 1826) का भूमि उपयोग अवस्थिति सिद्धान्त, अल्फ्रेड वेबर (Alfred Weber, 1909) का औद्योगिक स्थानीयकरण सिद्धान्त तथा वाल्टर क्रिस्टालर (W- Christaller, 1933) का नगरों को केन्द्रीय स्थिति सम्बन्धी केन्द्रीय–स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory) प्रमुख हैं जो प्रत्यक्ष रूप से गणितीय सूत्रों पर आधारित थे। इनके उपरान्त सन् 1954 में अमेरिकी

भूगोलवेत्ता वीवर (J.C. Weaver) ने फसल–संयोजन प्रदेश (Crop Combination Region) बनाने में मात्रात्मक विधियों का उपयोग किया।

सन् 1960 में स्पेट (Spate O.H.K.) ने भी 'Quantity and Quality in Geography' नामक लेख में स्पष्ट किया था कि सांख्यिकीय विधियाँ भौगोलिक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण हैं तथा प्रत्येक युवा भूगोलवेत्ता को इनकी जानकारी होनी चाहिए।

मानव भूगोल के साथ–साथ शीघ्र ही भौतिक भूगोल में भी मात्रात्मक विधियों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। यद्यपि मानव भूगोल का अध्ययन सम्भववादी विचार से प्रेरित रहने के कारण इसमें मात्राकरण में कठिनाई आयी। भौगोलिक अध्ययन में सिद्धान्तों पर आधारित अध्ययन की अनुशंसा करते हुए बर्टन ने लिखा था कि "वैज्ञानिक सिद्धान्त एक ऐसी छलनी के समान है जिसमें से विद्यार्थी अनेक सूचनाओं को विभिन्न वर्गों में रख सकता है। इसके बिना ये सूचनायें एक बेकार ढेर की तरह हैं। सिद्धान्त हमें ऐसा साधन प्रदान करता है जिसकी सहायता से हम असामान्य और अनहोनी घटनाओं की पहचान कर सकते हैं। संक्षेप में, सिद्धान्तों के बिना कोई अपवाद नहीं होता, प्रत्येक वस्तु अनूठी इकाई होती है। इसीलिए वैज्ञानिक अध्ययन में सिद्धान्तों का प्रतिपादन इतना महत्त्वपूर्ण है।"

मात्रात्मक विधियों को अपनाने के कारण–

1. भूगोलवेत्ताओं का मानना है कि मात्रात्मक विधियों के उपयोग से भूगोल विषय को अधिक तर्कसंगत, विशुद्ध (Accurate) तथा क्रमबद्ध रूप दिया जा सकता है।
2. वर्णात्मक भूगोल का स्थान भूगोल के विश्लेषणात्मक विधि ने ले लिया।
3. भौगोलिक जाँच में संक्षिप्तता के साथ सारगर्भित स्वरूप भी सम्मिलित हो गया।
4. गणितीय विधियों के समावेश से भूगोल के उद्देश्य एवं भावना में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा।
5. भूगोल में गणितीय विधियों के आधार पर अध्ययन करने पर वैज्ञानिक विश्लेषण में सहायता मिलने लगी।
6. मात्रात्मक विधियों के समावेश से विस्तृत रूप में तथा परिवर्तन करके सार्थक कारकों में सम्मिलित किया गया।
7. इनके आधार पर विचारों का संरचनात्मक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप में विकास हुआ जिसकी जाँच सम्भव हुई।

इस प्रकार भूगोल में मात्रात्मक विधियों के समावेश से निम्न लाभ सामने आये–

1. गणितीय विधियों के आधार पर भौगोलिक सूचनाएँ एकत्रित करने, विश्लेषण तथा संश्लेषण करने में सहायता मिलती है।
2. मात्रात्मक विधियों से मॉडल तथा सिद्धान्तों का निर्माण आसानी से किया जा सकता है।
3. भूगोल के प्रादेशिक अध्ययन के दौरान प्रदेशों के सीमांकन (Demarcation) में सहायता मिलती है।
4. इन विधियों के उपयोग द्वारा वास्तविक परिणाम प्राप्त करने के लिए बार–बार की पुनरावृत्ति से बचा जा सकता है।
5. भौगोलिक वितरण प्रतिरूप का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो गया है।
6. मात्रात्मक विधियों की सहायता से संसाधनों के सर्वेक्षण की प्रक्रिया सरल हो गई जिस कारण नियोजन कार्यों में भूगोल की उपयोगिता बढ़ी है।

भूगोल के विधितंत्र में मुख्य रूप से सन् 1940 से 1950 के दशक में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग से सम्बन्धित व्यापक परिवर्तन देखा गया जिसकी पृष्ठभूमि भूगोल के बदलते स्वरूप एवं अन्तरानुशासनिक विषय के रूप में विकास रहा जिसके तहत पारम्परिक रूप से भौगोलिक विश्लेषण करते आ रहे भूगोलवेत्ता अब गणितीय विधियों को महत्त्व देने लगे। इसी दौरान अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के कुछ प्रमुख भूगोलवेत्ता सांख्यिकी एवं गणित में विशेषज्ञता रखने वाले थे जिन्होंने अपने अध्ययन में मात्रात्मक विधियों को आधार बनाया। प्रारम्भ में मात्रात्मक विधियों का प्रयोग मानव भूगोल में किया गया। इनमें प्रतिचयन, मध्यिका, माध्य एवं बहुलक, मानक

विचलन तथा चतुर्थक विचलन आदि का प्रयोग प्रमुख था। इसके बाद एकरमेन ने सहसम्बन्ध पर बल दिया। सन् 1950 के दशक में अधिवासों के वितरण, जलवायु में विश्लेषण आदि में गणितीय विधियों का प्रयोग किया गया। सन् 1950 के उत्तरार्द्ध मैं भूगोलवेत्ता वायु फोटोचित्रों एवं सुदूर संवेदन से प्राप्त आँकड़ों व कम्प्यूटर का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति पर गहन अध्ययन करके प्रो. हीरालाल यादव ने बताया कि एक निश्चित पद्धति की खोज के फलस्वरूप विगत कुछ दशकों में भूगोल के उद्देश्य एवं क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। नव–विश्लेषणात्मक शोध तकनीकों एवं नूतन विषय–सामग्री द्वारा परम्परागत विचारधारा का संशोधन करने से अध्ययन पद्धति में नवीनता आई है तथा भौगोलिक ज्ञान क्रियात्मक एवं व्यावहारिकताजन्य आयाम से युक्त हुआ है। सम्प्रति भौगोलिक समस्याओं के समाधान में गणित एवं सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग तथा संगणकों (कम्प्यूटर) की सुविधा और भूगोल विज्ञान के प्रति सामान्य दृष्टिकोण में परिवर्तन से भूगोल तथा सामान्य विज्ञान में समन्वय का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस उपागमजन्य परिवर्तन के प्रयास को मात्रात्मक क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति सन् 1950 के आस–पास प्रारम्भ हुई जो सन् 1955 से 1960 के मध्य अपने चरम बिन्दु पर थी और अब वह समाप्त हो चुकी है। एकरमान ने सन् 1958 में इस नवीन पद्धति पर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि यद्यपि भूतकाल में भौगोलिक वितरणों के विश्लेषण में सरलतम सांख्यिकी का उपयोग किया जाता था, किन्तु आज विषय जटिलतम सांख्यिकी विधियों–एक पूर्ण तार्किक विकास की ओर उन्मुख है। विश्लेषणात्मक मॉडल के प्रयोग तथा समाश्रयण, सह–सम्बन्ध, प्रसरण एवं सह–प्रसरण विश्लेषण के भूगोल में अधिकाधिक प्रयोग की आशा की जाती है। इन विधितंत्रों को आवश्यकता एवं मूल्यों की दृष्टि से भूगोल अन्य समाज विज्ञानों से भिन्न नहीं है। स्पेट (1960), यद्यपि मात्रात्मक विधि के प्रति कुछ सशंकित थे, तथापि मानते हैं कि ''नये भूगोलज्ञ अनुभव करेंगे कि बिना साख्यिकी–ज्ञान के वे समुचित रूप से सुसज्जित नहीं' तथा अन्त में असहाय हो यह भी जोड़ा कि 'युवा–भूगोलज्ञ न होने से वे भारमुक्त हैं।'

एक बौद्धिक क्रान्ति उस समय समाप्त हो जाती है जब परम्परागत मान्य विचारों को, नई मान्यताओं को सम्मिलित करने के लिए दूर फेंक दिया जाता है या परिवर्तित कर दिया जाता है। एक बौद्धिक क्रान्ति उस समय भी समाप्त हो जाती है जब क्रान्तिकारी विचार स्वयं परम्परागत बौद्धिकता के अंग बन जाते हैं। एकरमान, स्पेट या हार्टशोर्न जब कुछ के लिए सहमत हैं, तब हम परम्परागत बौद्धिकता की बात कर रहे हैं। अतः मेरा विचार है कि मात्रात्मक क्रान्ति जो कुछ समय तक रही, समाप्त हो चुकी है। अब किस दर से हमारे पाठ्यक्रमों में मात्रात्मक विधियों को स्थान मिल रहा है, इस पर ध्यान केन्द्रित करना है (बर्टन, 1965)।

यद्यपि यह क्रान्ति समाप्त हो चुकी है, इसके विभिन्न चरणों की परीक्षा करना लाभप्रद होगा, क्योंकि इससे मात्रात्मकता जैसे प्रश्न के लिए आधारभूमि प्रस्तुत होगी।

1.7. भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की दिशा

भूगोल सुदीर्घकाल से एक अनुयायी विज्ञान रहा है न कि अग्रणी। मुख्य विचारधाराओं का उद्भव अन्य क्षेत्रों में हुआ। वह हलचल जिसने भूगोल में क्रान्ति पैदा की, भौतिकविदों तथा गणितज्ञों द्वारा प्रारम्भ की गयी और जिसका सर्वप्रथम भौतिकशास्त्र, तदनन्तर जीवविज्ञानों में परिवर्तन हेतु विस्तार किया गया, आज यह अधिकांश समाज विज्ञानों–प्रमुखतः अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में समुचित रूप से प्रदर्शित होता है। प्रमुख पूर्ववर्ती विज्ञानों में, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भूगोल में इस क्रान्ति को लाने में विशेष योगदान रहा है, वॉन न्यूमान (एक गणितज्ञ) और मार्गेस्टर्न (अर्थशास्त्री) अपने गेम तथा आर्थिक व्यवहार सिद्धान्त के लिए (1944), नार्वर्ट विनेर (1948) जिसका साइबरनेटिक्स शैक्षिक इतिहास सीमाओं का अतिक्रमण करने का सुझाव देता है और जिफ, जिसने सन् 1949 में मानव व्यवहार तथा न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त को प्रकाशित किया मुख्य हैं। भौतिकविद् स्टीवर्ट का लेख 'जनसंख्या वितरण तथा समानता' से सम्बन्धित आनुभाविक गणितीय नियम सन् 1958 में ही 'ज्यॉग्राफिकल रिव्यू' में छपा। स्टीवर्ट 'समाज–भौतिकी' के विकास का अगुआ है।

कुछ प्राकृतिक तथा समाज वैज्ञानिकों द्वारा सन् 1949 में प्रीस्टन सम्मेलन में किये गये संयुक्त विज्ञप्ति से ही कदाचित समाज विज्ञानों में गणित के प्रयोग का सूत्रपात हुआ। इसके तुरन्त बाद भूगोल में मात्रात्मकता का प्रभाव अनुभव किया गया। अनेक विद्वानों द्वारा मात्रात्मक प्रयोग के प्रति सुझावों से इसका प्रारम्भ हुआ। ऐसे प्रयास सन्

1959 के आस–पास भी किये गये थे, पर इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वर्तमान क्रान्ति के सन्दर्भ में प्रथम प्रयास स्टाहलर द्वारा किया गया, जिन्होंने भूगोल में इसके प्रयोग को प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त लीस्टर, किंग, शोरले, ड्यूरी, मैंकेय, उलमान आदि मात्रात्मक विधियों के अग्रणी प्रयोगकर्ता हैं।

मानव तथा आर्थिक भूगोल में मात्रात्मक विधियों को आत्मसात करने में विशेष कठिनाई रही। सम्भववादी परम्परा के कारण यह आश्चर्यजनक नहीं। इस क्षेत्र में सन् 1950 के आस–पास नेल्सन के नगरों के 'सेवा–निर्धारण विधि' पर गैरिसन की टिप्पणी, भूगोल में सांख्यिकी विधियों के अल्प प्रयोग पर रेनॉल्ड तथा गैरिसन के विचारों के आदान–प्रदान, स्पेट–बेरी के 'आर्थिक भूगोल' में सम्पादकीय टिप्पणी में विचार, जिसमें स्पेट ने याद दिलाया कि 'सांख्यिकी सर्वोत्तम होते हुए भी अर्द्धजीवन युक्त है, शेषार्द्ध समझ एवं तार्किक विश्लेषण है,' जबकि बेरी ने इसके विपरीत मात्रापोषकों का पक्ष लेते हुए बताया है कि तथ्यों, सिद्धान्तों तथा विधि–तंत्रों के बीच स्पष्ट भेद हेतु यह विधि अपरिहार्य है, डेसी, जोबलर–मैकेय, राविंसन, लुकरमान तथा बेरी आदि के कार्य सम्मिलित हैं।

सन् 1956 के मात्रापोषकों ने विभिन्न व्यावसायिक पत्रिकाओं में अपने विचार सविस्तार से रखने प्रारम्भ कर दिये थे। सन् 1956 में 'रीजनल साइन्स परिषद्' की स्थापना से भूगोल में मात्रात्मकता को पुनः प्रोत्साहन मिला। पूर्ववर्ती क्रान्तिकारी अब तक भौगोलिक निर्माण के अंग बन चुके हैं तथा उनके कार्य हमारे विषय के स्वीकृत तथा एक उच्च स्तरीय अंग हैं।

भूगोल में मात्रात्मक विधियों का प्रयोग (Application of Quantitative Methods in Geography)

विगत शताब्दी में भूगोल में मात्रात्मक विधियों का उपयोग काफी बढ़ा है। यह उपयोग मुख्यतः निम्नलिखित दो रूपों में हुआ है–

1. आँकड़ों का संग्रह (Collection of Data)
2. आँकड़ों का प्रसंस्करण (Processing of Data)

उपर्युक्त प्रक्रियाओं का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जाता है–

1. वर्णात्मक (Descriptive)
2. अनुमानित (Inferential)
3. क्षेत्रीय सांख्यिकी (Spatial Statistics)
4. बहुपदीय सांख्यिकी (Multivariate Statistics)

(1) वर्णात्मक (Descriptive)– इस विधि का प्रयोग सन् 1940 से 1960 के दौरान किया गया जिसमें निम्नलिखित प्रक्रियाओं को महत्त्वपूर्ण माना गया–

(क) आरेख एवं आरेखीय निरूपण

(ख) केन्द्रीय पद्धति का अध्ययन

(ग) जनसंख्या प्रक्षेपण

(घ) माध्य विचलन

(2) अनुमानित (Inferential)– इस तकनीकी का प्रयोग विस्तृत क्षेत्रों में, जनसंख्या के प्रतिदर्श लेकर निष्कर्ष निकालने के लिए किया जाता है। इसमें सांख्यिकीय विधियों का चयन आँकड़ों के आधार पर किया जाता है। इस दृष्टि से स्वतंत्र चरों को जाँच सहसम्बन्ध तकनीको द्वारा की जाती है।

(3) क्षेत्रीय या स्थानिक सांख्यिकी (Spatial Statistics)– इसमें विभिन्न विश्लेषणों एवं मॉडलों के आधार पर स्थानिक वितरण स्पष्ट किया जाता है। ये तकनीक निम्नलिखित हैं–

(1) प्रारूप या प्रतिरूप विश्लेषण – प्रारूप तीन प्रकार के होते हैं–प्रथम, नियमित प्रारूप, द्वितीय, आकस्मिक या यादृच्छिक प्रारूप तथा तृतीय पुजित प्रारूप। भूगोल में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण, चतुर्थक प्रतिचयन आदि के द्वारा अध्ययन करते हैं। सन् 1954 में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण विधि का प्रयोग इवांस एवं क्लार्क ने अधिवास वितरण प्रारूप के लिए किया था। उत्क्रममाप विश्लेषण (Entropy Analysis) का प्रयोग मेडवेडकोव ने किया था। (2) प्रवाह विश्लेषण (Flow Analysis)–ऐसे विश्लेषणों के अन्तर्गत किसी वस्तु के घनत्व, चौड़ाई, आयतन तथा मूल्य को दर्शाया जाता है। इसमें गुरुत्व मॉडल (Gravity Model), तंत्र या जाल विश्लेषण (Network Analysis) तथा रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming) का प्रयोग करते हैं।

(3) पूर्वानुमानित एवं नियतन मॉडल (Predictive and Allocation Modeसे)–ऐसे मॉडलों का प्रयोग जनसंख्या वितरण को प्रवृत्ति को देखने के लिए किया जाता है।

(4) बहुपदीय सांख्यिकी (Multivariate Statistics)–वर्तमान में कोई भौगोलिक घटना एक कारक पर निर्भर न होकर विविध कारकों या चरों पर निर्भर करती है। ऐसे विश्लेषणों में बहुपदीय सांख्यिकी का प्रयोग करते हैं।

क्रान्ति के परिणाम (Consequences)

यह क्रान्ति इस दृष्टि से समाप्त हो गई है कि समय विशेष की क्रान्तिकारी विचारधाराएँ अब एक परम्परा बन चुकी है। स्पष्टतः यह एक प्रारम्भ मात्र है। एक नई पद्धति के निर्माण के अतिरिक्त इसका एक अन्य उद्देश्य भी है। यदि वह क्रान्ति मात्रात्मकता में स्वकीय विश्वास अथवा शौक या फैशन से प्रोत्साहित हुआ होता तो अपनी ही गति से उसकी इतिश्री हो चुकी होती, किन्तु इस क्रान्ति का एक अलग ही उद्देश्य था। भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने और सिद्धान्तों को विकसित करने की सही आवश्यकता से ही प्रोत्साहित हुआ था। गुणात्मक, शाब्दिक व्याख्या अर्थात् इडियोग्राफिक (Ideographic) के प्रति असंतोष ही मात्रात्मक क्रान्ति के उद्‌भव का मूल रहा है। सैद्धान्तिक तथा मॉडल–निर्माणजन्य भूगोल का विकास ही कदाचित मात्रात्मक क्रान्ति का प्रमुख प्रतिफल है।

'सिर्फ वर्णन करना' एक कला हो सकती है, तो भी 'वर्णन' वैज्ञानिक विधि का एक अनिवार्य अंग है। यथार्थ विश्व की जाँच करते समय हमारा प्रथम कार्य द्रष्टव्य का वर्णन और उन अवलोकनों को सुविधाजनक प्रयोग हेतु सार्थक वर्गों में विभक्त करना होता है, ज्यों ही भूगोलज्ञ का एक क्षेत्र का वर्णन प्रारम्भ होता है वह चयनात्मक हो जाता है और चयन की यही क्रिया 'सार्थक क्या है?' से सम्बद्ध चेतन या अचेतन में सिद्धान्त या परिकल्पना को प्रदर्शित करती है। वस्तुतः यह सार्थकता की माप किसी अन्तर्सम्बन्धजन्य सिद्धान्त द्वारा ही की जा सकती है जबकि सिद्धान्तों के विकास के लिए, विभिन्न कारकों, यथा–सांस्कृतिक स्वरूपों, मानव–क्रियाकलापों या प्राकृतिक कारकों की भू–वैन्यासिक व्यवस्था में एकरूपता का अवलोकन तथा वर्णन करना प्रथम सोपान है। सिद्धान्त ऐसे मापन प्रस्तुत करते हैं जिनसे असामान्य एवं विलक्षण घटनाओं को पहचाना जा सकता है। सिद्धान्तहीन विश्व में कोई भी चीज विलक्षण नहीं होती, हर चीज ही अनन्य (Unique) होती है। इसीलिए सिद्धान्त का महत्त्व है। सिद्धान्त को विकसित करने की आवश्यकता के साथ ही मात्रात्मक क्रान्ति का विकास हुआ जिसने सिद्धान्तों को विकसित तथा संशोधित करने की तकनीकी प्रदान की। यह निश्चित नहीं कि प्रारम्भिक मात्रापोषक सिद्धान्त विकसित करने के लिए अभिप्रेरित थे, किन्तु अब भूगोलज्ञों को यह स्पष्ट हो गया है कि मात्रात्मकता जटिल रूप से सिद्धान्त से आबद्ध है।

वैज्ञानिक विधियों के कठोर परिपालन–सिद्धान्तों के विकसित करने तथा प्रयुक्तियुक्त परीक्षण की आवश्यकता की पूर्ति हेतु गणित एक सर्वोत्तम उपलब्ध औजार है। अन्य औजार–भाषा, मानचित्र, प्रतीकात्मक तर्क भी उपयोगी तथा कुछ दृष्टान्तों में पर्याप्त होते हैं, किन्तु गणित की भाँति हमारी आवश्यकताओं की किसी से भी पूर्ति नहीं होती।

सिद्धान्तों का परिमाणन एवं सम्बन्धों के प्रदर्शनार्थ गणित के प्रयोग का दो आधारों पर समर्थन किया जा सकता है–प्रथम, यह अधिक दृढ़ होता है तथा द्वितीय, किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण, वह आत्मवंचना रहित या स्वयं को धोखे में रखने का उपयुक्त साधन है।

चेतावनी (Warning)

मात्रात्मक क्रान्ति एक दार्शनिक क्रान्ति से सम्बद्ध है। यदि हम अपने दर्शन को समायोजित नहीं कर सकते तो मात्रात्मक प्रक्रिया हमें सीधी एक अंधी गली में ले जा सकती है। साथ ही, मात्रात्मक मार्ग पर चलते हुए

पूर्व–मूल्यांकित अधिकांश दार्शनिक विचारों को अक्षुण्ण रखा जा सकता है। यदि परम्परागत भौगोलिक विचारों के रचनात्मक पक्ष तथा मात्रात्मकता द्वारा प्रयुक्त दर्शन के निकट जाने का प्रयास कर सकें, तो आश्चर्यजनक रूप से पाया जाएगा कि भूगोल का दर्शन कितना विस्तृत तथा शक्तिशाली हो गया है। इससे विचारों के एक ऐसे नये संसार का द्वार खुलेगा जिसमें हमें सैद्धान्तिक तथा संश्लेषणात्मक रूप से विचार करने में कोई भय नहीं होगा, जिससे हम व्यक्ति तथा समूह से एक ही वाक्य में बात कर सकते हैं तथा जिससे हम प्रारूपों का सामान्यीकरण तथा क्षेत्रीय सम्बन्धों में विशिष्टीकरण एक ही सन्दर्भ वाक्य में प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार मात्रात्मकता में वैज्ञानिक विधियों के दर्शन ही निहित हैं। मात्रात्मकता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यही रहा कि इसने हमें तार्किक एवं सतत रूप से इस बात पर सोचने के लिए प्रेरित (मजबूर) किया कि कौन क्षेत्र अभी अछूते हैं। संक्षेप में, हम भूगोल में वैज्ञानिक विधियों की भूमिका में रुचि लेने लगे हैं।

पुनः विज्ञान हमें एक तेज औजार प्रदान करता है, किन्तु जैसा अधिकांश शिल्पी कहते हैं, तेज औजार ही गलत प्रयोग किए जाने पर सर्वाधिक क्षति पहुँचा सकते हैं। गणित तथा सांख्यिकी द्वारा अत्यन्त तेज औजार ही प्रदान किए जाते हैं। गणित जहाँ हमें तर्क को दृढ़ करने और उसके सरलतम निर्माण का माध्यम प्रदान करता है, सांख्यिकी द्वारा आँकड़े से सम्बन्धित विश्लेषण तथा परिकल्पना परीक्षण के औजार प्रदान किये जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि भूगोलविदों द्वारा इन औजारों का बहुधा दुरुपयोग हुआ तथा इन्हें गलत समझा गया है।

यदि हमें इन तीव्र औजारों को अपने अध्ययन में प्रयोग करते समय समुचित नियंत्रण करना है तो उन दार्शनिक तथा विधितंत्रीय मान्यताओं का, जिन पर उनके प्रयोग आधारित हैं, ज्ञान आवश्यक है। ये मान्यताएँ, निश्चित ही, स्पष्टतः वैज्ञानिक विधि के विश्लेषण द्वारा ही बनती हैं। किन्तु हमें यह निश्चित कर लेना होगा कि इस निश्चित वैज्ञानिक औजार से सम्बन्धित जो मान्यता स्वीकार करते हैं उन विस्तृत मान्यताओं से संघर्ष (द्वन्द्व) न करते हों और जो हम तर्कनापरक युक्ति (Inference) तथा अनुमान हेतु मानक को निश्चित करने में प्रयुक्त करते हैं। इस प्रकार जहाँ मात्रात्मक तकनीक और

सामान्य तर्कतापरक युक्ति तथा अनुमान एक साथ आते हैं, उस बिन्दु पर एक पूर्ण विधि की समस्या पर दोहरा ध्यान देना होता है। इसीलिए मात्रात्मकता का महत्त्व है। अतः भौगोलिक अध्ययन में प्रत्येक स्तर पर मान्यताओं में पुनर्मेल करना आवश्यक होता है।

आलोचना (Criticism)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आचरण भूगोल एवं मानववादी दृष्टिकोण के विकास के कारण मात्रात्मक क्रांति की आलोचना होने लगी। भूगोल में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग की विभिन्न विद्वानों ने आलोचना की जिनका विवरण निम्नलिखित है–

1. भूगोल के सभी प्रकरणों की व्याख्या गणितीय विधियों द्वारा सम्भव नहीं थी। मानव भूगोल की मानव पर्यावरण सम्बन्धों की संकल्पना की व्याख्या गणितीय भाषा से नहीं हो सकती है।
2. मात्रात्मक क्रांति का मूल दर्शन प्रत्यक्षवाद पर आधारित है जो स्थानिक विज्ञान की क्रिया पद्धति के अनुसार चलता है। इस कारण विषय को रेखागणित तक सीमित कर दिया है।
3. मात्रात्मक तकनीक अवस्थिति विश्लेषण पर आधारित होने के कारण पूँजीवाद को बढ़ावा देती है जहाँ प्राकृ–तिक संसाधनों का अनियमित शोषण किया जाता है। फलस्वरूप धनी एवं निर्धन के मध्य दरार बढ़ती जाती है। साथ ही उच्च तकनीकी से विकसित मशीनों के प्रचलन से बेरोजगारी बढ़ती है।
4. आनुभाविक आँकड़ों पर आधारित मॉडलों एवं सिद्धान्तों द्वारा अनेक मानकीय (Normative) प्रश्नों की व्याख्या सम्भव नहीं है। इनमें मनोभाव (Emotion), व्यवहार (Attitude), इच्छाएँ (Desires) आशाएँ, डर आदि प्रमुख हैं।
5. मात्रात्मक क्रांति का प्रमुख कमजोर पक्ष यह रहा कि इसके बाद गणित आधारित तकनीकों से विकसित मॉडलों के प्रयोग से मानव की निष्क्रियता में वृद्धि हुई है।
6. गणितीय तकनीकी पर आधारित अनुमान एवं भविष्यवाणी सदैव सत्य नहीं होती है।
7. भूगोलशास्त्री बिना किसी अनुभव के तथा आवश्यकता के मात्रात्मक विधि का उपयोग करने लगे।

जहाँ वर्णात्मक विधि का उपयोग अधिक उपयोगी था वहाँ भी इस विधि को अपनाया गया।

8. इसने अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह सीमाओं में जकड़ दिया।
9. स्टाम्प (L.D. Stamp) तथा मिंशुल (Minshull, R.) के अनुसार, इन विधियों का अंधाधुंध उपयोग किया गया, जो अस्वीकार्य है। इनके अनुसार भूगोल की परम्परागत, वर्णनात्मक एवं मानचित्रण विधि अत्यन्त सशक्त विधि है। अतः हमें इन्हीं में सुधार करना चाहिए।

भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की विभिन्न कमजोरियों के बाद भी इनको आधार मानकर विश्लेषण किये जाने लगे तथा आज भौगोलिक अध्ययनों एवं विश्लेषणों में गणितीय विधियों का प्रयोग एक आवश्यकता बन गया है। सन् 1960 के दशक में यह वाशिंगटन, विस्कान्सिन व आयोवा आदि अमेरिकी केन्द्रों तथा ब्रिटेन व स्वीडन सहित यूरोप में भी गणितीय विधियों का प्रयोग बढ़ा। स्वीडन के लुण्ड विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग सैद्धान्तिक भूगोल का केन्द्र बन गया। जहाँ अनेक देशों से विद्वान् शोध के लिए आने लगे। इसी अवधि में पीटर हैगेट, रिचार्ड चोले व डेविड हार्वे आदि ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं ने एक साथ मॉडल विकसित किये। इन्होंने ही कम्प्यूटर की आवश्यकता महसूस की थी। (Berry B.J.L., 1961 रू. 45–52) यद्यपि सन् 1950 के दशक में हार्वे ने यह कह दिया था कि अब मात्रात्मक क्रांति ने अपनी यात्रा पूरी कर ली है तथा अब यह धीरे–धीरे हासमान हो रही है।

भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की यद्यपि अनेक भूगोलवेत्ताओं ने आलोचना की है लेकिन वास्तव में भूगोल में वैज्ञानिक विश्लेषण मात्रात्मक विधियों के आधार पर ही सम्भव हुए हैं। सन् 1960 के बाद अधिकांश शोधकर्ताओं ने इन विधियों को अपनाया तथा इनका उपयोग सिद्धान्त एवं मॉडल बनाने में किया। प्रारम्भ में गणितीय विधियों का प्रयोग मानव भूगोल में किया। सिद्धान्तों एवं मॉडलों द्वारा मानव पर्यावरण सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या की गई लेकिन इसकी प्रतिक्रिया में मानव भूगोल में आचरण एवं मानवीय पद्धतियों को प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार भूगोल अन्य समाज विज्ञानों के साथ ही अनुमानों एवं भविष्यवाणियों का मिला–जुला प्रयोग आवश्यक माना गया।

1.8 सारांश

भौतिक भूगोल में भी गणितीय विधियों के आधार पर अनेक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं को मॉडल निर्माण कर दर्शाया जाता है। वर्तमान में विवर्तनिक घटनाओं एवं जलवायु एवं मौसमी विश्लेषणों में गणितीय विधियों का सहारा लिया जाता है। वर्तमान में कम्प्यूटर आधारित विश्लेषणों में गणितीय विधियाँ आवश्यकता बन गई हैं। मानचित्र कला का वर्तमान स्वरूप बिना गणितीय विधियों के समावेश के अधूरा है। पीटर हैगेट, चोर्ले एवं हार्वे ने भौगोलिक निदर्शन (Paradigm) एवं मॉडल निर्माण में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग में कम्प्यूटर को आवश्यक बताया था।

1.9 शब्द सूची

1 आँकड़ों का संग्रह (Collection of Data)

2 आँकड़ों का प्रसंस्करण (Processing of Data)

3 वर्णात्मक (Descriptive)

4 अनुमानित (Inferential)

5 क्षेत्रीय सांख्यिकी (Spatial Statistics)

6 बहुपदीय सांख्यिकी (Multivariate Statistics

1.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

- भूगोल में प्रतिरूपों के पक्ष को उजागर कीजिये।
- भूगोल में प्रतिरूपों में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट कीजिये।

- भूगोल के प्रतिरूप के प्रकार स्पष्ट कीजिये।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की ंब्याख्या कीजिये।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की दिशा स्पष्ट कीजिये।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की गुणों दोषो को ंब्याख्या कीजिये।

1.11 संदर्भ / उपयोगी पुस्तकें

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. बी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. बी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation of Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई– 2 तन्त्र की संकल्पना, तन्त्र के प्रकार, भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 तन्त्र की संकल्पना

2.3.1. तंत्र की संरचना

2.3.2. क्षेत्र की सीमाएं

2.3.3. तन्त्र का पर्यावरण

2.4 तन्त्र के प्रकार

2.4.1. होम्योस्टेटिक तंत्र

2.4.2 अनुकूलशील या एडाप्टिव

2.4.3. गत्यात्मक तंत्र

2.5 भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

2.6 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 बोध प्रश्न

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल की आधुनिक या नवीन प्रवृत्तियों में तन्त्र या विधि सिद्धान्त भी एक है। यह एक विश्लेषण परक साधन है जो सभी विज्ञानों में कार्य पद्धति के रूप में विकसित हुआ है। यह विभिन्न विधियों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। सन 1920 में शिकागों में आयोजित एक वैज्ञानिक संगोष्ठी में विख्यात जीव वैज्ञानिक फॉन बर्टनलाफी ने सर्वप्रथम इस अवधारणा पर एक वक्तव्य दिया था। इसके बाद सन 1920 के बाद में इसे परिभाषित करने का कार्य पी. ई. जेम्स ने किया तथा बताया की तंत्र एक समष्टि है। इसके सारे अवयव एक दूसरे से सम्बन्धित है। यह समग्रता में ही कार्यरत रहता है। यह समग्रता व्यक्ति, राज्य, संस्कृति अथवा किसी व्यापारिक संगठन की हो सकती है। तंत्र एक प्रकार का विचार है जिसमें विभिन्न विषय आपस में जुड़े होते है तथा ये एक श्रृंखला के रूप में पाये जाते है। भूगोल विषय में कार्यवाद के समावेश के बाद तंत्र विश्लेषण अपरिहार्य हो गया क्योंकि तंत्र की संकल्पना ही कार्यात्मक सिद्धान्त का मूलाधार है। यह विशिष्ट गुण–धर्मों युक्त वस्तुओं एवं तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते है। तंत्र को कई प्रकार के विशिष्ट उदाहरणों से समझा जा सकता है। जिसका उल्लेख आगे अध्याय में किया जाएगा।

2.2.उद्देश्य

- तंत्र की संकल्पना को स्पष्ट करना।
- क्षेत्र के मूलाधार भूगोल के कार्यात्मक स्वरूप करना।
- तंत्र के प्रकारों पर प्रकाश डालना।
- भूगोल में तंत्र विश्लेषण के स्वरूप को स्पष्ट।
- तंत्र विश्लेषण से जुड़े सभी पहलुओं को प्रकाशित करना।
- तंत्र के माध्यम से भूगोल में अन्तर्सम्बधो के अध्ययन को स्पष्ट करना।

 तंत्र विश्लेषण द्वारा किसी बिन्दु की मूल बात को समझना।

2.3. तंत्र की संकल्पना

जैसा की ऊपर प्रस्तावना में बताया गया है भूगोल की नवीन प्रवृतियों मैं तंत्र या विधि सिद्धान्त भी एक विषय है। यह एक विश्लेषण परक साधन है जिनमे सभी तत्व आपस में अंतर्सम्बधित है। वह विशिष्ट गुण–धर्मो युक्त वस्तुओं व तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बधित होते हैं किसी भी विषय में तंत्र के अन्तर्गत निम्न तत्वों का होना अनिवार्य है।

1) घटक तत्वों का गुच्छ जिसकी पहचान तत्वों के विभिन्नतापूर्ण गुर्ण धर्म में निहित है उनको स्पष्ट करता।

2) तत्व के गुण धर्मों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की श्रृंखलाएं,

3) तत्वों के उन गुण धर्मों एवं पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की श्रृंखलाये जो तंत्र से जुड़ी हुई है।

तंत्र एक विचार है जो किसी भी विषय को उसकी विभिन्न श्रृंखलाओं व उससे संबधित विचारों को जानने में सहायता करता है। उदाहरण के लिए जैसे शहर में जलापूर्ति की एक व्यवस्था है। इसके लिए ऊँचाई पर एक टैंक जल संचय के लिए है जिसमें से अनेक घरों में नलों का गुच्छ होता है। टैंक व नलों का गुच्छ कुछ विशिष्ट गुण–धर्म युक्त होता है जो जल आपूर्ति के लिए बनाए जाते हैं। इसके लिए एक मुख्य पाइप लाइन तथा उससे कई छोटी–छोटी पाईप लाईने डाली जाती हैं। इनके रख रखाव व मरम्मत के लिए भी पुख्ता इंतजामात किए जाते है। जिनके मध्य एक प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध होता है। संचयी टैंक अपने बाह्य पर्यावरण अर्थात जल स्त्रोत मे जुड़ा होता है तथा उनकी क्षमता जल उपलब्धि की दशाओं, विद्युत आपूर्ति पम्पसेट की क्षमता आदि के अनुरूप होती है। दूसरी ओर घरों में लगे नल उपभोक्ता की जरूरतों के अनुरूप होते हैं। यह सब एक छोटे पैमाने के तंत्र का प्रतीक है।

तंत्र की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी है उसमें किसी न किसी रूप में ऊर्जा का प्रवाह होता है चाहे वह सूचना तंत्र, यातायात का प्रवाह तंत्र, जल के प्रवाह तंत्र के रूप में हो उनमें ऊर्जा का प्रवाह होता है। ऊर्जा ही तंत्र को गतिशील करती है। उसमें विभिन्न प्रकार की शाखाओं व संरचनाओं का विकास करती है। ऊर्जा का प्रवाह जितना अधिक होगा तंत्र उतना ही अधिक फैलेगा। यदि का प्रवाह कम कर दिया जाए तो तंत्र संकुचित हो जाएगा. जैसे किसी पेड़ में पोषक तत्वों व जल की आपूर्ति बढ़ा दी जाए तो वह और अधिक विस्तारित रूप से फैलेगा।

2.3.1. तंत्र की संरचना

तंत्र के दो मूल घटक है।

1) घटकतत्व–यह तंत्र की मूल इकाई है जो इकाई तंत्र के पैमाने से परिभाषित होती है। एक वृहत स्तर पर जो घटक तत्व मात्र इकाई है, लघु उत्तर पर वही सम्पूर्ण तना माना जाता है। जैसा कि एक वृहद पारिस्थितिक तंत्र में रेल, सडक, वायुमार्ग घटक तत्व माने जाते है जो आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध है जुड़े हुए है मिलकर एक तन्त्र का निर्माण करते हैं। इसी के अन्तर्गत रेलो का मार्ग जाल एक तना है तथा उसके स्टेशन, जंक्शन, चाल वाहन आदि को घटक तत्व माना जा सकता है। इस प्रकार तन्त्र एवं घटक तत्व की परिभाषा प्रेक्षण स्तर के अनुसार परिवर्तनशील है। तन्त्र का कोई घटक तत्व एक इकाई के रूप में नही वरन विशेष गुण–धर्म युक्तता हेतु महत्वपूर्ण होता है। जैसे किसी के कार्यालय में कार्य करने वाले सभी कर्मचारी एक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि घटक तत्व तंत्र से जुड़ा हुआ है। यह तन्त्र का ही एक ही हिस्सा है। एक तन्त्र के अन्तर्गत कई घटक तत्व हो सकते है जो मिलकर तन्त्र का निर्माण करते हैं। तना की इस संकल्पना को कई स्तरों पर रखकर इसे समझा जा सकता है।

अन्तर्सम्बन्ध या श्रृंखलाये

घटक तत्व के साथ श्रृंखलाएं भी तंत्र के अभिन्न अंग है श्रृंखलाओं को तीन प्रकारों में व्यक्त किया जा सकता है।

(अ) क्रमिक श्रृंखला (सम्बन्ध)

इसमें विभिन्न घटक तत्व अनुक्रमणीय श्रृंखला से आबद्ध होते हैं। उसमें अ–ब–स प्रकार का कार्य कारणवत सम्बन्ध रहता है। इसमें किसी भी तत्व को हटाया नहीं जा सकता क्योंकि यह क्रमिक है एक श्रृंखला के रूप में है। जिसमें किसी भी तत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती है तत्वों का संयोजन रखने से ही इसमें निरन्तरता बनी रहती है और एक , विकसित तन्त्र का निर्माण हो पाता है। जैसे टैंक से नलों में पानी पहुँचेगा और नल इसे घरों तक पहुंचाएगें।

(ब) समानान्तर श्रृंखला

इसके अन्तर्गत दो घटक तत्व एक साथ किसी तीसरे तत्व से प्रभावित होते है जैसे रेल परिवहन के कन्ट्रोल रूम है। गड़बड़ी होने पर एक साथ स्टेशन मास्टर व रेल चालक प्रभावित होंगे। इस तरह यदि जहाँ से तंत्र शुरू हो रहा है वही पर गडबडी आ जाए तो आगे का तंत्र संचालित नहीं हो पाएगा।

(स) पश्च प्रभावी –

किसी तंत्र में श्रृंखला के अन्तर्गत संचालित कई घटक तत्व स्वयं को प्रभावित करते है। यह अन्य सम्बन्धित घटक तत्वों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए किसी तन्त्र में श्रृंखला के अन्तर्गत कई घटक तन्त्र स्वयं जहां में तन्त्र की शुरूआत हो रही है उस पर यह निर्भर करेगा की उससे जुड़े हुए तत्वों को वह कितना आगे तक ले जा पाता है। यदि रेल का इंजन मार्ग में ही रुक जाएगा तो वह स्वयं के साथ यात्रियों को व स्टेशनों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए तंत्र के मुख्य घटक को अपनी स्थिति का सही अंदाजा होना चाहिए।

(द) मिश्रित श्रृंखला

ऊपर तंत्र की संरचना के दो घटकों का जिक्र किया गया है जो सभी एक श्रृंखला के रूप में संचालित होकर एक दूसरे से अन्तर्सम्बधित है। इस प्रकार के सम्बन्ध को सरल मिश्रित अन्तर्सम्बन्ध भी कह सकते हैं। जिसमें सभी तत्वों के सम्मिलित सहयोग व प्रभाव से ही तत्र का संचालन किया जा सकता है।

घटक तत्व व उनके मध्य अन्तर्सम्बन्ध के अतिरिक्त तंत्र का आचरण अर्थात उसकी कार्यप्रणाली भी महत्वपूर्ण है। तंत्र की कार्य प्रणाली, प्रवाह, प्रेरणा, अनुक्रिया, निवेश उत्पाद आदि की ओर इंगित करती है। इसी के अन्तर्गत तंत्र की आन्तरिक व बाह्य कार्यप्रणाली तथा उसका पर्यावरण के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अर्थ तंत्र में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओ ंकी अंतिम मांग तथा उसके आधार पर निर्मित विभिन्न वस्तुओं की मांग– पूर्ति का चार्ट इसका उत्कृष्ट उदाहरण है यदि अर्थतन्त्र की आन्तरिक दशाओं पर ध्यान दिया जाए तो विभिन्न वस्तुओं के निवेश–उत्पाद श्रृखला को उनके तकनीकी गुणांक के आधार पर निर्मित किया जा सकता है जैसे अर्थ तंत्र में 50 मिलियन टन इस्पात की अंतिम खपत है और एक टन इस्पात निर्माण के लिए कितना कोयला, कच्चा लोहा, मैगनीज, चूना लगता है। यह गुणांक है तो इन सबको अलग–अलग मांग ज्ञात की जा सकती है। इन सब वस्तुओं को इकट्ठा करने की परिवहन गुणांक भी ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थतन्त्र का प्रेरक –अनुक्रिया प्रारूप में चार्ट तैयार किया जा सकता है। इसके साथ यह भी देखा जा सकता है कि देश में समय के साथ जनसंख्या में कितनी वृद्धि होती है और बढ़ती जनसंख्या में वृद्धि मांग में वृद्धि करती है। जिसे प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार तंत्र की आन्तरिक क्रियाशीलता तथा बाल पर्यावरण से अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन तंत्र के आचरण के अंतर्गत आता है। तंत्र अध्ययन की एक ऐसी विद्या है जिसे किसी भी पहलू पर रखकर देखा जा सकता है।

2.3.2. क्षेत्र की सीमाएं

तंत्र की भी सीमाएं होती है। जैसे किसी भी समाज विज्ञान के विषय की सीमाएं होती हैं। उसी प्रकार तंत्र की कार्यशीलता का विवेचन तभी सम्भव है जब उसकी सीमाएं सुस्पष्ट हो। यदि तंत्र सुपरिभाषित हो और उसके घटक तत्व सर्वथा विलग हो तो उसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकती है। किसी भौगोलिक प्रदेश अपना कितनी सामाजिक समुदाय अथवा पारिस्थितिकी इकाई का भी विवेचन तन्त्र परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत विवेक द्वारा तंत्र को परिसीमित करना पडता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सीमाएं किसी तथ्यात्मक आधार का अनुसरण नहीं करती है अथवा वास्तविक दशाओं की अनदेखी करती है। इसका अर्थ मात्र इतना है कि 'तन्त्र का परिसीमन, उद्देश्य के अनुरूप किया जाता है। तंत्र एक उद्देश्य को लेकर शुरू होता है। जहां उद्देश्य पूर्ण हो जाता वहाँ एक को पूर्ण हो जाता है।

2.3.3. तन्त्र का पर्यावरण

तंत्र के पर्यावरण के अन्तर्गत उसके उच्च स्तरीय तंत्र एवं उसके ऐसे घटकतत्व समाहित होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव अध्ययन के दौरान तंत्र के आचरण पर पड़ता है। ऐसे सभी तथ्य जो जिनका तन्त्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तथा जो सार्थक नही होते है तन्त्र के पर्यावरण में शामिल नहीं किए जाते है जैसे एक औद्योगिक तंत्र के पर्यावरण के लिए मिट्टी उस तन्त्र का अंग नहीं है। परन्तु देश की आयात–निर्यात नीति उसके व पर्यावरण का अंग है जैसे किसी राज्य स्तरीय राजनीतिक तन्त्र के लिए राष्ट्र स्तरीय राजनीति बाह्य पर्यावरण है कुछ स्थितियों में तंत्र के दो पर्यावरण भी हो सकते है जैसे वहां का कोई राजनीतिक दल की राष्ट्र के लिए राजनीतिक गतिविधियां व अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन। इस प्रकार तंत्र का अपना एक निश्चित पर्यावरण होता है जिसके अन्तर्गत तंत्र फलता–फूलता है विकसित होता है। अपना प्रसार करता है तथा अपने घटक तत्वों को इस पर्यावरण में जोड़े रखता है।

2.4. क्षेत्र के प्रकार

सामान्यतया तंत्र को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

(1) खुला तंत्र

(2) बन्द तन्त्र।

खुला तंत्र वह तंत्र होता है जिसमें तंत्र व उसके पर्यावरण से अन्तक्रिया का ध्यान रखा जाता है। खुला तंत्र अधिक व्यापक होता है परन्तु विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त जटिल क्योंकि इसमें दृष्टि, घटक तत्वों के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध ही नहीं वरन उनके व पर्यावरण के तत्वों से अन्तर्सम्बध पर भी रहता है। इसके विपरित बन्द तंत्र में तंत्र के घटक तत्वों में परस्पर अन्तक्रिया तक ही ध्यान सीमित रहता है। तंत्र के वर्गीकरण के कई अन्य आधार भी हैं। जिनमें तंत्र की दशा के अनुसार इसका वर्गीकरण होम्योस्टेटिक एडाप्टिव तथा गत्यात्मक आधार पर इसे तीन वर्गों में रखा जा सकता है। किसी तंत्र की दशा उसके उत्पाद का बोध कराती है अर्थात किसी तंत्र से क्या प्राप्त होगा। तंत्र एक प्रकार विश्लेषण है जिससे कुछ–न–कुछ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है जैसे किसी नदी के अपवाह तंत्र को उस नदी के मुहाने पर कितना अवसाद जमा होगा। इस उत्पाद की मात्रा तन्त्र में विद्यमान परिवर्तनशील घटक तत्वों की स्थिति पर निर्भर करता है। जैसे अपवाह तंत्र में जल की मात्रा, प्रवाहगति, वनस्पति आच्छादन मिट्टी की प्रकृति आदि ऐसे परिवर्तनशील घटक तत्व है। तन्त्र की दशा ऐसी सुपरिभाषित स्थिति या विशेषता की ओर इंगित करती है जो आसानी से पहचाना जा सके। इस प्रकार तंत्र किसी क्षेत्र में प्रकृति द्वारा विकसित संरचना का एक प्रारूप भी है। जो अपने आप में एक विशिष्ट विशेषता रखता है। इस विशिष्ट संरचना के आधार पर इसे पहचाना जा सकता है।

2.4.1. होम्योस्टेटिक तंत्र

होम्योस्टेटिक तंत्र उसे कहते है जिसकी क्रियाशीलता बाह्य अनिश्चित दबावों के बावजूद लगभग समान बनी रहें या किसी झटके से अपने पर्यावरण में होने वाले आकस्मिक परिवर्तन को झेलकर यथाशीघ्र अपनी स्थिति या समस्थिति प्राप्त कर ले। जैसे किसी अपवाह तंत्र में अचानक बाढ़ आ जाने पर जलप्लावन की स्थिति बन जाती है बाढ़ के हट जाने पर नदी का जल पुनः अपनी यथास्थिति या अपने बाद से पहले के बहाव क्षेत्र में आ जाता है। कुछ तन्त्रों में यह समस्थिति उनमें विद्यमान ऋणात्मक पश्च प्रभाव प्रक्रिया से प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति में पर्यावरणीय प्रभाव जितना विध्वंसक होगा उनका ऋणात्मक प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा। यदि किसी पारिस्थितिक तंत्र में समझ उत्पादन के लिए व्यापक स्तर पर वनों को कहा जाता है तो ऐसी स्थिति में बाद एवं मृदा अपरदन का प्रभाव बढ जाता। आस–पास की भूमि पर से उत्पादन का स्तर घट जाएगा, ईंधन के लिए लकड़ी की कमी हो जाएगी। पुनः वापस इस समस्या से निजात पाने के लिए वृक्षारोपण किया जाएगा। और इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र पुनः समस्थिति में आयेगा इस प्रकार के ऋणात्मक पश्च प्रभाव सभी प्राणी एवं मानव हेतु अति महत्वपूर्ण है। कभी–कभी प्रकृति स्वयं अपने स्तर पर भी होम्योस्टेटिक तंत्र का विकास करती है जब प्रकृति अपनी समस्थिति को वापस प्राप्त कर लेती है। जैसे अतीत में भूगर्भिक हलचल के फलस्वरूप वृहद स्तर पर वनावरण भूमिगत हो गये तथा वहां कुछ भी नहीं बचा। इसके बाद कालक्रम अनुसार वहां पुनः वनों का आवरण स्वतः ही विकसित हो गया और उसी जलवायु के अनुरूप वहां जैव विविधता देखने को मिलती है।

2.4.2 अनुकूलशील या एडाप्टिव

यह तंत्र होम्योस्टेटिक की भांति ही होते हैं परन्तु उनमें एक खास विशेषता यह होती है कि इसमें किमी खास उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक वैकल्पिक निवेशों में चयन की गुंजाइश होती है। इसलिए इसे लक्ष्य परक या सौद्देश्यवादी तंत्र भी कहते हैं। इनमें कुछ ऐसे परिवर्तनशील घटक–तत्व होते है जो तंत्र के आन्तरिक परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होते है वस पर्यावरण अथवा किसी अन्य तना के उत्पाद से प्रभावित होते हैं। ऐसे बाह्य पर्यावरण से प्राप्त मे निवेश– ईकाई को तन्त्र का मापदण्ड कहते हैं। इसमें पश्च प्रभाव से भी मापदण्ड प्रभावित होते हैं। दो क्षेत्रों के मध्य अन्तर्क्रिया का स्तर उनके मध्यस्थ दूरी से प्रभावित होता है जैसे किसी कारखाने में श्रमिक एक निश्चित दूरी से काम करने के लिए आते है। यदि कारखाने की अवस्थिति बदल जाए और कारखाने व श्रमिकों के आवास की दूरी बढ़ जाए तो भी कारखाने क्रियाशीलता पर असर नहीं पड़ेगा क्योंकि कारखाना श्रमिकों की जरूरत है ऐसी स्थिति में श्रमिक काम पर पहुँच जाएंगे और बढ़ी हुई दूरी के अनुसार अपना अनुकूलन स्थापित कर लेगें।

2.4.3. गत्यात्मक तंत्र

इस तंत्र में पश्चप्रभाव तन्त्र की दशा में सतत व निश्चित दिशा में परिवर्तन करता आया है। चक्रीय आर्थिक विकास युक्त तंत्र इसका उदाहरण प्रस्तुत करते है। नियमित तन्त्र में तन्त्र की निवेश इकाईयों पर किसी संचालक का कुछ हद तक नियंत्रण रहता है। नियोजित अर्थतन्त्र इनके उदाहरण है, जिनमें राजस्व कर अथवा आयात निर्यात को नियन्त्रित करके अर्थतंत्र का आचरण इच्छित दिशा में मोड दिया जाता है। परन्तु किसी भी तंत्र पर संचालक–नियोजक का आंशिक नियंत्रण ही हो पाता है पूर्ण नहीं।

2.5. भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

तंत्र विश्लेषण का सम्बन्ध कार्यात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है जिसका उपयोग भूगोल में प्रायः अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने के लिये किया जाता है। सन 1972 में पी. ई. जेम्स ने इस पर कहा है तंत्र एक समष्टि है। इसके सारे अवयव एक दूसरे से अंतर्सम्बन्धित है। अतः यह समग्रता में ही कार्यरत रहता है। पीटर हैगेट ने इस पर कहा है कि तंत्र विभिन्न वस्तुओं या अवयवों का एक ऐसा समुच्चय है जो समग्रता में एकरूप होकर कार्य करता है। भौगोलिक विश्लेषणों में स्थिति, दूरी, विस्तार, स्वरूप पारिस्थितिकी, मानव कार्यकलाप तथा जनसंख्या का विवरण एवं घनत्व सदृश्य तत्व मिलकर ही तंत्र का सृजन करते है। यहां यह उल्लेखनीय है कि भौगोलिक तंत्र से अभिप्राय ऐसे कर्मोपलक्षी तत्वों को है जिसमें स्थानिक विशिष्टताओं का समावेश हो ।

शोले के विचार में भौगोलिक तंत्र उस प्राकृतिक व जैविक वातावरण से निर्मित होते है जिनका नियंत्रणकर्ता मनुष्य है अर्थात भौगोलिक तंत्र में मनुष्यों की प्रमुखता रहती है।

अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण आधुनिक भूगोल का मूल भाव है। अतः तंत्र विश्लेषण की उपयोगिता भी भूगोल में अधिक है। सजग तंत्र विश्लेषण का समावेश भूगोल में भूवैन्यासिक संगठन के प्रतिरूप विश्लेषण के दौर में हुआ। डार्विन के युग में डार्विन से प्रभावित भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल में नवीन विचारों का समावेश किया। जैसे रेटजेल का राजनीतिक भूगोल, डेविस का अपरदन चक्र जिसमें कोई भी भू–आकार युवा, प्रौढ़ व वृद्धावस्था से गुजरता है। इन सब में तंत्र की संकल्पना क्रियाशील थी। प्रादेशिक अध्ययन में प्रदेश को तन्त्र का ही समानार्थक माना। इसी तरह पारिस्थितिक उपागम में प्राकृतिक जैविक तत्वों मे अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह था जिसमें तंत्र संकल्पना का समावेश हो जाता था। अब पुनः पर्यावरणीय कारकवाद की दृष्टि से भूगोल को पारिस्थितिकी तन्त्र के रूप हैं समझा जाने लगा है। टान्सले के विचारों से प्रेरित होकर भूगोल में पारिस्थितिकी तंत्र को आधारभूत महत्व प्रदान किया गया है। यह एकात्मक है जिसमें पर्यावरण, मनुष्य, पौधे एवं जन्तु जगत सभी एक ही परिधि में समाहित हो जाते हैं। इसमें घटक तत्वों के मध्य अन्तर्क्रिया का विश्लेषण करना सम्भव हो जाता है। पारिस्थितिक तंत्र संरचनात्मक होता है, जिसमें एक व्यवस्था मिलती है जिसका तर्कसंगत अध्ययन किया जा सकता है। पारिस्थितिक तंत्र क्रियाशील भी होता है, इसमें अनवरत उर्जा एवं पदार्थ का निवेश एवं उत्पाद होता है। एक बार पारिस्थितिकी तंत्र की सीमा सुनिश्चित कर लेने पर इसके अन्तर्गत घटक तत्वों के मध्य अर्न्तसम्बध एवं अंतर्क्रिया का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सकता है अन्त में पारिस्थितिकी तंत्र सामान्य तंत्र कही एक खंड होता है। इसमें सामान्य तंत्र की विशेषताएं पाई जाती है। इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र है जिसमें ऊर्जा गतिक नियमों के अनुसार समस्थिति की ओर अग्रसर रहता है। इन सब तथ्यो उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूगोल में तंत्र संकल्पना के

व्यावहारिक उपयोग की असीम सम्भावनायें है जिसे पारिस्थितिकी तंत्र के निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

पारिस्थितिकी तंत्र

पारिस्थितिकी तंत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग टान्सले ने 1955 ई0 में किया था जिसमें उन्होने सम्पूर्ण जीव समिश्र तथा उनके निवास्य क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए बताया था कि पारिस्थितिकी तंत्र सभी अवयव, जैव–अजैव जीव मण्डल तथा निवास्य क्षेत्र परस्पर अंतप्रर्क्रिया द्वारा आबद्ध रहते हैं तथा एक सुविकसित पारिस्थितिक तंत्र में लगभग संतुलन की स्थिति मिलती है। यह एक कार्यशील परस्पर प्रक्रियात्मक तंत्र है, जिसके अंतर्गत एक या अधिक जैव तत्व तथा उनका प्रभावकारी निवास्य समाहित है। इसके विवेचन में क्षेत्रीय सम्बधों, प्राकृतिक स्वरूपों का लेखा– जोखा इसमें निवास करने वाले प्राणी का विशिष्ट स्थान, ऊर्जा एवं पदार्थ का मूल भण्डार एवं आयात–निर्यात तथा इसकी कार्यशीलता पर ध्यान दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी तंत्र एकसूत्रबद्ध, संरचनात्मक एवं कार्यशील होता है।वातावरण तंत्र के जैव तथा अजैव घटकों में ऊर्जा का शोषण, प्रत्यावर्तन, भण्डारण तथा निष्पादन समाहित है जब तक मनुष्य कोई विध्न उपस्थित नहीं करता वातावरण तंत्र स्वनियामक होता है, पारिस्थितिकी अनुवेश–क्रमानुसार इसका विकास स्थाई संतुलन की ओर अग्रसर होता है। स्थायित्व की दशा में प्रति इकाई उपलब्ध ऊर्जा प्रवाह की दृष्टि से अधिकतम जैविक प्रेज का पोषण होता है। स्थायी संतुलन का तात्पर्य वातावरण तन्त्र में ऊर्जा के अवशोषण एवं निर्गमन में संतुलन नहीं रह जाता। जैसे किसी जीव की संख्या एक पारिस्थितिक तंत्र में इसलिए बनी रहती है कि उसे मारकर खाने वाले जीव भक्षकजीव तथा भक्ष्य जीव की संख्या में संतुलन बना रहे।

किसी मानव निर्बंधित वातावरण में संतुलन स्थापित करने में जैविक तत्वों की प्रमुख भूमिका होती है। वास्तविक जगत में वातावरण तन्त्र तीन कारकों द्वारा संचालित होता है। जो निम्न है–

1) पौधों एवं प्राणियों के माध्यम से ऊर्जा का प्रवाह तंत्र के लिए संचालन शक्ति प्रदान करना है।

2) रासायनिक तत्वों की जटिल व्यवस्था एवं पुनर्व्यवस्था के माध्यम से पदार्थों का निर्माण तथा नियमन।

3) विविध प्रकार के जैविक तत्वों या वातावरण तथा जनांकिकीय अंकुशों से समायोजन।

इस प्रकार वातावरण तंत्र एक मुक्ततंत्र है जिसमें एक मॉडल से दूसरे मॉडल में ऊर्जा का प्रवाह होता है। ऊर्जा प्रवाह कई चक्रो के माध्यम से संचालित होता है। इन सभी चक्रों को सम्मिलित रूप से जैव–भू–रासायनिक चक्र कहते हैं। इनमें प्रकाशसंश्लेषण, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, फास्फोरस चक्र, सल्फर चक्र व जलचक्र आदि समाहित है। तंत्र विश्लेषण के अन्तर्गत भूगोल में मानव– पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध, मात्र एक विशेष प्रकार के कार्य–कारण सम्बन्ध का विवेचन न होकर एक अध्ययन तत्व हो गया है। इसी कारण अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप को भौगोलिक अध्ययन का मूलधार मानने वाले वैज्ञानिकतावादी भूगोलवेता भी विश्वव्यापी पारिस्थितिक क्षेत्र को जिसका मानव अभिन्न एवं प्रमुख अंग है। भूगोल का अध्ययन तत्व मानने लगे। 1964 ई. में बेरी ने भूगोल की भावी दिशा का निर्देश करते हुए पारिस्थितिक तंत्र की प्रक्रिया के विश्व विश्लेषण को इसका उद्देश्य बताया।

इसके अन्तर्गत प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के परस्पर प्रभाव की निम्न प्रक्रियाओं का निरुपण किया।

i. प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक प्रक्रियाओं की अन्तर्प्रक्रिया का सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्रो पर पड़ता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र प्राणियों तथा उनके सम्पर्क में आने वाली प्रभावकारी वातावरण का समुच्चय होता है जिसमें विभिन्न प्रकार की स्थितियां पाई जाती हैं।

ii. यह पारिस्थितिकी तंत्र अपनी अवस्थिति एवं स्थिति परक विशेषताओं द्वारा लोगों के अपनी जैविक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु कार्यतत्परता को प्रभावित करता है। साथ ही लोगों के अपने वातावरण से प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप भी इसी से निर्धारित होता है।

iii. पर्यावरण के प्रत्यक्षीकरण तथा उनमें परिवर्तन लाने की क्षमता एवं तत्परता का प्रभाव वातावरण नियोजन तथा अवस्थितिगत नियोजन सम्बन्धी निर्णयों पर पड़ता है।

iv. पर्यावरण तथा अवस्थितिगत नियोजन की रूप–रेखा के संदर्भ में ही विभिन्न प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वो का निराकरण तथा ठोस कार्य की रूपरेखा निर्धारित होती है

v. उक्त नियोजन की रूप–रेखा के अनुसार लोगों का क्षेत्रपरक आचार–व्यवहार होता हैं।

vi. क्षेत्रपरक आचार–व्यवहार से क्षेत्रपरक प्रक्रियाएं उत्पन्न होती है जो पारिस्थितिकी तंत्र की विद्यमान दशाएं बनाए रखती है तथा तंत्र को विकसित करने या तन्त्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाली हो सकती है।

vii. इसका पुनः प्रभाव प्राकृतिक व सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर पडता है और इस प्रकार सम्पूर्ण श्रृंखला में एक पुनर्प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र की परिसीमा में मानव पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध का स्वरूप गत्यात्मक है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव पर्यावरण तंत्र एक वि"ाेष प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध नहीं अपितु एक अध्ययन तत्व बन जाता है। मानव समुदाय मण्डल, जीव मण्डल विशेष प्रकार की भाँति मानव को वातावरण सं"लिष्ट का अंग बनाता है जिसका विकास विभिन्न प्रकार के तत्वों के परस्पर प्रभाव से होता है। मानव द्वारा प्रकृति का मानवीकरण होता गया और प्राकृतिक वातावरण सामाजिक विकास का माध्यम बनता गया। समाज पर इस प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

i. वह खण्ड जो सामाजिक गतिविधि को असम्पृक्त है और इसलिए उसका विकास प्राकृतिक, रासायनिक तथा जैविक नियमों के अनुसार हो रहा है।

ii. वह खण्ड जिसके प्रादेशिक सं"लिष्ट पर अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव पड़ा है उसका विकास ऊपर बताये नियमों के अनुसार हुआ है।

iii. वह खण्ड जिनके प्रादेशिक सं"लिष्ट पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव परिलक्षित होते हैं इसलिए वे सामाजिक–भौगोलिक वातावरण अंग है।

iv. वह खण्ड जिनके प्रादेशिक सं"लिष्ट उत्पादन से प्रत्यक्ष तथा प्रभावित हैं अतः इनमें प्राकृतिक प्रक्रियायें सशक्त सामाजिक क्रियाओं के अंतर्गत कार्यशील है। इसमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक, जैविक तथा प्राकृतिक रासायनिक नियमों की अन्तर्प्रक्रिया अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

ये सब बिन्दु इस बात पर सहमति बनाते है कि मानव व पर्यावरण के बीच परस्पर अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध पाये जाते हैं। सभी प्राणी अपने लिए एक जैव पोषक सह अस्तित्व"ाील वातावरण का निर्माण करते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र, भूगोल में तंत्र विश्लेषण की स्पष्ट झलक प्रस्तुत करता है।

2.6. सारांश

तंत्र विश्लेषण विषयों के जटिल पहलूओं को समझने और उन्हें व्याख्यायित करने का एक तरीका है, अध्ययन की विद्या है, जो लगभग सभी विषयों में अपनी पहुँच रखता है। भूगोल में तंत्र विश्लेषण का समावेश है। जो अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्धों वाले पहलुओं पर अपनी छाप छोड़ता पारिस्थितिक तंत्र एक अन्तर्क्रियात्मक विषय है जिसमें मानव व पर्यावरण को अलग–अलग पहलुओं के माध्यम से समझा जा सकता है। मानव समाज एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जिसमें न सिर्फ उत्पादन प्रक्रिया अपितु जैविक इकाई के रूप में जीवीकोपार्जन के कार्यों की भूमिका रहती है। इस अर्थ में भूगोल में समाज मात्र एक सामाजिक तत्व ही नहीं बल्कि जैव सामाजिक तत्व होता है इसलिए भूगोल के सभी तत्वों के अतिरिक्त मानव समुदाय पृथ्वी के भू रासायनिक संतुलन में एक निश्चित आयतन का जैवपुंज तथा पृथ्वीतल के जैव व अजैव पदार्थों का जो जल एवं वायुमण्डल मे भी प्राप्त होता है, विशाल मात्रा में उपयोग करने वाला भी है। इनके अतिरिक्त वह प्रकृति में कार्बन तथा अपने अन्य अवशिष्ट पदार्थों की आपूर्ति करने वाला जीव भी है। इस प्रकार मानव समुदाय का जैविक तत्व भी सामाजिक विकास को पर्याप्त प्रभावित करता है। मनुष्य की भोजन, उष्मा, सन्ततिवृद्धि, जीवन पोषण तथा जीवन यापन के लिए जो आवश्यकताएं वे कई प्रकार की मूलभूत सामाजिक प्रक्रियाओं को जन्म देती है। इन्हीं के कारण वह श्रम करने को प्रवृत होता है तथा समुदाय में संगठित होता है। भूगोल उस विद्यमान भौतिक तन्त्र का अध्ययन करता है जो पृथ्वी

के भौगोलिक मण्डल का निर्माण करता है। यह भौगोलिक, मण्डल मानव समाज के वास्तविक अथवा सम्भाव्य विकास का पर्यावरण प्रस्तुत करता है।

2.7. पारिभाषिक शब्दावली

- **तन्त्र** – तंत्र विशिष्ट गुण धर्मों युक्त वस्तुओं एवं तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।
- **होम्योस्टेटिक तंत्र**–जिसकी क्रियाशीलता बाह्य अनिश्चित दबावों के बावजूद लगभग समान बनी रहे होम्योस्टेटिक तंत्र कहलाता है।
- **एडाप्टिव अनुकूलन तंत्र**– इसमें किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक वैकल्पिक निवेशों में से चयन की गुंजाइश होती है।
- **भूगोल में तंत्र विश्लेषण** –तंत्र विश्लेषण कार्यात्मक दृष्टिकोण से जुड़ा है, जिसका उपयोग भूगोल में प्रायः अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने में किया जाता है।
- **पारिस्थितिक तंत्र**– पारिस्थितिक तंत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग ए.जी टान्सले ने सन 1995 में किया जिसमें उन्होने सम्पूर्ण जीव समिश्र तथा उनके निवास्य क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए बताया था कि पारिस्थितिकी तंत्र के सभी अवयव, जैव–अजैव, जीवमण्डल तथा निवान्य क्षेत्र परस्पर अन्तप्रर्क्रिया द्वारा आबद्ध रहते हैं।

2.8 बोध प्रश्न

2.8.1 दीर्घ उत्तीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न– 1. तंत्र की संकल्पना क्या है? उदाहरण सहित समझाइए।

प्रश्न–2. तंत्र कितने प्रकार का होता है। इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5 भूगोल में तन्त्र विश्लेषण की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4. पारिस्थितिकी तंत्र को उदाहरण सहित समझाइए ।

2.8.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 क्षेत्र को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न–2 गत्यात्मक तंत्र क्या है?

प्रश्न–5 होम्योस्टेटिक तंत्र क्या है?

प्रश्न–4 एडाप्टिव तंत्र क्या है?

प्रश्न–5 पारिस्थितिक तंत्र को परिभाषित कीजिए ।

2.8.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोतर

प्रश्न 1. पारिस्थितिकी क्षेत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग किसने किया था।

(क) टान्सले (ख) डेविस

(ग) डार्विन (घ) रेटजेलप्रश्न

प्रश्न 2. सामान्यतया तंत्र को कितने प्रकार का बताया गया है?

(क) 5 (ख) 2

(ग) 4 (घ) 5

प्रश्न 3. तत्र विश्लेषण किस दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है।

(क) कार्यात्मक दृष्टिकोण (ख) मात्रात्मक दृष्टिकोण

(ग) व्यवहारवादी दृष्टिकोण (घ) सामाजिक दृष्टिकोण

उतरमाला—1.(क), 2. (ख), 3.(क)

इकाई– 3

केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त ,लॉश का केन्द्र स्थल सिद्धान्त, वाल्टर क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 वॉन थ्यूनेन का सिद्धान्त

3.3 वाल्टर क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त

3.4 लॉश का केन्द्र स्थल सिद्धान्त

3.5. सारांश

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

3.7. बोध प्रश्न

3.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोतर

3.7.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

3.7.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोतर

3.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 प्रस्तावना

भूगोल में मॉडल सिद्धांत व नियम पाठ्यक्रम में केंद्र स्थल सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण इकाई है केंद्र स्थल सिद्धांत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य है। मार्क जैफरसन,कालपिक,बोबेक, वॉल्टर क्रिस्टालर, जे एल बेरी, गैरिसन, लॉ"ा आदि विद्वानों ने दिया है। केंद्र–स्थल उस आधिवासीय क्षेत्र को कहा जाता है जो अपने आसपास के क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों को सुविधाएँ प्रदान करता है यह एक प्रकार से सेवा केंद्र हो जाता है और सेवक के रूप में कार्य करता है। सेवा केंद्र चाहे ग्रामीण हो या नगरीय हो केंद्र स्थल के रूप में होते हैं जिनका आकार प्रकार भिन्न–भिन्न होता है कोई भी केंद्र स्थल अपने कार्य ,आकर, संख्या एवं अपने प्रकृति के द्वारा आसपास के क्षेत्र से घनिष्ठ रूप से संबंद्ध होता है।

3.1 उद्देश्य

MAGO-119 में मॉडल सिद्धांत नियम के पाठ्यक्रम की इस इकाई के संदर्भ में निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति होती है

1. शिक्षार्थी केंद्र–स्थल सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
2. शिक्षार्थी क्रिस्टालर और लॉ"ा के सिद्धांत की व्याख्या व विश्लेषण कर सकेंगे।
3. शिक्षार्थी कार्य मात्र संख्या व प्रकृति के आधार पर सेवा केंद्र की पहचान कर सकेंगे।

3.2 वॉन थ्यूनेन का सिद्धान्त (Von Theunen's Theory)–

प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता वॉन थ्यूनेन ने बाजार या शहर केन्द्र के चारों ओर भूमि उपयोग आवर्त तथा दूरी सम्बन्धों का अध्ययन किया। जॉन हेनरिच वॉन थ्यूनेन (1783–1850) जर्मनी में रोस्टोक शहर के मेक्लेनबर्ग में फार्म मैनेजर था। उसने अपने बहुत वर्षों के अनुभव के पश्चात् सन् 1826 में भूमि उपयोग पर अपना अवस्थिति सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

थ्यूनेन ने अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए निम्नलिखित मान्यताओं का सहारा लिया–

1. इन्होंने सर्वप्रथम एक ऐसे एकाकी प्रदेश की कल्पना की जिसमें एक ही नगर स्थित हो, जिसके चारों ओर विस्तृत कृषि क्षेत्र हो, जिससे होने वाली कृषि उपज का यही मात्र बाजार है।
2. प्रदेश में जलवायु, धरातल, मृदा की उत्पादन क्षमता समान हो अर्थात् सभी जगह एक–सा प्राकृतिक वातावरण हो ।
3. यहाँ नगर के अतिरिक्त शेष ग्रामीण आबादी हो व अधिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए फसलों के फेरबदल में सक्षम हैं।
4. यहाँ एक ही प्रकार का परिवहन साधन उपलब्ध हो। (घोड़ागाड़ी)
5. परिवहन व्यय दूरी तथा भार के अनुपात में बढ़ता हो ।

वॉन थ्यूनेन की उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर इस प्रकार के विलग प्रदेश में केन्द्रीय बाजार के चारों ओर नगर से बढ़ती दूरी के अनुसार विभिन्न फसलों का उत्पादन क्षेत्र संकेन्द्रीय वृत्त खण्डों में होगा। ये खण्ड निम्नलिखित है–

1. नगर के समीपतम पृथक् खण्डों में शाक–सब्जी की कृषि एवं दुग्धोत्पादन होगा, क्योंकि इन पदार्थों की नगर में माँग अधिक रहती है तथा इनको जल्दी खराब होने के कारण अधिक दूर तक ले जाया भी नहीं जा सकता है। इस पेटी का क्षेत्रीय विस्तार नगर की आवश्यकताओं की पूर्ति पर निर्भर करेगा। यदि नगरीय जनसंख्या में दूध की माँग अधिक होगी तो यह पेटी दूर तक विस्तृत हो जायेगी। शाक, सब्जियों तथा दूध आदि पर परिवहन व्यय अधिक लगने के कारण इसे नगर की समीपवर्ती पेटी में रखा गया है।
2. दूसरी पेटी में ईंधन के लिए लकड़ी का उत्पादन होगा। लकड़ी के भारी होने के कारण इसका परिवहन व्यय अधिक होगा, किन्तु यह शाक–सब्जी तथा दूध आदि पर लगने वाले परिवहन व्यय से कम होगा। थ्यूनेन के द्वारा दूसरी पेटी में ईंधन को इसलिए वरीयता दी गई है कि उसके समय में ईंधन का अन्य विकल्प न होने के कारण, घरों के निर्माण के उपयोग में आने के कारण इमारती लकड़ी भी आवश्यक होती थी। इसलिए बाजार में माँग अधिक रहती थी, क्योंकि उसे जलाकर उस समय लोग घर भी गर्म रखते थे। अतः ईंधन का बाजार मूल्य अधिक था।
3. जलावन लकड़ी के बाद तीसरी पेटी के अन्तर्गत भूमि में अन्न का उत्पादन किया जाता था। गहन कृषि के कारण परती भूमि नहीं छोड़ी जाती थी। 6 वर्ष में फसल चक्र को अपनाया जायेगा।
4. इस पेटी में कृषि कम सघन होगी और किसान सात वर्षीय फसल चक्र को अपनायेगा तथा एक वर्ष परती भूमि के रूप में छोड़ता था, इसमें पशुपालन भी होता था।
5. पाँचवीं पेटी में किसान तीन खेती प्रणाली को अपनाते हैं। यह एक फसल चक्री व्यवस्था है, जिसमें किसान खेत के एक–तिहाई भाग पर फसलें उगाते हैं और दूसरे एक–तिहाई भाग पर चरागाह रखते हैं तथा शेष एक–तिहाई को परती छोड़ देते हैं।
6. अन्त में छठे खण्ड में मांस एवं दूध के लिए पशुपालन होता था। मांस वाले पशुओं को पैदल नगर भेज दिया जायेगा तथा दूध से निर्मित पनीर को परिवहन की कम लागत द्वारा नगर में पहुँचाया जाता था। अन्न की फसल के उत्पादन तथा पशुओं पर होने वाले परिवहन व्यय क्रमशः कम होंगे।

इस प्रकार नगर के चारों ओर कृषि उत्पादन की 6 केन्द्रीय पेटियाँ विभिन्न फसलों का उत्पादन करेंगी। इन पेटियों की सीमाओं की व्याख्या अधिकतम लगान के सिद्धान्त के आधार पर की जायेगी। नगर से बढ़ती दूरी के अनुसार प्रदेश की विभिन्न कृषि की संकेन्द्रीय पेटियों में विभिन्न फसलों का उत्पादन मुख्यतः परिवहन व्यय के अनुसार किया जायेगा। एक सातवीं पेटी बंजर भूमि की भी बताई गयी थी।

वॉन थ्यूनेन के सिद्धान्त में संशोधन (Amendment in Theory of Von Theunen)

वॉन थ्यूनेन के सिद्धान्त का पुनर्निरीक्षण गोरेवाल (1959), चिशोल्म (1962) तथा हाल (1966), हुवर, डन, लॉश, इजार्ड, ओलविसो गेरीसन, द्वारा किया गया। इसन तथा फिरगन गैराल्ड (1960) ने बस्तियों के प्रतिरूप की

परिकल्पना का विवरण देते हुए थ्यूनेन के सिद्धान्त को ग्रामीण भूमि के उपयोग के लिए उपयुक्त बताया। उनके अनुसार ग्रामीण बस्ती की भूमि उपयोग पेटियाँ इस प्रकार हैं–

1. केन्द्र में मानवीय निवास की बस्ती ।
2. दूध देने वाले कृषि के पशुओं के घर एवं चारे के खेत ।
3. कृषि के खेत समीपवर्ती खेतों में मुद्रादायिनी तथा दूरवर्ती खेतों में अनाज की फसलें।
4. चरागाह तथा खेतों की मिली–जुली पेटी।

इस प्रकार नगर के चारों ओर 6 संकेन्द्रित पेटियों में विभिन्न तरह का भूमि उपयोग मिलता है। इनकी सीमाओं की व्याख्या अधिकतम लगान के आधार पर बढ़ती दूरी के अनुसार की जाती है।

आलोचना (Criticism)

1. इनके द्वारा कथित मान्यताएँ वास्तविकता से परे हैं। फलस्वरूप ये वृत्तखण्ड कहीं भी इस रूप में नहीं मिलते हैं।
2. नदी यातायात विकसित होने पर इसका रूप वृत्तों में न होकर नदी के दोनों ओर समानान्तर खण्डों में होगा।
3. प्राकृतिक वातावरण समान मिलना।
4. अगर बड़े नगर के पास छोटा उपनगर होगा तो उसकी स्वतंत्र भूमि में संकेन्द्रीय वृत्त खण्डों का विकास होगा।

महत्व (Importance)

वान थ्यूनेन ने कृषि के स्थानीकरण का विवेचन वैज्ञानिक ढंग से किया है। इस सिद्धान्त ने कृषि भूगोल अध्ययन में नये अध्याय का शुभारम्भ कर अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। आगे चल अधिवासों के विशेष अध्ययन में भी इसने आधारभूत भूमिका अदा की है।

3.2 वाल्टर क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory of Walter Christallar)

सन 1955 में वाल्टर क्रिस्टेलर नामक जर्मन अर्थशास्त्री द्वारा ग्रामीण नगरीय अधिवासों के वितरण के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या क्रिस्टालर की पुस्तक 'Central Places in Southern Germany' के तृतीय भाग में की गई है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का विकास निम्न मान्यताओं के आधार पर विकसित होता है–

1. प्रदेश, जिसमें केन्द्र–स्थल सिद्धान्त लागू होता है, एक समतल मैदान है जिसमें धरातल, मृदा की उत्पादकता आदि में समरूपता मिलती है।
2. ग्रामीण जनसंख्या समान रूप से वितरित है, फलस्वरूप उसकी क्रय शक्ति का निरन्तर तथा समानरूप से सम्पूर्ण प्रदेश में वितरण है।
3. जनसंख्या केन्द्र त्रिभुजाकार रूप में वितरित हैं।
4. उक्त प्रदेश में प्रत्येक कार्य की बाजार सीमा निश्चित है।
5. यहाँ गमनागमन स्वतंत्र तथा समान रूप से किसी भी दिशा में सम्भव है।
6. जनसंख्या का निश्चित स्थानिक व्यवहार दृष्टिगोचर होता है।

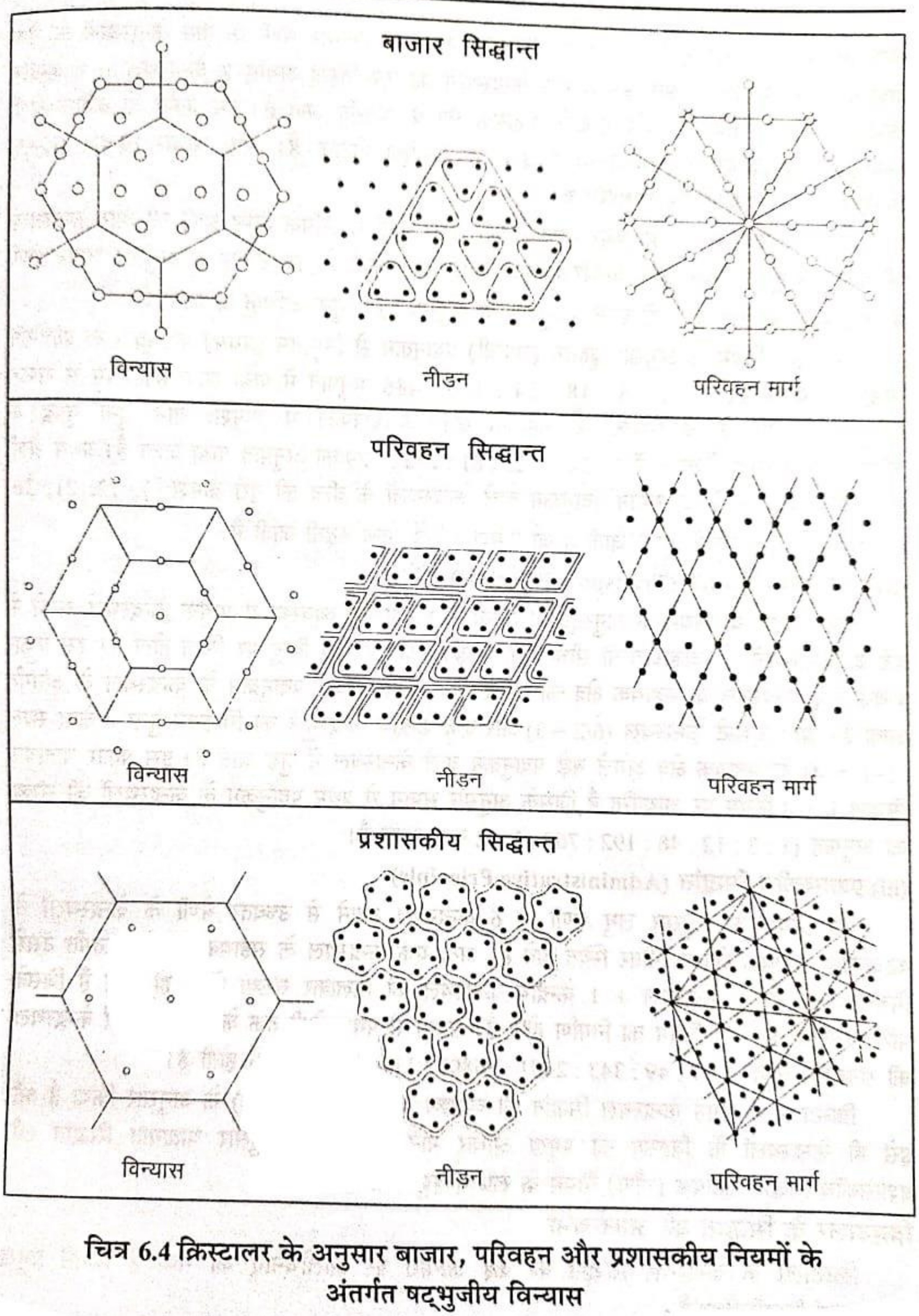

चित्र 6.4 क्रिस्टालर के अनुसार बाजार, परिवहन और प्रशासकीय नियमों के अंतर्गत षट्भुजीय विन्यास

उपर्युक्त वर्णित दशाओं में किसी भी प्रदेश के बाजार क्षेत्र का केन्द्र मध्य में होगा तथा बाजार क्षेत्र वृत्ताकार होगा। इस बाजार क्षेत्र की बाहरी सीमा का निर्धारण उस दूरी से होगा जहाँ बढ़ी दूरी के कारण वस्तुओं की माँग समाप्त हो जायेगी, इसे ऊपरी या बाह्य सीमा कहते हैं। वस्तु की न्यूनतम माँग जहाँ होती है, उसे निचली सीमा कहते हैं।

किसी भी भौगोलिक प्रदेश में वृत्ताकार व्यापार केन्द्रों (सेवा क्षेत्रों) का व्यवस्थापन दो प्रकार से हो सकता है–प्रथम स्थिति में एक–दूसरे वृत्ताकार सेवा क्षेत्रों को स्पर्श करें तो इनके मध्य असेवित क्षेत्र बच जाता है तथा इनके बाहर इसी प्रकार छूटे हुए क्षेत्रों में सम्बन्धित सेवा उपलब्ध नहीं हो पाती है। दूसरी स्थिति में सम्पूर्ण क्षेत्र को वृत्तों के भीतर सम्मिलित करने पर उनके सेवा क्षेत्र परस्पर काटने लगेंगे जिसस कुछ ऐसे उभयनिष्ठ क्षेत्र दृष्टिगत होंगे जो समीपवर्ती दोनों केन्द्रों से सेवा प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा करेंगे। इस समस्या के समाधान के लिए क्रिस्टालर ने बाजार क्षेत्रों की कल्पना वृत्ताकार के स्थान पर षट्कोणाकार रूप में की है। ज्यामितीय दृष्टि से षट्कोणीय दशा ही वृत्त के सर्वाधिक समीप होती है, जिसमें समान स्तर के सभी केन्द्रीय स्थान परस्पर एक–दूसरे से समान दूरी पर स्थित होते हैं तथा उनका बाजार क्षेत्र भी समरूपता लिए होता है।

क्रिस्टालर ने बताया कि उत्पादक भूमि का निश्चित क्षेत्र प्रत्येक नगरीय केन्द्र को आधार प्रदान करता है तथा वह केन्द्र उस क्षेत्र को निश्चित सेवाएँ प्रदान करता है। आधार प्रदान करने वाला क्षेत्र पूरक क्षेत्र (Complementary Region) तथा सेवायें प्रदान करने वाला केन्द्र, केन्द्र स्थल (Central Place) होता है। सेवाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यापार होता है, जो एक केन्द्र में स्थित होकर केन्द्रीय कार्यों को पूर्ण करता है। इसके लिए न्यूनतम जनसंख्या की आवश्यकता होती है जिसे कार्याधार जनसंख्या (Threshold Population) कहते हैं।

केन्द्र–स्थल व्यवस्था में केन्द्र स्थलों की स्थिति व उनका वितरण वहाँ बताया है, जहाँ उसे लाभ बाजार सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इन केन्द्रों में कार्यों का पदानुक्रम पाया जाता है। निम्न सेवा केन्द्र उच्च सेवा केन्द्रों की तुलना में दूर–दूर स्थित होते हैं, जिनके मध्य केन्द्रीय कार्य अधिक विकसित होते हैं। इसी प्रकार क्रिस्टालर ने परिवहन लागत को ज्ञात करने के लिए यातायात नियम निर्धारित किया तथा प्रशासनिक नियंत्रण के लिए प्रशासनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। क्रिस्टालर ने अपने मॉडल में 'K' संकेत का प्रयोग किया है, जिसे सबसे बड़े केन्द्र स्थल के लिए प्रयुक्त किया गया है। अर्थात् किसी प्रदेश के बड़ी श्रेणी के केन्द्रों की संख्या तथा उससे एकदम नीचे छोटी श्रेणी के केन्द्रों की कुल संख्या के बीच अनुपात को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने वाली संख्या को 'k' मूल्य (k-value) कहते हैं।

क्रिस्टेलर महोदय ने निम्नांकित तीन प्रकार के 'k' मूल्य बताये हैं–

1. **बाजार सिद्धान्त**– क्रिस्टालर के केन्द्र स्थल सिद्धान्त में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बाजार सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त पर आधारित केन्द्र स्थलों की व्यवस्था या जाल को k–3 कहा गया है, इसमें k सबसे बड़ा केन्द्र स्थल होता है, जो अपने से

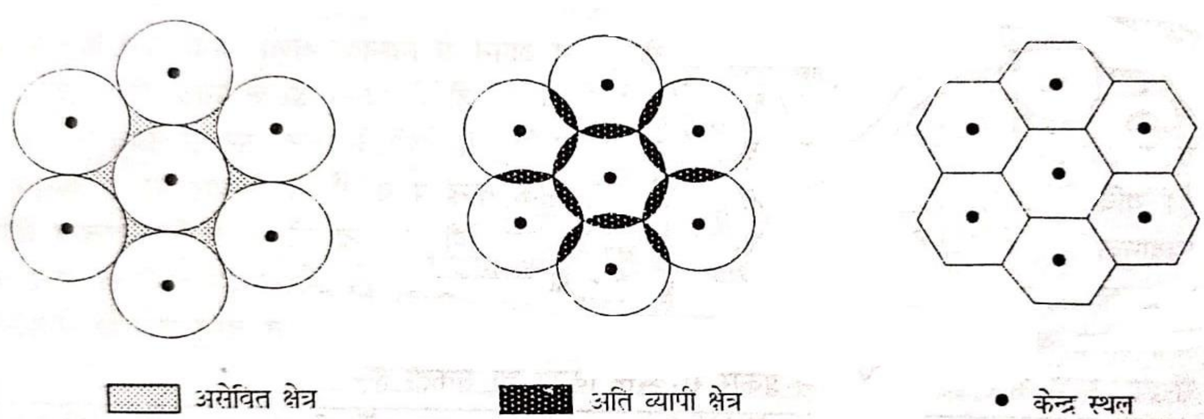

केन्द्रस्थलों के सेवाक्षेत्र की सैद्धांतिक आकृति

ठीक नीचे के पदानुक्रम में तीन केन्द्र स्थलों के बराबर होता है। नगरीय पदानुक्रम में 1, 5, 9, 27, 245, 1529.. की उत्तरोत्तर वृद्धि पायी जाती है।

3. **यातायात नियम** –यातायात व्यवस्था (परिवहन लागत महत्त्वपूर्ण होने पर वहाँ केन्द्र स्थलों का विकास यातायात सिद्धान्त के अनुसार रेखात्मक तरीके से होता है। इसमें मुख्य केन्द्र के चारों ओर गौण केन्द्र सीमा रेखा के किनारे मुख्य केन्द्रों के मध्य स्थित होंगे। इस प्रकार प्रत्येक दो केन्द्रों के ठीक मध्य में द्वितीय श्रेणी का केन्द्र स्थित होता है। इसमें तीन बड़े केन्द्र तथा उस प्रदेश के साथ पायी जाती है। मिलकर k = 4 पदानुक्रम का निर्माण करते हैं। जिसमें 1, 4, 6, 64, 256... की उत्तरोत्तर वृद्धि।
4. **प्रशासकीय सिद्धान्त**–जहाँ प्रशासकीय तत्त्व निर्णायक भूमिका निभाते हैं, वहाँ निचली श्रेणी के सभी छ केन्द्र बड़ी श्रेणी के केन्द्र के षट्भुजाकार प्रदेश में इस तरह स्थित होते हैं कि वे पूर्णरूपेण एक ही बड़े केन्द्र व उसके प्रदेश से संयोजित रहते हैं। इस व्यवस्था के लिए k = 7 पदानुक्रम प्रयुक्त होता है, जिसमें 1, 7, 49... 342 के अनुपात में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

आलोचना (Criticism)

1. यह सिद्धान्त इतना अधिक सैद्धान्तिक व आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है कि इसे वास्तविक परिस्थितियों में प्रयोग करना जटिल कार्य है।
2. उनका सिद्धान्त मान्यताओं पर आधारित न होकर अनुभाविक तथ्यों पर आधारित है।
3. केन्द्रीय स्थानों की व्यवस्था न तो निश्चित है तथा न ही स्थायी है।
4. केन्द्रीय स्थल को निर्धारित करने का मापदण्ड पर्याप्त नहीं है।
5. प्रस्तुत मॉडल स्थिर प्रकृति का है, जबकि समयानुसार विभिन्न परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

3.3 लॉश का केन्द्र स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory of Losch)

जर्मन अर्थशास्त्री आगस्ट लॉश ने सन् 1940 में जर्मन भाषा में लिखित पुस्तक का सन् 1954 में The Economics of the Location' के नाम से अनुवाद किया, जिसमें अपना केन्द्र स्थल सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इन्होंने क्रिस्टेलर के सिद्धान्त को संशोधित कर नवीन रूप में प्रतिपादित किया। इसका अध्ययन क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका का आयोवा प्रान्त था। इन्होंने क्रिस्टालर के समान ही 'ट्कोणीय व्यवस्था का प्रयोग किया, लेकिन जनसंख्या वितरण सतत् रूप में समान नहीं माना है। लॉश ने माना कि कृषि ग्रामों का केन्द्रीयकृत बस्ती प्रतिरूप पाया जाता है। लॉश ने अधिवासों के पदानुक्रम निर्मित करने की शुरुआत ग्रामीण स्तर के अधिवासों या कृषि ग्रामों से ऊपर की तरफ बढ़ते क्रम में माना है, जबकि क्रिस्टालर सर्वप्रथम महानगर की कल्पना की है। इस प्रकार लॉश द्वारा प्रस्तुत आर्थिक भू–दृश्य की संकल्पना आंशिक रूप से जटिल है, किन्तु अधिक वास्तविक है।

लॉश का केन्द्रीय स्थल पदानुक्रम विशिष्टीकृत है, जिसमें 'K' मूल्य क्रिस्टालर की तरह स्थिर न रहकर परिवर्तनशील रहता है जो 5, 4, 15.9, 12, 15, 2, 19, 21. व 25 है। अधिवासों की संख्या व मात्रा दूरी के विचार से K=15. K=15 तथा K=19 की दशाएँ सामान्य हैं, जो राजनीतिक–आर्थिक दृष्टि से स्थायी हैं। इस प्रकार लॉश ने मूल्य को परिवर्तित पदानुक्रम रूप में प्रस्तुत करते हुए बताया कि विभिन्न आकारों के पट्कोणों की एक बिन्दु पर ऊपर नीचे रखकर सभी जालों का इस बिन्दु के चारों ओर घुमाकर "K"मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार लॉश ने अपने सिद्धान्त में माना कि इसमें

(1) उपभोक्ताओं का गमनागमन न्यूनतम होना चाहिए।

(2) किसी आर्थिक उद्यम द्वारा अतिरिक्त लाभ अर्जित करना चाहिए।

(5) केन्द्रों के मध्य यातायात मार्गों की व्यवस्था को भी इस सिद्धान्त से सम्बद्ध किया है।

इसमें यदि केन्द्रीय महानगर के चारों ओर षट्कोणीय जालों को घुमाया जाये तो वह 60 के 6 खण्डों में विभक्त हो जायेगा, जिसके प्रत्येक खण्ड में केन्द्र स्थलों का प्रतिरूप एक समान होगा लेकिन कार्यों तथा बाजार क्षेत्रों की संख्या में अन्तर के कारण प्रत्येक खण्ड 50° के दो समान खण्डों में विभक्त हो जायेगा, जिसमें एक भाग में अधिक विकसित और तीव्रतर विशिष्टीकरण वाले केन्द्र होंगे तथा दूसरे में इनका अभाव मिलता है। इनमें प्रथम

को नगर का सम्पन्न क्षेत्र (Rich Sector of City) तथा दूसरे को नगर का निर्धन क्षेत्र (Poor Sector of City) कहा गया है।

आलोचना (Criticism)

1. यह सिद्धान्त सामान्यीकृत होते हुए भी जटिल है।
2. इसमें लागत तत्त्व को मद्देनजर नहीं रखा गया है।
3. भौगोलिक चिन्तन का इतिहास
4. सामयिक परिवर्तन के प्रभाव को ध्यान में नहीं रखते हुए नगरीय समूहन के प्रभाव को भी अस्वीकार किया गया है।
5. यह औद्योगिक उत्पादन के स्थानीयकरण की व्यवस्था में सहायक नहीं है।

इस प्रकार यह सिद्धान्त जटिलता एवं अन्य आपत्तियों के बाद भी वास्तविकताओं के सर्वाधिक समीप है तथा भारतीय परिस्थितियों में क्रिस्टालर के सिद्धान्त की तुलना में अधिक उपयुक्त है।

उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि लॉश का 'बहुषट्कोणीय सिद्धान्त' भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त है।

3.4. सारांश

20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों से ही दुनिया में जहाँ–जहाँ भूगोल का विकास हुआ वहाँ–वहाँ दृश्यभूमि की संकल्पना का प्रसार जोरो से हुआ। इसे जर्मनी व अमेरिका के भूगोलवेत्ताओं ने अपने शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया है जो अलग–अलग थे। इसके बाद प्रादेशिक व सांस्कृतिक दृश्यभूमि की बात कहीं जाने लगी, कार्ल सॉवर ने भूदृश्य को प्रकारों में विभक्त किया था जिसे प्रादेशिक या प्राकृतिक भूदृश्य तथा सांस्कृतिक दृश्य कहा जाने लगा था। प्राकृतिक भूदृश्य सम्पूर्ण भूदृश्य में प्राकृतिक तत्वों के सामुच्चयिक स्वरूप का बोधक है। इस प्रकार सॉवर ने बताया की मानव बिना प्राकृतिक तत्वों के सहयोग मे सांस्कृतिक भूदृश्यों का निर्माण नही कर सकता है। सांस्कृ–तिक भूदृश्य पृथ्वीतल पर निर्मित मानव अनुपम कृतियां हैं। जिनके लिए मानव के बहुत सारे संसाधनों को लिया हाँ उनके उपयोग करने के तरीकों का वह जानकार है। इनके लिए मानव अब भी लगातार प्रयासरत रहता है। मानव द्वारा किये इन भूदृश्यों को मानव विकास का धोतक भी मानता है। जर्मन भूगोलवेताओं ने भूदृश्य के इन दो प्रकारों में विभेद भी किया है। उनके विभेद का आधार सांस्कृतिक विकास की सापेक्षिक दशा को माना गया है। यदि कही मानव का सांस्कृतिक विकास नगण्य है तो वह प्राकृतिक भूदृश्य है और यदि सांस्कृतिक विकास की स्पष्ट छाप नजर आती है तो यह सांस्कृतिक भूदश्य है। इसका अर्थ यह कि किसी मानव निवासित क्षेत्र में प्राकृतिक भूदृश्य की संकल्पना मात्र सैद्धान्तिक है। भूदृश्य की संकल्पना के आधार पर ही भूगोल में कई क्षेत्रों का विकास किया गया। लगभग इसी समय भूगोल में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार की गई जिसमे वाल्टर क्रिस्टालर व लॉश का नाम आता है। इन्होंने किसी स्थान की महत्व को लेकर उसके चारों ओर के भूमि उपयोग के प्रतिरूप को प्रदर्शित करने का कार्य किया है। इस दिशा में इनसे भी पहले प्रयास किए गए जब सन 1826 में वॉन थ्यूनेन ने बाजार या शहर के चारों ओर के भूमि उपयोग के आंकड़ों को और प्रतिरूप को प्रदर्शित किया। ये सभी सिद्धान्त किसी प्रदेश या क्षेत्र की भूदृश्य की संरचना को स्पष्ट करने का कार्य करते है। साथ ही प्राकृतिक भूदृश्यों के उपयोग के आधार पर निर्मित सांस्कृतिक भूदृश्यों के स्वरूप को भी ये स्पष्ट करते नजर आते हैं। केन्द्रीयता किसी स्थान के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार इस अध्याय में भूदृश्य की संकल्पना के परिणाम के रूप में केन्द्रीय स्थल सिद्धांतो को देखा जा सकता है।

3.5. पारिभाषिक शब्दावली

प्राकृतिक भूदृश्य– यह सम्पूर्ण भूदृश्य में प्राकृतिक तत्वों के समुच्चयिक स्वरूप का बोधक है।

सांस्कृतिक भूदृश्य– मानवकृत सभी तत्वों के सामुच्चयिक स्वरूप का बोध जो प्राकृतिक भूदृश्यों के सहयोग से निर्मित होते है।

केन्द्र स्थल सिद्धान्त– मानव कार्य कलाप में केन्द्राभीमुखता को मूल में रखकर प्रतिपादित किया गया सिद्धान्त।

3.6. बोध प्रश्न

3.6.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोतर

प्रश्न–1 वानथ्यूनेन के केन्द्रीय स्थल सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–5 क्रिस्टालर के केन्द्रीय स्थल सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–4– लॉश के केन्द्रीय स्थल सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

3.6.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. केन्द्रीयता किसे कहते है?

3.6.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोतर

प्रश्न–1, क्रिस्टालर का बाजार सिद्धान्त है

(क) K=5 (ख) K=3

(ग) K=15 (घ)K=9

प्र"न–2 क्रिस्टालर का यातायात नियम है।

(क) K=5 (ख) K=4

(ग) K=15 (घ)K=9

प्रश्न–3 क्रिस्टालर का प्र"ासकीय सिद्धान्त है।

(क) K=5 (ख) K=7

(ग) K=15 (घ) K=9

उतरमाला– 1– (ख)2– (ख) 3– (ग)

3.7. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Haggett, P (1965) Location Analysis in Human Geography (London) : Edward Arnold.
2. Chatterjee, S.P. (1964) Progress of (Geography) (Calutta) : Indian Science Congress Association.
3. Zipt Geoge K. 1949 : Human Behaviour and principal of least effort.
4. Berry. B.J.L. 1961 : City size distribution and Economic development.
5. Jetterson M. (1939) : The Low of the primate city.
6. Singh K.N. 1966 : Spatial Pattern of Central places in Middle ganga valley, India. 7 सिंह, काशीनाथ एवं जगदीश सिंह, 1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी।

8 वर्मा, लक्ष्मी, नारायण, 1983 : अधिवास भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 300 पृष्ठ

9 सिंह, उजागर, 1974 : नगरीय भूगोल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 413 PP.

10 शर्मा, राजीव लोचन, : प्रादेशिक एवं नगरीय नियोजनकिताब घर।

11 Turner, R, 1962 : India's Urban future, Oxford University press, Bombay,

12. Tusari, R.C.,1984: Settlement System in Rural India:A Case Study of Lower ganga

इकाई–4
जिफ का कोटि आकार नियम एवं प्राथमिक नगर की संकल्पना

इकाई की रुपरेखा –

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 जिफ का कोटि आकार नियम

4.4 नियम की व्याख्या

4.5 कोटि आकार नियम का आरेखीय प्रदर्शन

4.6 कोटि आकार नियम पर भारतीय विद्वानों के विचार

4.7 प्रधान नगर की संकल्पना एवं उदाहरण

4.8 सारांश

4.9 शब्द सूची

4.10 परीक्षा उपयोगी प्रश्न

4.11 उपयोगी पुस्तक एवं सन्दर्भ

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना –

मानव भूगोल मॉडल नियम सिद्धान्त की यह चतुर्थ इकाई है। नगरीय भूगोल में जहाँ एक तरफ एकांकी नगर का अध्ययन महत्वपूर्ण है वहाँ क्षेत्रीय स्तर पर नगरों का स्थानिक विश्लेषण भी कम महत्त्व का नहीं है यह धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि प्रादेशिक स्तर पर नगरीय आकार एवं उनके स्थानिक वितरण में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। जी के जिफ का कोटि आकार नियम नगरीय भूगोल का अत्यंत महत्वपूर्ण नियम है, यहाँ जिफ द्वारा प्रस्तुत कोटि आकार नियम की व्याख्या की जायेगी। नगरीय आकार संबंधों का एक प्रारंभिक अध्ययन 1913 में अवरबाज(Auerbach) ने प्रस्तुत किया था लेकिन किसी प्रदेश के जनसंख्या आकारों और उनकी कोटियों के बीच मिलाने वाली अनुभवात्मक नियमितताओं को एक सरल नियम के रूप में जिफ महोदय ने ही सामान्यीकृत किया, जो कोटि आकार नियम के नाम से प्रसिद्ध है। मार्क जेफरसन ने 1939 में प्राथमिक शहर की संकल्पना के रूप में नगर आकार संबंधों का वर्णन किया है, किसी क्षेत्र के सबसे बड़े नगर को उस क्षेत्र का प्रधान नगर(Primate) कहते हैं, यहां प्राथमिक नगर की संकल्पना की भी व्याख्या की जाएगी।

4.2 उद्देश्य –

नगरीय अधिवास के इस ईकाई के अध्ययन करने का उद्देश्य निम्नलिखित है–

- नगरीय बस्तियों के पदानुक्रम को जिफ के कोटि आकार नियम द्वारा समझ सकेंगे।
- जिफ के कोटि आकार नियम को सूत्र एवं आरेख के द्वारा समझ सकेंगे।
- कोटि आकार नियम पर भारतीय विद्वानों का विचार समझ सकेंगे।
- प्राइमेट अथवा प्रधान नगर की संकल्पना को समझ सकेंगे।

4.3 जिफ का कोटि आकार नियम–

नगरीय बस्तियों के पदानुक्रमिक संबंध को स्पष्ट करने से सम्बन्धित दिए गए विचारों में नगरों की जनसंख्या के आधार पर विभिन्न कोटि के नगरों की पहचान करने के सन्दर्भ में सर्वप्रथम 1913 में अवरबाज ने कोटि आकार नियम दिया, इस नियम को स्पष्ट करने का श्रेय जी के जिफ को दिया जाता है। जी के जिफ द्वारा प्रतिपादित कोटि आकार नियम (1949) नगरीय भूगोल में प्रयुक्त एक महत्वपूर्ण नियम है, जिसके अनुसार किसी प्रदेश या देश के नगर की कोटि और जनसंख्या आकार (पापुलेशन साईज) में निश्चित अनुपात पाया जाता है। जिफ के पूर्व क्रिस्टालर सहित कुछ विद्वानों ने नगर के आकार संबंधों की व्याख्या करने का प्रयास किया। क्रिस्टालर ने अपने केन्द्र स्थल सिद्धान्त (1933) में नगरों की वितरण में पायी जाने वाली नियमितता के कई पक्षों की व्याख्या की है, इसमें केंद्र स्थलों के आकर एवं उनकी पारस्परिक दूरी से सम्बन्धित तथ्यों का सार्थक सामान्यीकरण किया गया है। सिंगर(1933) ने नगर के आकार के सन्दर्भ में पैरेटो के नियम का अनुभाविक प्रयोग किया और सभी देशों में आकार के अनुसार नगरों के वर्गीकरण की संस्तुति की लेकिन किसी प्रदेश के नगरों के जनसंख्या आकारों एवं उनकी कोटियों के बीच मिलाने वाली अनुभवात्मक नियमितताओं को एक सरल नियम के रूप में जिफ महोदय ने ही समान्यीकृत किया जो कोटि आकार नियम के नाम से प्रसिद्ध है। उनके अनुसार यदि नगरों को जनसंख्या के आकार के आधार पर अवरोही क्रम में सुव्यवस्थित किया जाय तो ऐसी स्थिति में उच्च कोटि के नगर की जनसंख्या से दुसरे कोटि के नगर की जनसंख्या आधी, तीसरे कोटि के नगर की जनसंख्या एक तिहाई और इसी क्रम में अन्य कोटि के नगरों की जनसंख्या में कमी आएगी।

जिफ ने अंकगणितीय और लघु गणितीय विधि द्वारा एवं ग्राफ की सहायता से कोटि आकार नियम को स्पष्ट करने का प्रयास किया उनके अनुसार यदि नगरों को उनकी जनसंख्या के आकार पर व्यवस्थित किया जाय तो निम्न कोटि के नगरों की अपेक्षा उच्च कोटि के नगरों की संख्या में आने वाली कमी के कारण विभिन्न कोटि के नगरों की क्रम व्यवस्था का स्वरुप पिरामिड नुमा होगा जिसमें पिरामिड के आधार से शीर्ष की जाने पर नगरों की संख्या में आने वाली कमी के कारण पिरामिड की शीर्ष पर सर्वोच्च कोटि का नगर होगा जिसे मार्क जेफरसन ने प्रमुख नगर का नाम दिया।

कोटि आकार नियम गणितीय या मात्रात्मक विधि पर आधारित एक आदर्श परिकल्पना है क्योंकि विविधता के कारण आर्थिक क्रियाओ के विकेंद्रीकरण होने पर सर्वोच्च कोटि से द्वितीय कोटि के नगर की जनसंख्या आधे से अधिक होगी। यहां तक की एक ही कोटि के नगरों की संख्या एक से अधिक भी हो सकती है जहां एकरूपता की प्रवृति होगी वहां आर्थिक क्रियाओ का केंद्रीकरण होने पर अन्य नगरों की अपेक्षा उच्च कोटि के नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण सर्वोच्च कोटि के दूसरे कोटि के नगर की जनसंख्या आदि से कम हो जाएगी इस प्रकार कोटि आकार नियम में विचलन के कारण नगरों की जनसंख्या के आकार के आधार पर विभिन्न कोटि के नगरों की पहचान व्यावहारिक स्तर पर एक कठिन कार्य है लेकिन नगरों की जनसंख्या के आकार के आधार पर कोटि आकार में नियम में होने वाले विचलन के द्वारा प्रादेशिक विषमता की सूचकांक के स्तर को निर्धारित कर विभिन्न नगरों के मध्य कार्यात्मक संबंधों को स्थापित कर नगरों का नियोजन किया जा सकता है।

4.4 नियम की व्याख्या –

किसी देश या प्रदेश की नगरीय इकाइयों को यदि हम उनकी जनसंख्या आकार के अनुसार प्रथम से लघुत्तम की ओर अवरोही क्रम (Descending order) में रखने पर प्रथम सबसे बड़े नगर या बृहत्तम नगर (सबसे अधिक जनसंख्या वाले नगर) की कोटि एक होगी, द्वितीय सबसे बड़े नगर की कोटि दो होगी तथा तृतीय बड़े नगर की कोटि तीन होगी इसी प्रकार जनसंख्या के घटते क्रम में सभी नगरों की कोटि का निर्धारण किया जा सकता है। जिफ के अनुसार प्रथम कोटि के नगर की जनसंख्या ज्ञात होने पर अन्य कोटि के नगरों की संभावित या अप्रत्याशित जनसंख्या का आकलन निम्नांकित सूत्र द्वारा किया जा सकता है–

$$Pn = P_1/n$$

जहां–Pn = अवरोही क्रम में व्यवस्थित n नगर की जनसंख्या

P_1= वृहत्तम नगर की जनसँख्या

n =उस क्षेत्र में नगर की कोटि

यदि किसी वृहत्तम नगर की जनसंख्या 1 मान लिया जाय तो अवरोही क्रम में स्थित अन्य कोटि वाले नगरों की जनसंख्या क्रमशः 1/2,1/3, 1/4, 1/5 होगी।

उदहारण स्वरुप – कोटि 1 नगर की जनसंख्या 6000000 है

तो सूत्र के अनुसार

$$Pn = P_1/n$$

कोटि 2 = 6000000 ⁄ 2 = 3000000

कोटि 3 = 6000000 ⁄ 3 = 2000000

कोटि 4 = 6000000 ⁄ 4 = 1500000

कोटि 5 = 6000000 ⁄ 5 = 1200000

इसी प्रकार यदि किसी विशेष कोटि के नगर की जनसंख्या ज्ञात हो तो उससे भी कोटि 01 के नगर की जनसंख्या ज्ञात की जा सकती है। इसके लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करते है

$$P_1 = \Sigma Pn/ \Sigma Rn$$

P_1= रैंक 1 वाले नगर की प्रत्याशित जनसँख्या

ΣPn = दी हुई कोटि के नगर की जनसँख्या

ΣRn = कोटि का व्युत्क्रम

उदहारण स्वरुप – 5वें कोटि के नगर की जनसंख्या 1200000 है तो कोटि नम्बर 1 के नगर की जनसंख्या क्या होगी ?

P_1= 1200000 ⁄ $5\frac{1}{5}$= 1200000 ⁄ 0.2

कोटि का व्युत्क्रम – 5 = 1 ⁄ 5 = 0

4.5 कोटि आकार नियम का आरेखीय प्रदर्शन –

किसी प्रदेश के नगरों की कोटि तथा उनकी जनसंख्या के संबंधों को लघुगणकीय मापन पर प्रदर्शित किया जाता है यदि आधार अक्ष पर नगरों की कोटि और लम्बवत अक्ष पर उनकी जनसंख्या को प्रदर्शित किया जाए तो यह लघुगणकीय सामान्य वितरण को प्रदर्शित करेगा, इसमें कोटि और जनसंख्या दोनों ही चरों को दिखाने के लिए लघुगणकीय मापक का प्रयोग किया जाता है। x और y दोनों अक्षो पर लघुगणक का प्रयोग करने पर कोटि और आकार के संबंधों को प्रदर्शित करने वाली एक सरल रेखा प्राप्त होती है जिसका झुकाव ऊपर बाएं से नीचे दाएं की ओर होता है।

प्रस्तुत आरेख में जिफ द्वारा प्रतिपादित नगरों के कोटि आकार संबंध को प्रदर्शित किया गया है जिसमें कोटि और आकार के अनुसार नगरों की स्थिति A, B सरल रेखा पर ही होनी चाहिए, किन्तु वास्तविक जगत में इस प्रकार के सरल रेखीय संबंध शायद ही किसी देश के नगरीय तंत्र पर लागू होता हो। सामान्यतः नगरों की स्थिति को प्रदर्शित करने वाले बिंदु सरल रेखा के रूप में न होकर S आकृति के रूप में वक्र का निर्माण करते हैं और इस प्रकार वे कोटि आकार नियम से विचलन की दशा को प्रदर्शित करते हैं।

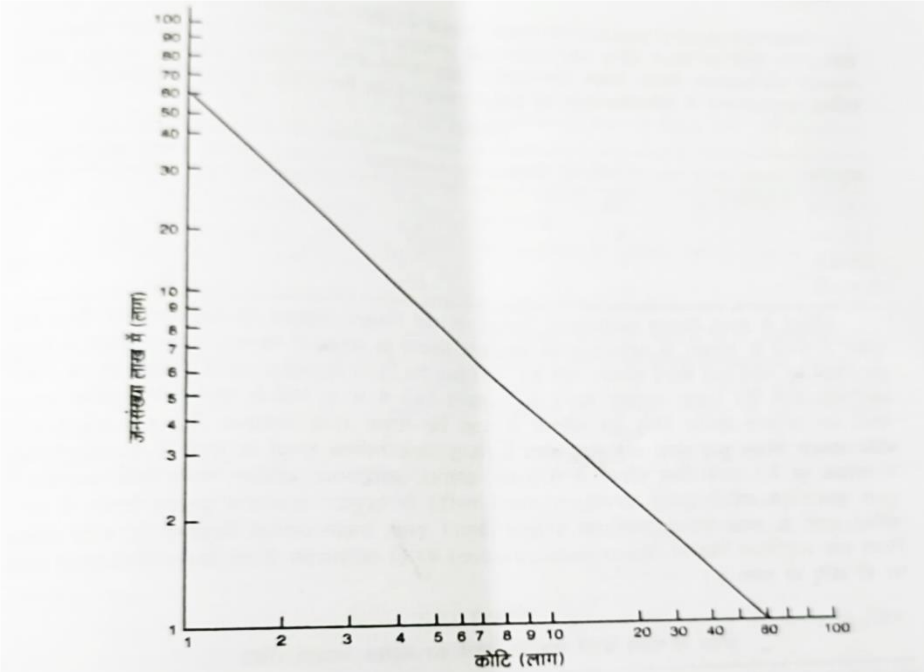

4.6 भारतीय विद्वानों के विचार –

भारत में भी अनेक भूगोलविदों ने कोटि आकार नियम का अध्ययन करते हुए जिफ द्वारा सुझाई गई विधियो का उपयोग किया है। एन बी के रेड्डी ने (1969) ने 1961 की जनगणना के आधार पर कृष्णा – गोदावरी डेल्टा के नगरीय आधिवासो के अध्ययन में किया। इसी प्रकार एस आर पाटिल (1969) ने कर्नाटक राज्य में कोटि–आकार नियम के आधार पर नगरों के वितरण की व्याख्या का प्रयास किया। ओमप्रकाश सिंह ने (1971) में कोटि आकार नियम के आधार पर उत्तर प्रदेश के केंद्र स्थलों के वितरण के अध्ययन में कोटि आकार रेखा को ऊपरी भाग में अधिक अनियमित पाया। वी सी दक्ष (1974) ने तमिलनाडु के नगरों के स्थानिक प्रतिरूप के विश्लेषण का प्रयास किया जबकि श्रीनिवास गुप्त (1982) ने पूर्वी पठारी प्रदेश के नगरों में कोटि आकार संबंधों का विश्लेषण करते हुए क्षेत्र के नगरों को वास्तविक आकार में 48.99% छोटा या बड़ा पाया।

4.7 प्रधान या प्राइमेट नगर की संकल्पना –

प्राइमेट शहर एक ऐसा शहर है, जो अपने देश प्रांत राज्य या क्षेत्र में सबसे बड़ा होता है और शहरी पदानुक्रम में किसी भी अन्य की तुलना में अनुपात के रूप से बड़ा होता है। प्राइमेट शहर का वितरण एक रैंक आकार वितरण है जिसमें कई छोटे शहरों और कस्बों के साथ एक बहुत बड़ा शहर होता है।

प्राइमेट शहर की संकल्पना सबसे पहले 1939 में भूगोलवेत्ता मार्क जेफरसन द्वारा प्रस्तावित किया गया था। वह प्राइमेट शहर को अगले सबसे बड़े शहर से कम से कम दो गुना बड़ा और दोगुने से अधिक महत्वपूर्ण रूप में परिभाषित करता है। आकार और जनसंख्या के अलावा एक प्राइमेट शहर को आमतौर पर देश के समाज के अन्य सभी पहलुओं जैसे कि अर्थशास्त्र ,राजनीति, संस्कृति और शिक्षा में प्राथमिकता मिलती है। प्राइमेट शहर किसी देश या क्षेत्र के अधिकांश प्रवास के लिए लक्ष्य के रूप में भी काम करते हैं। किसी देश में एक प्राइमेट शहर की उपस्थिति विकास में असंतुलन का संदेश दे सकती है, आमतौर पर प्रगतिशील कोर और एक पिछड़ी हुई परिधि जिस शहर पर श्रम एवं अन्य संसाधनों पर जनसंख्या निर्भर रहती है।

कुछ वैश्विक शहरों को राष्ट्रीय या क्षेत्रीय प्राइमेट शहर माना जाता है। वैश्विक शहर का एक उदाहरण तुर्की शहर का इस्तांबुल है, इस्तांबुल तुर्की के प्राइमेट शहर के रूप में कार्य करता है क्योंकि इस्तांबुल में अन्य शहरों जैसे अंकारा, इंजमिर या वार्सा की तुलना में बेजोड़ आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक प्रभाव है। मेक्सिको सिटी पेरिस, काहिरा, जकार्ता और सियोल को भी अपने–अपने देशों के प्राइमेट शहरों के रूप में जाना जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में देश की विकेंद्रीकृत प्रकृति के कारण कोई प्राइमेट शहर नहीं रहा है, क्योंकि न्यूयॉर्क यदि बड़ा शहर है तो लासएंजेल्स भी जनसंख्या में बहुत पीछे नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में उप राष्ट्रीय प्रभागों में भी प्राइमेट शहर हो सकते हैं, जैसे न्यूयॉर्क न्यूयॉर्क राज्य का प्राइमेट शहर है क्योंकि इसकी जनसंख्या राज्य के दूसरे बड़े शहर बफेलो से 32 गुनी अधिक है। एकारेंज शहर अलास्का राज्य का प्राइमेट शहर है क्योंकि अलास्का की कुल आबादी के लगभग 40% लोग इस शहर में रहते हैं।

चीन में राष्ट्रीय स्तर का प्राइमेट शहर नहीं है। इसी प्रकार भारत में कोई प्राइमेट शहर नहीं है क्योंकि दिल्ली जनसंख्या की दृष्टि से मुंबई एवं कोलकाता से अधिक बड़ी नहीं है, यद्यपि कर्नाटक पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र जैसे कई भारतीय राज्यों में प्राइमेट शहर है जैसे बेंगलुरु, कोलकाता, चेन्नई, मुंबई। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, केरल एवं अन्य भारतीय राज्य में कोई प्राइमेट शहर नहीं है। थाईलैंड की राजधानी बैंकाक को प्राइमेट शहर का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण मानते हैं बैंकॉक थाईलैंड के वर्तमान दूसरे सबसे बड़े शहर चियांगमाई से लगभग 9 गुना बड़ा है। बैंकॉक जैसे प्राइमेट शहर राष्ट्रीय राजधानियों के रूप में कार्य करते हैं अधिकांश शासन शक्ति उसे छोटे से क्षेत्र में निहित है।

रूस की राजधानी मास्को शहर का महानगरीय क्षेत्र अगली सबसे बड़ी शहर सेंटपीटर्सबर्ग के महानगरीय क्षेत्र के आकार का लगभग चार गुना है और देश के सांस्कृतिक और राजनीतिक केंद्र की एक अद्वितीय और निर्विवाद भूमिका निभाता है इसलिए इसे प्राइमेट शहर माना जा सकता है। प्राइमेट शहर को राजधानी शहर होने की जरूरत नहीं है, उदाहरण के लिए तंजानिया में दारुस्सलाम अभी भी प्राइमेट शहर है भले ही राजधानी डोडोमा में स्थानांतरित कर दिया गया है। ऑस्ट्रेलिया में कोई प्राइमेट शहर नहीं है, लेकिन राज्य स्तर पर राज्यों और क्षेत्र का प्रत्येक राजधानी शहर उस राज्य के प्राइमेट शहर के रूप में कार्य करता है इस प्रकार यूरोप में प्राइवेट शहर क्षेत्रीय स्तर पर मौजूद है।

वर्तमान समय में परिवहन एवं संचार की साधनों के प्रसार और औद्योगीकरण के कारण निचले स्तर पर प्रमुख नगरों का विकास हो रहा है जिसे कोटि आकार नियम के अनुरूप स्थिति के निर्माण में मदद मिल रही है। इससे निकट भविष्य में बड़े नगरों की वर्चस्व में कमी आने की संभावना है।

4.8 सारांश –

नगरीय अधिवास के चतुर्थ इकाई में नगरों की जनसंख्या आकार संबंधों में जिफ के कोटि आकार नियम की व्याख्या की गई।जिफ द्वारा प्रतिपादित सूत्र एवं आरेख का उल्लेख करके कोटि आकार नियम को समझने का प्रयास किया गया। कोटि आकार नियम पर भारतीय विद्वानों के विचारों का भी उल्लेख किया गया। कोटि आकार नियम के अतिरिक्त प्रधान नगर की संकल्पना की भी व्याख्या की गई ,तथा संपूर्ण विश्व से प्रधान नगर का उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया।

संपूर्ण विश्व के उदाहरण में यह देखा गया की सभी देशों में प्राइमेट नगर नहीं है क्योंकि प्राइमेट नगर की संकल्पना के अनुसार वह शहर जिसकी जनसंख्या दूसरे शहर से बहुत अधिक बड़ी हो इस कारण बहुत ऐसे भी देश हैं जहां बड़े नगर तो बहुत है एव बड़े नगरों की संख्या बहुत है लेकिन कोई ऐसा शहर नहीं है जिसकी जनसंख्या दूसरे सबसे बड़े शहर से बहुत अधिक हो। प्राइमेट नगर एशिया , यूरोप, अमेरिका ,ऑस्ट्रेलिया के बहुत सारे देशों में भी नहीं है, इसका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक विकसित एवं विकासशील राष्ट्र में परिवहन सुविधा एवं संचार सुविधाएं विकसित होने के कारण कई बड़े शहर विकसित हो रहे हैं जहां आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक गतिविधियां उन शहरों के आसपास के लोगों को आकर्षित कर रही है और यह किसी देश के विकास के लिए एक शुभ संकेत है क्योंकि प्राइमेट शहर किसी देश की विकास में असंतुलन को प्रकट करता है ना की समग्र विकास को इसलिए प्रत्येक ऐसे देश में राज्यों के प्राइमेट शहर हो सकते हैं या देखे जा रहे हैं किसी देश का एक प्राइमेट शहर नहीं विकसित हो रहा है।

4.9 शब्द सूची –

कोटि Rank

प्राइमेट Primate

प्रांत State

परिकल्पना Hypothesis

विचलन Deviation

सूचकांक Index

अवरोही क्रम Descending order

अप्रत्याशित Unexpected

जनसंख्या Population

व्युत्क्रम Reciprocal

लघुगणकीय Logarthimic

वितरण Distribution

लंबवत अक्ष Y axis

आधार अक्ष X axis

वैश्विक शहर Global City

4.10 उपयोगी पुस्तकें / संदर्भ–

1. प्रोफेसर आर सी तिवारी अधिवास भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशंस, इलाहाबाद
2 डॉ एस डी मौर्य अधिवास भूगोल शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3 डॉ सुरेश चंद्र बंसल नगरीय भूगोल मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ
4 प्रोफेसर ओ पी सिंह नगरीय भूगोल शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5 Zipf. George K. National Unity And Disunity, Principia, Press. Bloomington.

4.11 परीक्षा उपयोगी प्रश्न–

1. कोटि आकार नियम किसने दिया है?
2. कोटि आकार नियम का मुख्य आधार क्या है ?
3 जिफ द्वारा प्रतिपादित कोटि आकार नियम के सूत्र बताएं ?
4. नगरों के आकार एवं कोटि में संबंध बताइए ?
5 प्राइमेट नगर किसे कहते हैं ?
6. कोटि आकार नियम का आरेखीय प्रदर्शन किस तरह किया जाता है?
7. कोटि आकार नियम के लॉग ग्राफ के आधार अक्ष पर क्या दिखाया जाता है ?
8. भारत में नगरों का औसत आकार बढ़ रहा है कि घट रहा है ?
9 पश्चिमी उत्तर प्रदेश के प्राइमेट नगर का नाम बताइए ?

4.12 अभ्यास प्रश्न–

1. निम्न में से किस विदेशी विद्वान के विचार कोटि आकार नियम पर महत्वपूर्ण है ?

अ. एच आर सिमन

ब. जी के जिफ

स. आर ई डिकिंसन

द. डब्ल्यू एच सिंगर

2. कोटि आकार नियम के निर्धारण में नगरों को उनके आकार के अनुसार किस क्रम में रखा जाता है

अ. अवरोही क्रम

ब. आरोही क्रम

स. अवस्थित क्रम

द. सामान्य क्रम

3. कोटि आकार नियम निम्न में से किस विशेषता को बताने में सहायक नहीं है

अ. नगरों का आकार के अनुसार वितरण

ब. नगरों के विकास पर आर्थिक व सामाजिक दशाओं का प्रभाव

स. नगरों का आकारीय क्रम

द. नगरों की कायिक प्रधानता

4. मार्क जेफरसन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत किस नाम से प्रस्तुत किया गया

अ. मानव व्यवहार का सामान्य सिद्धांत

ब. आय वितरण का नियम

स. प्राइमेट नगर का नियम

द. उद्योगों की अवस्थिति का नियम

5. भारत के नगरों की वास्तविक एवं संभावित जनसंख्या रेखाएं लॉग ग्राफ पर एक दूसरी के समीप दिखाई देती हैं।

अ ऊपरी भाग में

ब निचले भाग में

स मध्यवर्ती भाग में

द अति निचले भाग में

उत्तर– 1–ब, 2 अ, 3 द, 4 स, 5 स।

इकाई–05
सीमाएं, सीमान्त क्षेत्र के नियम

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्द्देश्य

5.2 विषय प्रवेश

5.3 सीमान्त

5.4 सीमान्तः परिभाषाएं

5.5 सीमान्तों का सीमा में परिवर्तनः अवस्थाएं एवं कारक

5.6 सीमान्तों का वर्गीकरण

5.6.1 जे0 आर0 वी0 प्रेस्कॉट का सीमान्त वर्गीकारण

5.7 सीमाएं

5.8 सीमाः परिभाषाएं

5.9 सीमाओ की अवधारणा

5.10 सीमाओं का विकास

5.11. सीमाओं का वर्गीकरण

5.11.1. सीमाओं का आकृति मूलक वर्गीकरण

5.11.2 सीमाओं का आनुवंशिक या कार्यात्मक वर्गीकारण

5.11.3 जे0डी0 नीस्टेन का सीमा वर्गीकरण

5.11.4 एच0डब्ल्यू0 वीगर्ट का सीमा वर्गीकरण

5.12. सीमाओं के कार्य

5.13 सीमा विवाद

5.14 सीमान्त तथा सीमा में अन्तर

5.15 सारांश

5.16 शब्द सूची

5.17 स्वमूल्यांकन प्रष्न एवं आदर्ष उत्तर

5.18 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं उपयोगी पुस्तकें

5.19 अभ्यासार्थ प्रश्नः सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

5.0 प्रस्तावना

इस इकाई में सीमान्त, सीमान्त की प्रकृति एवं परिभाषाएँ, तथा सीमान्तों के वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे। सीमा–अवधारणा, सीमाओं का विकास, सीमाओं का वर्गीकरण एवं सीमाओं के कार्यो का अध्ययन भी इस इकाई में आपको करना है। राजनीतिक भूगोल के अध्येता के लिए सीमा विवाद की प्रकृति तथा सीमा एवं सीमान्त के अन्तर को भी समझना आवश्यक होता है, इसीलिए इस इकाई के अन्त में इनका प्रमुखता से विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत

किया गया है। राजनीतिक भूगोल सम्बन्धी आप के ज्ञान को सम्पन्न बनाने के लिए इस इकाई की विषयवस्तु का अध्ययन वास्तव में आपके लिए अति आवश्यक है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देष्य निम्नलिखित हैं–

1. विद्यार्थियों को सीमान्त और सीमाओं की प्रकृति से अवगत कराना।
2. सीमान्तों का सीमा में परिवर्तन किस प्रकार होता है?– इस तथ्य की विस्तार से जानकारी प्राप्त करना।
3. सीमान्त और सीमाओं के वर्गीकरण के माध्यम से उनके विभिन्न स्वरूपों का मूल्यांकन करना।
4. सीमा विवादों की प्रकृति के आधार पर राज्यों के मध्य उत्पन्न सीमा विवादों के कारणों से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
5. सीमान्त एवं सीमा के मध्य अन्तर को स्पष्ट कर विद्यार्थियो के तत्सम्बन्धी भ्रम को दूर करना।

5.2 विषय प्रवेश

राज्य की संरचना (**Anatomy of the State**) के महत्वपूर्ण तत्वों में सीमान्त (**frontiers**) और सीमाओं (**Boundaries**) का स्थान महत्वपूर्ण है। सीमान्त एवं सीमाएं किसी भी राज्य के राजनीतिक – भौगोलिक तत्व हैं और किसी भी संगठित राजनीतिक इकाई की विशेषताएँ है। राज्य की कार्य प्रणाली (चाहे वे राज्यों के द्विपक्षीय सम्बन्ध हों या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राज्य की भूमिका हो, आन्तरिक प्रशासन हो या विदेश नीति का निर्धारण, पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध हों या राज्य में अमन– चैन का निर्धारण आदि) अनेक रूपों में सीमान्त और सीमाओं द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर से प्रभावित होती है। यही कारण है राजनीतिक भूगोल में सीमान्त और सीमाओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है।

गैर भौगोलिक साहित्य में प्रायः 'सीमान्त' एवं 'सीमा' दोनों का समानार्थक के रूप में प्रयोग किया गया है। परन्तु वास्तविक अर्थों में दोनों समानार्थक नहीं है। दोनों के बीच आधारभूत अन्तर है। सीमान्त की प्रकृति ''क्षेत्रीय' है जब कि सीमाओं की प्रवृति 'रेखीय' है। सीमान्त प्रायः राज्य के विकास की परिपक्व अवस्था से पूर्व का तत्व है, जबकि सीमाएं राज्य के विकास की परिपक्व अवस्था का परिणाम हैं। दोनों के बीच का यह मौलिक अन्तर राजनीतिक भूगोल में इनके अध्ययन की महत्ता को सिद्ध करता है। चूंकि राज्य एक क्रियाशील क्षेत्रीय इकाई है, अतः उसका सुस्पष्ट सीमांकन इसकी प्राथमिक आवश्यकता है, वह सीमांकन चाहे सीमान्तों के रूप में हो या सीमाओं के रूप में।

5.3 सीमान्त (frontier)

हिन्दी भाषा का 'सीमान्त 'शब्द अंग्रेजी भाषा के 'frontier' शब्द का हिन्दी रुपान्तरण है। 'Frontier' (फॉण्टीअॅर) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Frons (फ्रोंस) अथवा फ्रेंच भाषा के शब्द 'front (फ्रॉन्ट) से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'अग्र प्रदेश' है। यह एक क्षेत्र बोधक शब्द है जिसका प्रयोग दो पड़ोसी राज्यों की राजनीतिक प्रभुसत्ता के परस्पर क्षेत्रीय विस्तार की विभाजक' क्षेत्र पट्टी' के रूप में किया जाता है।' सीमान्त' (Frontier) के कई (समानार्थक शब्द भी प्रचलित हैं, जैसे–मानव रहित क्षेत्र (No Man's Land), तटस्थ क्षेत्र (Neutral Zone), संक्रमण प्रदेश (Transitional Zone), अग्र प्रदेश (Foreland), सीमा प्रदेश (Borderland), एवं सीमा प्रान्त (March Land) आदि। (सीमान्त न तो वैधानिक संकल्पना है, न राजनीतिक संकल्पना है और न ही बौद्धिक संकल्पना है। यह एक नितांत प्राकृतिक/सामाजिक (संकल्पना है जिसकी भौगोलिक स्थिति दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों के विस्तार को निष्क्रिय एवं संतुलित करती है। सीमान्त वास्तव में दो सामाजिक व्यवस्थाओं अथवा दो राजनीतिक इकाइयों के मध्य स्थित एक क्षेत्र होता है, जहाँ तक पहुंचते–पहुँचते राज्य की प्रभुसत्ता सीमित और शिथिल हो जाती है।

5.4 सीमान्त : परिभाषाएं (Frontiers : Definitions) :–

अनेक राजनीतिक भूगोलविदों ने सीमान्त को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यहाँ कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :–

वाई० एम० गाब्लेट (1956) के अनुसार – 'सीमान्त वह भौगोलिक क्षेत्र है जहाँ उसके विस्तार के विरुद्ध प्रतिरोध सम्बन्धी शक्तियाँ निष्क्रिय होकर स्थिर हो जाती हैं।

ए०ई० मूडी (1956) के अनुसार– 'एक सीमान्त चाहे वह प्राकृतिक, भाषाई, धार्मिक या प्रजातीय रूप में हो, परिवर्तित नहीं हो सकता। इसका चरित्र (विशेषता/प्रकृति) बदल सकता है, इसके सीमान्त सम्बन्धी अधिकांश कार्य समाप्त हो सकते हैं, लेकिन यह यथावत बना रहता है।

एल० के०डी० क्रिस्टोफ (1959) के अनुसार – 'सीमान्त राज्य का समापन बिन्दु (पूँछ) नहीं है बल्कि यह राज्य का प्रारम्भ (अग्रभाग) है; यह अल्पज्ञात तथा अज्ञात परिमंडल में प्रकाश और ज्ञान की रोशनी फैलाने में अग्रणी है। यह दोनों ओर के सामाजिक समूहों का मिलन स्थल है।

एचा जे०डी ब्लिज (1970) के अनुसार– सीमान्त राजनीतिक इकाई के एकीकृत क्षेत्र के बाहर का राजनीतिक–भौगोलिक क्षेत्र है, जिसमें राजनीतिक इकाई का विस्तार हो सकता है।

रैट्जेल महोदय ने भी 'सीमान्त' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि यह (सीमान्त) मानव सभ्यता को जीवित रखने वाले तत्वों को विकसित करने वाला क्षेत्र है। लार्डकर्जन (1908) ने सीमान्त को (एक तीक्ष्णधार' भी– संज्ञा दी थी। जिसपर आधुनिक युद्ध या शान्ति सम्बन्धी परिणाम अथवा राष्ट्रों का जीवन–मरण अवलम्बित होता है। रैट्जेल और लार्ड कर्जन के ये सीमान्त सम्बन्धी विचार वर्तमान समय में मान्य नहीं है। वर्तमान परिवेश में सीमान्त वास्तव में एक संतुलन क्षेत्र है, जो विस्तार की शक्तियों के मध्य मानवीय तत्व द्वारा निर्धारित हुआ है। इस क्षेत्र में पड़ोसी राज्यों की गतिशीलता विपरीत दिशाओं से आकर एक–दूसरे से मिलती है, एक दूसरे को अवरुद्ध करती है और अन्ततः तटस्थ और निरपेक्ष हो जाती हैं।

5.5 सीमान्तों का सीमा में परिवर्तन : अवस्थाएं एवं कारक :–

अवस्थाएं :– सीमान्त का सीमा में परिवर्तन कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह परिवर्तन मूलतः क्रमिक विकास का प्रतिफल है। क्रमिक विकास जनित यह परिवर्तन कई अवस्थाओं में सम्पन्न होता है –

(i) **प्रारम्भिक अवस्था** :– अपनी प्रारंभिक अवस्था में सीमान्त किसी राज्य की सिर्फ एक परिसीमा (**Limit**) होता है जिसके आगे उस राज्य की भौगोलिक शून्यता होती है, जैसे तट के आगे का कोई अपरिचित सागर। विस्तीर्ण महासागरीय जल राशि तथा महाद्वीपीय क्षेत्र सीमान्त के प्रथम सोपान बनते हैं। इन विस्तीर्ण जलीय/स्थनीय क्षेत्रों में दो शक्तियाँ विपरीत दिशाओं से एक–दूसरे से मिलती हैं और अपनी गतिशीलता खो देती हैं।

(ii) **द्वितीय अवस्था** :– इस अवस्था का प्रारंभ सीमान्त प्रान्तों (**frontier Marches**) के गठन से होता है। ये सीमांत प्रान्त प्रायः निर्जन एवं अविकसित प्रदेश होते हैं जो मध्य संक्रान्ति के रूप में दोनो पड़ोसी राज्यों के मध्य एक पट्टी के रूप में विस्तृत होते हैं। ये राज्य के गहनतम पृष्ठभूमि के अग्रक्षेत्र होते हैं। मरुस्थलीय, जंगली, दलदली या पर्वतीय जैसी प्राकृतिक बाधाओं से भरे–इन सीमान्त प्रान्तों की निर्वाहक क्षमता बेहद सीमित होती है।

(iii) **अंतिम अवस्था** :– अंतिम अवस्था में सीमान्त एक सीमान्त रेखा के रूप में स्थानांतरित हो जाता है। ऐसा सामान्यतया तब घटित होता है जब बढ़ते आर्थिक और राजनीतिक कारणों से सम्बन्धित राज्यों को सीमान्त प्रान्तों के संसाधनों के दोहन की आवश्यकता महसूस होती है और दोनों ओर ही होने वाले क्षेत्रीय प्रसार के फलस्वरूप सीमान्त प्रान्त उत्तरोत्तर संकरा होता जाता है और अन्ततः रेखीय सीमाओं के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

कारक :– सीमान्त प्रदेशों की सीमा रेखाओं में परिवर्तन भी इस प्रक्रिया के कई कारक थे, जैसे कि सीमान्त क्षेत्र में :–

(1) प्रारंभ में सीमित जनसंख्या, लेकिन धीरे–धीरे जनसंख्या में क्रमिक वृद्धि;

(2) आर्थिक दृष्टि से उपजाऊ सभी क्षेत्रों का किसी राज्य का अधिग्रहण;

(5) आर्थिक दृष्टि से कम उपजाऊ सभी क्षेत्रों पर औद्योगिक क्रांति के पश्चात औद्योगिक प्रसार;

(4) खनिज संसाधनों एवं शक्ति स्रोतों की संभावनाओं का उदय;

(5) भौगोलिक क्षेत्रों की बढ़ती जानकारी एवं तकनीकी विकास; एवं

(6) सुरक्षा की दृष्टि से आधारभूत सैन्य विकास की आवश्यकता आदि।

उपरोक्त अनेक कारकों के परिणाम स्वरूप सीमान्त प्रदेश धीरे–धीरे कालान्तर में सीमाओं में परिवर्तित होते चले गए। यद्यपि कि कुछ राज्यों के अति दुर्लभ एवं विवादास्पद क्षेत्र आज भी इस श्रेणी में विद्यमान है।

5.6 सीमान्तों का वर्गीकरण :–

विशेषताओं के आधार पर सीमान्त को निम्नलिखित चार वर्गो में विभक्त किया जाता है :–

(1) प्राकृतिक सीमान्त **(2)** सांस्कृतिक सीमान्त **(5)** ज्यामितीय सीमान्त **(4)** राजनीतिक सीमान्त

(i) प्राकृतिक सीमान्त (Natural frontiers) :– इसे भौतिक सीमान्त भी कहा जाता है। सीमान्त के इस वर्ग के अन्तवति दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य फैले हुए उन जनशून्य भू–भागों को सम्मिलित किया जाता है जो प्राकृतिक रुप से दुर्गम एवं बाधाओं से युक्त रहते हैं, जैसे उच्च एवं विस्तृत पर्वतीय क्षेत्र, विस्तृत मरुस्थलीप क्षेत्र, सघन वन प्रदेश, दलदलीय क्षेत्र एवं हिमाच्छादित प्रदेश आदि। ऐसे भू– भागों पर संबन्धित राज्यों का (साधारण नियंत्रण रहता है। गमनागमन की सुविधाओं के अभाव एवं कम आर्थिक महत्व के कारण प्राकृतिक सीमान्तों में समीपी राज्यों की प्रभुसत्ता प्राप्यः निष्क्रिय सी रहती है, परिणामतः यही भौतिक सीमान्त राज्यों के मध्य विभाजक का कार्य करने लगते हैं। ब्रिटिश कालीन भारत तथा चीन के मध्य विस्तृत हिमालय पर्वतीय क्षेत्र एक प्राकृतिक सीमान्त ही था। जिसमें चीन एवं ब्रिटिश कालीन भारत दोनों ही अपनी प्राधिकृत सीमा को नहीं जानते थे। दक्षिण अमेरिका में विस्तृत परन्तु लगभग अगम्य अमेजन बेसिन अभी भी एक प्राकृतिक सीमान्त की तरह विद्यमान है। तकनीकी विकास एवं राज्यों की बढ़ती आवश्यकताओं ने यद्यपि कि इन प्राकृतिक सीमान्तों के क्षेत्रीय प्रसार को संकुचित कर दिया है, कहीं–कहीं तो ये लुप्त प्राय हो गए है; लेकिन अतिदुर्गम क्षेत्र आज भी प्राकृतिक सीमान्तों के रूप में विश्व के विभिन्न राज्यों के मध्य विद्यमान है।

(ii) सांस्कृतिक सीमान्त (Cultural Frontiers):– इसे नृजातीय सीमान्त भी कहा जाता है। दो या दो से अधिक राजनीतिक इकाइयों के मध्य यह सीमान्त तब विकसित होता है, जब उनके सीमावर्ती क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से भिन्न कोई प्रजातीय मानव समुदाय निवास करता है। अल्प अधिवासित इस समुदाय का प्रसार दोनो ही पड़ोसी राज्यों की सीमा में होता है और अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत रहता है। ईराक एवं तुर्की के मध्य कुर्दिस्तान ऐसा ही सांस्कृतिक सीमान्त है, जहाँ अपनी स्वतंत्र पहचान बनाए रखने के लिए कुर्द प्रजाति आज भी संघर्षरत है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि ऐसे सीमान्तों के गठन में प्राकृतिक कारकों के साथ– साथ मानवीय तत्व भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

(iii) ज्यामितीय सीमान्त (**Geometrical Frontiers**) :– इसे खगोलीय (**Astronomical**) सीमान्त भी कहा जाता है। भौगोलिक वास्तविकताओं को पूरी तरह नजरअंदाज कर अक्षांयशों एवं देशान्तरों की संघयता से निर्धारित किए गए ऐसे सीमान्त वास्वत में 19वीं शताब्दी में यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों की आपसी प्रति द्वन्द्विता के परिणाम थे। इन औपनिवेशिक शक्तियों ने अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं नई दुनिया के क्षेत्रों में अपने राजनीतिक परिमंडल को बढ़ाने के लिए ऐसे निर्जन प्रदेशों में इन सीमान्तों का सीमांकन किया था जो अनन्वेषित (Unexplored) थे।) राजनीतिक सीमान्त (Political Frontiers) :– वो भिन्त्र शक्तिधामी

(iv) राजनीतिक सीमान्त (Political Frontiers) :–दो भिन्न शक्तिशाली राजनीतिक इकाइयों के मध्य स्थित क्षेत्र राजनीतिक सीमान्तों के रूप में जाने जाते हैं। वर्तमान समय में इनका परिवर्तित स्वरूप अंतस्थ राज्यों (Buffer States) के रूप में है जो दोनों राज्यों के मध्य संतुलन बनाए हुए अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखते हैं। उनकी स्थिति से प्रतिस्पर्धी राज्यों की सीमाएं सुरक्षित बनी रहती है। भारत व चीन के मध्य नेपाल व भूटान अंतस्थ राज्य है। जो राजनीतिक सीमान्त के रूप में कार्य करते हैं।

5.6.1 जे० आर० वी० प्रेस्कॉट (1978) का सीमान्त वर्गीकरण –

प्रेस्कार ने 1965 में अपनी पुस्तक 'Boundaries and frontiers' में सीमान्त के दो प्रकार बताये हैं – **(अ) अधिवास सीमान्त** :–

अधिवास सीमान्त से तात्पर्य राज्य के उन सीमावर्ती क्षेत्रों से है, जो पहले आर्थिक विकास से वंचित रहते हैं। कालांतर में क्रोड़ क्षेत्र में अधिक दवाब के कारण उन्हीं क्षेत्रों में जनसंख्या बसाव के द्वारा आर्थिक गतिविधियों का विस्तार किया जाता है। अधिवास सीमान्त एक देश में ही स्थित होता है। इसे भौगोलिक सीमान्त भी कहते हैं। अधिवास सीमान्त के भी दो उपभेद हैं –

(i) प्राथमिक अधिवास सीमान्त :–

यह सीमान्त वहाँ देखा जाता है जहाँ राज्य अपने क्षेत्र को प्रथम बार अपने अधिकार में लेता है।

(ii) द्वितीयक अधिवास सीमान्त :–

इसके अन्तर्गत राज्य के निर्जन एवं अधिवास विहीन क्षेत्र आते हैं।

(ब) राजनीतिक सीमान्त :–

राजनीतिक सीमान्त का उपयोग दो पड़ोसी राज्यों को पृथक करने हेतु किया जाता है।

लार्ड कर्जन (Lord Curzon, 1905) ने भी सीमान्त के प्रकार बताए हैं –

(i) संयुक्तक सीमान्त (Frontiers of Contact),

(ii) विभक्त) सीमान्त (Frontiers of Seperation

5.7 सीमाएँ (Boundaries) :–

हिन्दी भाषा का 'सीमा' शब्द अँग्रेजी भाषा के 'Bourdary' शब्द का हिन्दी रुपान्तरण है। 'Boundary' शब्द अंग्रेजी के 'Bound' शब्द से बना है जिसका अर्थ है बाँधना, सीमित करना। इस तरह से 'Boundary' अर्थात सीमा' एक आबद्धक रेखा है जो एक राजनीतिक इकाई को सीमा बद्ध करती है। 'सीमा' एक विभाजक रेखा भी है जो एक राज्य के अधिकार क्षेत्र को दूसरे राज्य के अधिकार क्षेत्र से अलग करती है। आधुनिक राज्य व्यवस्या के लिए रेखीय सीमा एक अनिवार्य आवश्यकता है, कारण कि यह राज्य की सार्वभौमिकता की सीमा को चिन्हित करती है, राज्य के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट करती है और उसकी प्रभुसत्ता को उसके पड़ोसी राज्य से पृथक करती है। मानचित्र पर सीमा स्वरूप देखने में भले ही रेखात्मक हो, परन्तु वास्तव में यह एक शीर्षवृत्तीय तब होती है जो धरातल के संगतीय आकाश और भौमिकीय तल को भी दोनों राज्यों के मध्य अलग कर देती हैं तथा समान रेखा के रूप में प्रभावित होती है।

5.8 सीमा परिभाषाएँ (Boundaries : Definitions) :–

सीमा के सन्दर्भ में प्रस्तुतः कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

फ्रेडरिक टैटजेल (1897) के अनुसार :– सीमाएँ राज्य रूपी जीव की त्वचा है जो उसे सुरक्षा प्रदान करती है और बाध्य आक्रमणों से रक्षा करती है।

एस० डब्ल्यू० बाग्स (1940) के अनुसार :– सीमा के दोनों ओर प्रत्येक राज्य अपने प्राधिकार एवं संगठन जैसे– प्रशासन, व्यापार, कर निर्धारण, सुरक्षा, अतिरिक्त विकास और अन्य विविध अर्थों का सम्पादन करता है।

एन. जे. स्पाइकमैन(1944) के अनुसार :– 'सीमा वह रेखा नहीं है, जो वैघानिक प्रणालियों को अलग करती है, बल्कि वह क्षेत्रीय शक्ति संरचनाओं की सम्पर्क रेखा भी हैं।

एल० कार्लसन (1958) के अनुसार :– एक अन्तरर्राष्ट्रीय सीमा राज्य की वह वाह्य रेखा है जिसके अन्तर्गत राज्य अपनी प्रभुसत्ता का इस्तेमाल करता है। कार्लसन का यह भी मानना है कि –'राज्य अपने वैधानिक प्राधिकार अर्थात् अपनी सम्प्रभुता को न केवल स्थल क्षेत्र पर, बल्कि विस्तीर्ण अर्थों में समीपवर्ती सागरीय भागों एवं वायु क्षेत्रों (कम–से–कम जिसपर वायु परिवहन निर्भर करताहै) तथा धरातल के नीचे शैलों एवं खनिजों पर स्थापित करता है।

एल० के०डी० क्रिस्टोफ (1959) के अनुसार – 'सीमाएं ऐसे क्षेत्र और जन समुदाय को एक साथ आबाद करती हैं जो एक सम्प्रभुता सम्पन्न सरकार एवं विधि के अधीन होता है और जो प्रशासनिक व आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि एक राज्य–संकल्पना एवं धर्म का एकीकृत भी होता है।

जी एन० जे० जी0 पाउण्ड्स (1965) के अनुसार ' सीमाएं एक राज्य की प्रभुसत्ता को उसने पड़ोसियों से विलग कराती है।

ए०ई० मूडी (1965) के अनुसार – 'एक सीमारेखा उस क्षेत्र को निर्धारित करती है जिसके अन्तर्गत राज्य का आन्तरिक संगठन विकसित होता है और इसी के सहारे विभिन्न राज्य प्रणालियाँ अथवा संगठन एक–दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। इसीलिए यह भौगोलिक तथ्य न होकर राजनीतिक तथ्य है, एवं इसका पृथक्कारी कार्य सामान्यतः पड़ोसी राज्यों के मध्य सम्बन्धों के अन्तर व समानता की मात्रा पर निर्भर करता है।

एच० जे० डी ब्लिज (1966) के अनुसार – 'सीमाएं मानचित्र पर एक पतली रेखा के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं जो राज्य की प्रभुसत्ता की सीमा को निर्धारित करती है।

जे० एन्सेल (1968) के अनुसार –'एक सीमा एक राजनीतिक समदाब रेखा है जो दो दबावों के मध्य क्षणिक संतुलन को इंगित करती है।

आर० ई० नोटिस एवं एक०एल० हेरिंग' (1980) के अनुसारः– राष्ट्रीय सीमाएं अदृश्य रेखाएं है जो राज्यों को चारों ओर से आवृत करती है, फिर भी ये राजनीतिक मानचित्र पर सर्वाधिक दृश्य तत्व के रूप में होती है। वे एक राज्य को सीमांकित कर इसे आकृति प्रदान करती हैं और पहचान योग्य बनाती है।

सारांशतः सीमाएं स्वरूप से अदृश्य, मानव द्वारा पारस्परिक समझौतों पर आधारित ऐसी रेखाएं है जो एक राज्य क्षेत्र की बाहरी सीमा को निर्धारित करती है। इन सीमाओं के अन्तर्गत आने वाले राज्य क्षेत्र व जनसमुदाय एक सम्प्रभुता सम्पन्न सरकार के अधीन होता है। इस पर सीमाएँ संवैधानिक तत्व है।

5.9 सीमाओं की अवधारणा (Boundary Concept)

राजनीतिक भूगोल में प्रचलित सीमा सम्बन्धी अवधारणाएँ वास्तव में भौगोलिक तथा ऐतिहासिक वातावरण से सम्बन्धित हैं। इनकी प्रकृति, चरित्र तथा कार्य में निरंतर परिवर्तन होते रहे हैं। इनका अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि सीमाओं की अवधारणा राज्यों की विकास प्रक्रिया से सम्बन्धित है, इसलिए राज्यों के समान ही विकास की प्रारंभिक अवधारणा से लेकर वर्तमान अवस्था तक सीमाएं भी कई रूपों में परिवर्तित होती हुई विकसित हुई है। संक्षिप्त रूप में प्रमुख सीमा अवधारणाओं का विवरण निम्नवत् है – .

1. **आदिम अवधारणा (Tribal Concept)** :– सीमा सम्बन्धी यह प्राचीन अवधारणा मानव–रहित भूमि पर केन्द्रित थी। मानवरहित भूमि सामान्यतया एक जनजातीय क्षेत्र को दूसरे जनजातीय क्षेत्र से अलग करती थी। तब रेंखाये उतनी महत्वपूर्ण नहीं थीं, जितनी कि भौगोलिक स्थितियाँ। एस०वी० जोन्स (1959) के अनुसार – 'मानव रहित भूमि सीमान्त अथवा सीमा प्रान्त था, जो दावा विहीन, अअधिवासित तथा अप्रयुक्त क्षेत्र होता था जिसमें दोनो तरफ के लोग प्रवेश कर सकते थे, परन्तु अपना क्षेत्रीय दावा नहीं कर सकते थे।

2. **चीनी सीमा अवधारणा (Chinese Boundary Concept)**: एशिया में चीन की सीमा सम्बन्धी अवधारणा एक स्थिर तथा निष्चित सीमान्त को प्रकट करती है। चीनी मान्यता थी कि उनके क्षेत्र के चारों तरफ असभ्य जातियों का क्षेत्र है। उन असभ्य जातियों के क्षेत्र से अपने को अलग करने के लिए वे अपने सीमान्तों की किले बन्दी करते थे। किलेबन्दी करने के लिए वे प्राचीरों का निर्माण करते थे। चीन की विशाल दीवार इसका बेहतरीन उदाहरण हैं।

5. **रोमन सीमा अवधारणा (Roman Boundary Concept)**:– चीन की तरह रोमन भी अपने और आदिम असम जातियों के बीच निश्चित सीमाएं चाहते थे। प्रारम्भिक ऑवल – सैक्सोन प्राचीर का निर्माण अपने शासित प्रदेशों में अभिकरण भी सुरक्षा के लिए ही उन्होंने किया था। वे केवल प्राचीर निर्माता ही नहीं थे, बल्कि अपने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु सीमान्त क्षेत्र में उन्होंने अनेक सुरक्षात्मक उपाय (खाइयाँ खोदना, अवरोधकों का निर्माण) कर रखे थे। ऐसी किले बन्दी को वे लाइम्स (Limes) कहते थे।

4. **मध्य युगीन यूरोपीय सीमा अवधारणा (Medieval European Boun& dary Concept)** – मध्य युगीन यूरोप सामन्ती प्रथा का युग था जिसमें सामन्ती राजाओं को यह पता नहीं रहता था कि उनका राज्य कैसे बना? कितना बड़ा है? और उसकी सीमाएं कहाँ तक हैं ? वास्तव में सामन्ती प्रथा के राजनीतिक भूगोल का मुख्यतत्व पैबंदकारी (Patch wask.) राजनीतिक मानचित्र था। इस सामन्ती संरचना में सीमा निर्धारण में नदी सीमाओं का अधिक प्रयोग किया गया था।

5. **फ्रांसीसी सीमा अवधारणा (french Boundary Concept)**:– फ्रांसीसी बीमा अवधारणा प्राकृतिक स्वरूपों पर आधारित थी। **पाउण्ड्स (1951) के अनुसार– 'प्राकृतिक सीमा सम्बन्धी अवधारणा का विकास सबसे पहले फ्रांसीसी दार्शनिकों ने उस समय किया जब फ्रांस में तर्क–वितर्क का युग था।'** जब फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण सामन्तवाद का अंत हुआ, उसके बाद प्राकृतिक सीमा सम्बन्धी अवधारणा अधिक प्रबल हुई। वास्तव में प्राकृतिक सीमा अवधारणा फ्रांसीसी क्रान्ति की एक प्रबल अभिव्यक्ति थी।

6. **जर्मन राष्ट्रीय सीमा अवधारणा (German Nationality Boundary Concept)**: – जर्मनी की राष्ट्रीय सीमा अवधारणा समसामयिक विश्व अर्थव्यवस्था के मूल क्षेत्र तथा परिधीय क्षेत्र की राष्ट्रीय राजनीति की विशिष्ट स्थिति को प्रगट करती है। इसी के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी में सीमा के साम्राज्यवादी सिद्धान्त का जन्म हुआ। सीमा के साम्राज्यवादी सिद्धान्त की परम्परा को स्थापित करने का श्रेय फ्रेड्रिक रैटजेल और उनके अनुवर्ती राजनीतिक भूगोलविदों को है।

7. **सीमा की संविदात्मक अवधारणा**–सीमा भी संविदात्मक अवधारणा उस सीमा सिद्धान्त को कहते हैं जिसमें राज्य आपस में सीमा के लिए किसी रेखा पर समझौता कर लें तथा उस रेखा की अखण्डता स्वीकार करें। यह अवधारणा वृहत् रूप में अमेरिकी राज्यों की उपज थी।.

8. **सीमा की ज्यामितीय अवधारणा (Geometrical Boundary Concept)**: सीमा सम्बन्धी इस अवधारणा को विकसित करने का श्रेय यूरोपीय औपनिवेषिक शक्तियों को जाता है। इस अवधारणा का मुख्य उद्देश्य शक्ति संतुलन कायम रखना तथा समकालीन क्षेत्रीय विभाजन था। इसमें प्राकृतिक धरातलीय स्वरूपों एवं सांस्कृतिक भूदृष्यों को कोई महत्व नहीं दिया जाता है, केवल अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं पर आधारित ज्यामितीय रेखाएं होती है। ऐसी सीमाएं अफ्रीका महाद्वीप में काफी देखने को मिलती है।

9. **शक्ति–राजनीतिक सीमा अवधारणा (Power-Politico Boundary Concept)** :– सीमा निर्धारिण की यह अवधारणा कमजोर के ऊपर शक्तिशाली के प्रसार को प्रतिबिम्बित करती है। इसका विकास अमेरिका और जर्मनी में अलग–अलग सन्दर्भों में हुआ। अमेरिकी राज्यों का पश्चिमवर्ती विस्तार कमजोर मूल निवासियों की कीमत पर हुआ, जब जर्मनी में यह अन्तर–युद्ध कालीन भू–राजनीतिकी देन थी। वस्तुतः यह अवधारणा कमजोर सीमान्त पर शक्ति के राजनीतिक प्रभुत्व को दर्शाती है।

एस0बी0जोन्स (1959) ने भी सीमा अवधारणा के छः विभिन्न प्रकारों की पहचान की है– **1.** प्राकृतिक **2.** राष्ट्रीय **5.** साम्राज्यवादी **4.** संविदात्मक **5.** ज्यामितीय तथा **6.** शक्ति राजनीतिक।

इन सभी सीमा अवधारणाओं के विवेचन से स्प"ट है कि अपने प्रारम्भिक स्वरूप में सीमाओं का निर्धारण क्षेत्रीय था, जो वर्तमान में आने–आते सूक्ष्मता एवं रेखात्मक हो गया है। सीमा निर्धारण में थोड़ा सभी व्यतिक्रम अनेक विवादों 'को जन्म दे देता है। इसीलिए वर्तमान में राज्यों के मध्य जितनी भी सीमाएं गठित या पुनर्गठित हो रही है उनमें राष्ट्रीयता और उससे सम्बन्धित सांस्कृतिक भूदृश्य ही प्रमुख आधार बनाए जा रहे हैं।

5.10 सीमाओं का विकास (Development of Boundaries):–

सीमाओं के वैश्विक प्रारूप को देखने से स्प"ट होता है कि सीमाओं का विकास तीन प्रक्रियाओं से होता है :–

(1) स्वेच्छाचारी प्रक्रिया– इसके अन्तर्गत सीमाओं का निर्धारण समझौतों की अपेक्षा प्रशासनिक सुविधाओं को ध्यान में रखकर किया जाता था। यह औपनिवेशिक स्वार्थपरायणता को अभिव्यक्त करता है।

(2) विकासवादी प्रक्रिया – सीमा निर्धारण की विकासवादी प्रक्रिया तीन अवस्थाओं से होकर गुजरती है –

(अ) समझौता वार्ता,

(ब) भौगोलिक निर्देशांको की पहचान एवं उनका वास्तविक मानचित्रण

(स) शुद्धतापूर्वक धरातल पर संरेखण

(3) पंचाट प्रक्रिया :– सीमाओं के विकास की इस प्रक्रिया में सीमाओं का निर्धारण पंच निर्णयों द्वारा होता है, तथा वह सम्बद्ध पक्षों द्वारा मान्य होता है।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कच्छ के रण में भारत–पाक सीमा के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी भारत–पाकिस्तान सीमाओं का विकास कहीं स्वेच्छाचारी प्रक्रिया, कहीं विकासवादी प्रक्रिया तथा कहीं पंचाट निर्णयों का परिणाम है।

5.11 सीमाओं का वर्गीकरण (Classification of Boundaries):–

वर्तमान राजनीतिक भूगोल के अन्तरर्राष्ट्रीय परिदृश्य में सीमाओं का वर्गीकरण दो भिन्न मापदण्डों पर आधारित है।

1. **आकारकीय मापदण्ड**– जिनका आधार राजनीतिक भूगोल के आकृति मूलक आगम है। इस आधार पर किए गए सीमा वर्गीकरण को 'आकृति मूलक वर्गीकरण' कहते हैं।
2. **कार्यात्मक मापदण्ड**– जिनका आधार सीमा और सांस्कृतिक भूदृश्यों का पारस्परिक संबंध है। इस आधार पर किए गए सीमा वर्गीकरण को 'आनुवंशिक' या वर्गीकरण कहते हैं।

5.11.1 सीमाओं का आकृति मूलक वर्गीकरण (Morphological Classification) :–

सीमाओं के इस वर्गीकरण में निम्नलिखित चार प्रकार की सीमाएं सम्मिलित हैं:–

(i) प्राकृतिक भूदृश्यों के आधार पर खींची गई सीमाएं, अर्थात् 'भू–आकृतिक सीमाएं;

(ii) जातीय तत्वों के आधार पर खींची गई सीमाएं, अर्थात् 'मानव–भौगोलिक सीमाएं;

(iii) ज्यामितीय आधार पर खींची गई सीमाएं, अर्थात् ज्यामितीय सीमाएं; एवं

(iv) अनेक कारकों के सम्मिलित योगदान से खींची गई सीमाएं अर्थात् 'संश्लिष्ट सीमाएं।

(1) भू–आकृतिक सीमाएं (Physiographic Boundaries) – धरातल पर प्रसारित प्राकृतिक में भू–आकृतियाँ मूलरूप से सुस्पष्ट आकृति वाली स्थाई आकृतियां होती है, जिन्हें धरातल के साथ–साथ मानचित्र भी आसानी से पहचाना जा सकता है, उनका मापन किया जा सकता है और मान्यता प्रदान की जा सकती है। प्राकृतिक भू–आकृतियों की भौगोलिक अवस्थिति भी सामरिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण होती है। अपने प्रतिरक्षात्मक गुण के कारण ये प्राकृतिक अवरोध प्रदान कर मानव गतिशीलता को रोकने में सहायक हो सकती हैं। इसी दृष्टिकोण से प्राकृतिक स्थल रूपों, जैसे पहाड़ियों एवं पर्वत–श्रेणियों, नदी–नालों एवं झीलों, मरूस्थलों, दलदलों एवं घने जंगलों आदि को सीमाओं के गठन हेतु स्वीकार किया गया। ये वास्तव में प्रकृति प्रदत्त सीमाएं हैं जिन्हें विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग नाम दिए हैं, जैसे रिचर्ड हार्टशोर्न ने इन्हें **Naturally Marked Boundaries** (प्राकृतिक आधार पर अंकित सीमाएं) माना है। ब्रिटिश विद्वान फासेट (**fawcelt**) ने इन्हें '**Natural Barrier Boundaries**' (प्राकृतिक रोधक सीमाएँ) कहा है, लेप्राडेला (**Lepradell**) ने इन्हें '**Derived Artificial Boundaries** (व्युत्पन्न कृत्रिम (सीमाएं) की संज्ञा दी है, तथा जर्मन विहान बीमा **(Seizer)** ने उन्हें **'Boundaries borrowed from Nature'** (प्रकृति से ग्रहीन सीमाएँ) के रूप में स्वीकार किया है। भू–आकृतिक सीमाओं के चार उपभेद हैं–

(अ) पर्वतीय सीमा **(ब)** नदी सीमा, (स) झील सीमा, **(द)** जंगल, दलदल तथा मरूस्थलीय सीमाएं

(अ) पर्वतीय सीमा (Mountain Boundary):– कोई भी पर्वतीय प्रदेश एक विस्तृत क्षेत्र की समर्िट का परिचायक होता है जिसमें लम्बाई के साथ–साथ पर्याप्त चौड़ाईवाला विस्तृत क्षेत्र भी शामिल होता है। उपान्तीय आर्थिक महत्व वाले ये पर्वतीय प्रदेश प्रायः जन शून्य नहीं होते और पड़ोसी राजनीतिक इकाइयों के मध्य सुरक्षात्मक अवरोध के रूप में विद्यमान रहते हैं। इन पर्वतीय प्रदेशो में प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण सर्वोच्च पर्वतशिखरों को मिलाने वाली सीधी रेखा के आधार पर, जल विभाजक रेखाओं के आधार

पर एवं पर्वतश्रेणियों की तलहटी रेखा के आधार पर किया जाना है। अपनी अगम्यता एवं जटिल संरचना के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में सीमांकन का कार्य काफी कठिन एवं कष्टसाध्य होता है। अनवरत अपरदन के कारण जल विभाजकों की स्थिति परिवर्तनशील होती है, इसलिए कभी–कभी जल विभाजकों के आधार पर निर्धारित सीमाएँ दोनों राजनीतिक इकाइयों के मध्य सीमा–विवाद का कारण बन जाती है। प्रायः यह देखा गया है कि अगम्य पर्वतीय क्षेत्रों में पर्वतीय सीमा धरातल क्षेत्र के पूर्ण अध्ययन के बिना सीमांकित कर दी जाती है जो आगे जाकर भविष्य में विवाद का कारण बनती है। थॉमस होल्डिच (192) ने ऐसी पर्वतीय सीमाओं को '**Enveloped a cloud of conjecture**' अर्थात् अनुमान के बादल में लपेटी हुई' सीमा की संज्ञा दी है। फिर भी होल्डिच ने पर्वतीय सीमायों को ''**the most lasting the mast unmistakable and the most efficient as a barrier**' अर्थात् सर्वाधिक स्थाई सीमा की संज्ञा दी है। फ्रांस–स्पेन के मध्य 'पिरेनीज पर्वत श्रेणी के सहारे स्थित पर्वतीय सीमा रेखा ऐसी सर्वाधिक स्थाई सीमा का बेहतरीन उदाहरण है, **(चित्र संख्या– 5.1)** जबकि पूर्वी हिमालय क्षेत्र में ब्रिटिष भारत तथा तिब्बत (जिसे बाद में चीन ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत अधिग्रहीत कर लिया) के बीच 'मैक मोहन रेखा' **(Mac Mahon Line)** जो 1913 में ग्रेट ब्रिटेन, तिब्बत एवं चीन द्वारा हस्ताक्षरित एक समझौते के द्वारा मान्यता प्राप्त है, आज भारत और चीन के बीच एक लम्बे अर्से से विवाद का विषय बनी हुई है।

(ब) नदी सीमा (River Boundary) :– नदियाँ भूदृश्य का स्थाई अंग है। पर्वतों एवं पहाड़ियों की अपेक्षा काफी संकीर्ण तथा लम्बवत् आकृतिक इकाइयों के रूप में घरातल पर प्रवाहित होती हैं। अपनी सैनिक तथा सामरिक सुविधाओं के साथ–साथ भूदृश्य के निरंतर तथा स्थाई आकृति के रूप में नदियाँ संरक्षित अवरोधक एवं पृथक्करण का कार्य करती है। मानचित्रों पर भी इनका सुस्पष्ट अंकन किया जा सकता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण नदियाँ अन्तरर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक राज्यों के मध्य सीमांकन का आधार रही है। नदियों के सहारे सीमाओं का निधारण मुख्यतः तीन प्रकार से होता है :– **(i)** नदी के दोनों किनारों से समान दूरी पर अवस्थित रेखा अर्थात् माध्यिका रेखा के सहारे, **(ii)** नौकागम्य चैनल का मध्य मार्ग अथवा घाटी रेखा (**Thalweg**) के सहारे (**iii**) नदी के किसी एक किनारे के सहारे। नदी सीमा निर्धारण भी इन तीनों अवस्थाओं में व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती है। उदाहरण के लिए माध्यिका रेखा नदी तल को दो बराबर भागों में बाँटती है, न कि नदी जल के आयतन को। परिवहन योग्य नदी का मध्य भाग सर्पिल होने के कारण परिवर्तित होता रहता है और माध्यिका रेखा को कई बार काटता है। एक तट के सहारे भी सीमा रेखा व्यवहारिक नहीं, कारण कि इसके जल का उपयोग एक ओर सीमित हो जाता है। अगर नदी में एक विस्तृत बाढ़ का मैदान हो जल का आयतन परिवर्तनशील हो, नदी आकार सर्पिल हो, हर आने वाली बाढ़ के बाद उसके प्रवाह मार्ग में परिवर्तन की संभावना हो, तो उनके आधार पर खींची गई सीमाएं अत्यधिक परिवर्तनशील एवं अस्थिर होती हैं और विवादों को जन्म देती हैं।

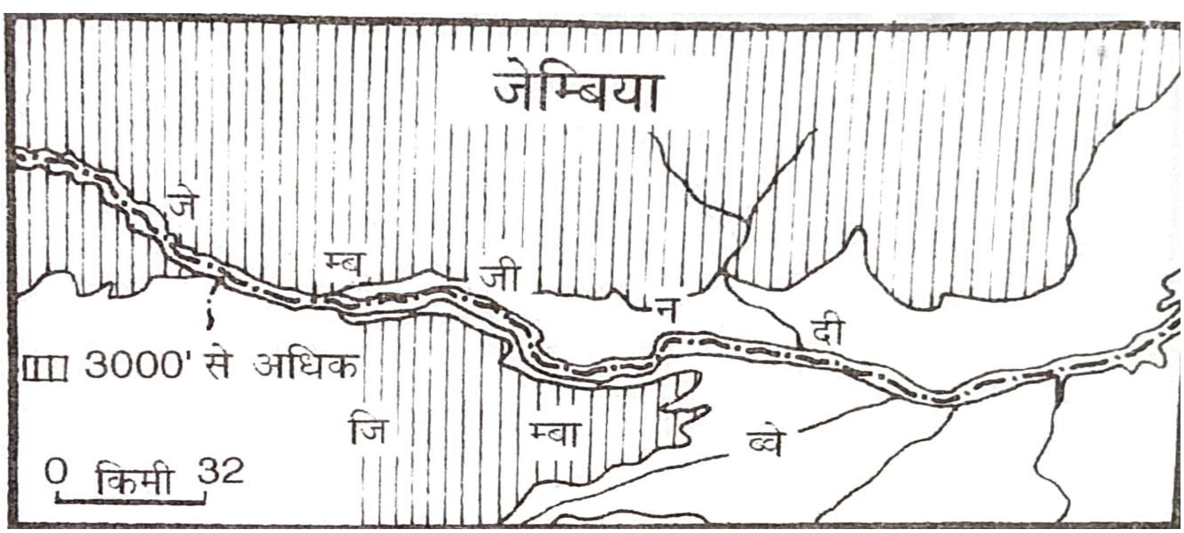

उपरोक्त तमाम अवगुणों के बावजूद भी नदियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सीमाओं के रूप में विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए पराना नदी पराग्वे व अर्जेन्टाइना के मध्य सीमा रेखा बनाती है। जाम्बिया एवं जिम्बाबवे

के मध्य जेम्बजी नदी सीमा बनाती है। (**चित्र संख्या– 5.2**) सतलुज नदी भारत व पाकिस्तान के मध्य सीमा बनाती है। मेक्सिको व स०रा० अमेरिका के बीच रियोग्रेन्डे नदी सीमा बनाती है। इसी तरह यूरोप में राइन नदी फ्रांस और जर्मनी के बीच सीमा रेखा का निर्धारण करती है। इस तरह से देखा जाय तो विश्व के लगभग सभी महाद्वीपों पर नदियों का अस्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के रूप में विद्यमान है। लेकिन इनकी स्वीकार्यता ज्यादा संतोष प्रद नहीं है। वर्तमान में बढ़ते आर्थिक विकास के कारण नदी बेसिन भी अब कार्यात्मक इकाई के रूप में विकसित हो गये हैं, परिणाम स्वरूप नदी सीमाओं के सहारे दोनो पड़ोसी राज्यों के मध्य विवाद बढ़े हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के नजदीक नदियों पर बनाए गए बड़े–बड़े कृत्रिम जलाशयों ने इन विवादों में और वृद्धि कर दी है। यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नदियों का स्वरूप किसी भी राज्य व समाज के लिए 'संयुक्त 'का रहा है, न कि विभक्तक का, जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के रूप में स्वीकार किए जाने पर उसका स्वरूप हो जाता है।

(स) झील सीमा (Lake Boundary):– नदियों के समान ही अन्तरर्राष्ट्रीय सीमाएं झीलों से होकर भी गुजरती है। झीलों के जल स्तर लगभग समान रहने और किनारों पर भौगोलिक परिवर्तनों के न होने से झील सीमाएँ नदियों की तुलना में अधिक स्थिर होती हैं। झीलों के सीमा निर्धारण में भी मध्य रेखा सिद्धान्त को आधार माना जाता है। लेकिन मध्य रेखा की इस अवधारणा में भी अनेक प्रश्न खड़े होते हैं, जैसे – क्या मध्य रेखा झील को दो बराबर भागों में बाँटती है? या मध्य रेखा हर बिन्दु पर दोनों तटों से समान दूरी पर है ? ऐसे अनेक प्रश्नों का समाधान दोनो सम्बन्धित राज्यों के मध्य द्विपक्षीय वार्ताओं द्वारा करके झीलों को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा का स्वरूप दिया जाता है। दोनो राज्यों के मध्य अच्छे राजनीतिक सम्बन्ध होने से झील सीमाएं प्रायः विवाद का कारण नहीं बनती जैसा कि संयुक्त रा०अमेरिका और कनाडा के मध्य देखा जाता है जहाँ इरी, सुपीरियर, हॅयूरन तथा ओन्टोरियो झीलों से इन दोनों देशों की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं गुजरती है, लेकिन उनके मध्य कोई विवाद नहीं है (**चित्र संख्या– 5.3**) पूर्वी अफ्रीका में समझौतों द्वारा झीलों की सीमा निश्चित की गई है। विक्टोरिया झील का सीमारेखा के रूप में विभाजन यूगाण्डा, कीनिया और टांगानिका में असमान है जो मध्य रेखा पर आधारित नहीं है। यहाँ झील में सीमा रेखाओं को अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओ के आधार पर सुनिश्चित किया गया है।

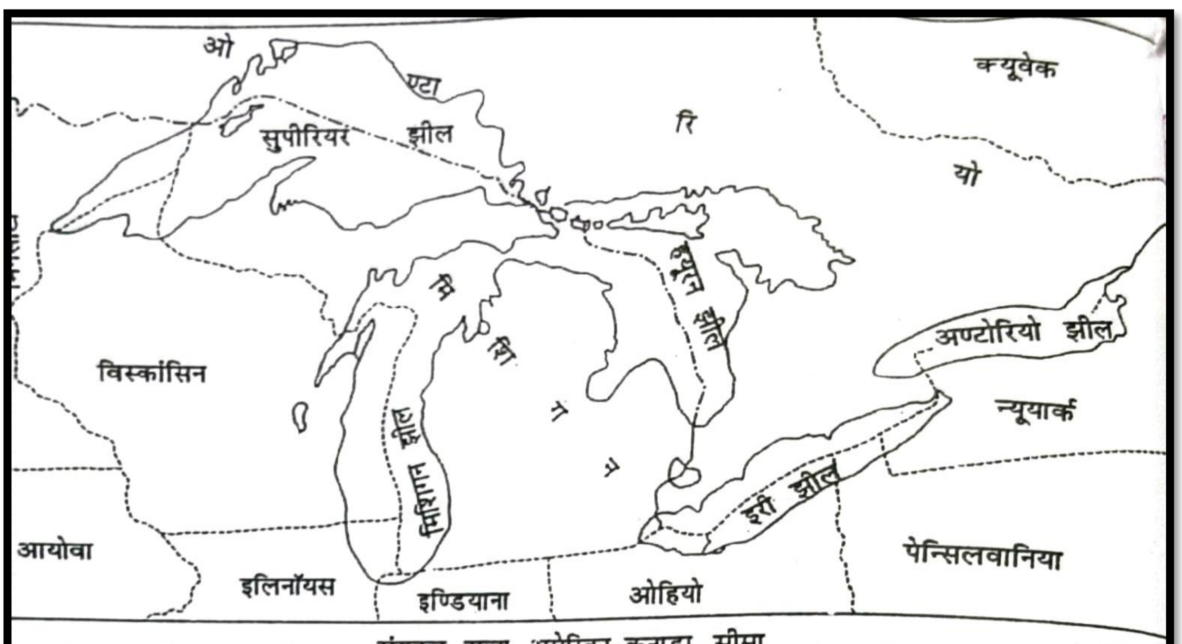

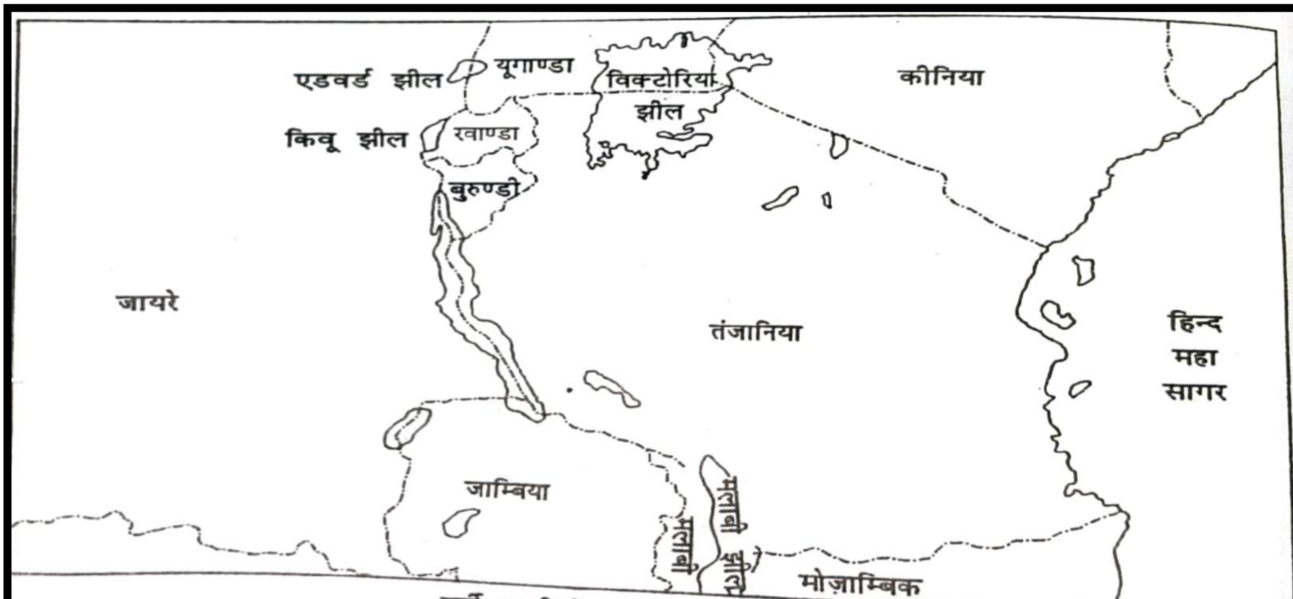

पूर्वी अफ्रीकी सीमाएँ

(द) जंगल, दलदल तथा मरुस्थलीय सीमाएँ (forest, Swamp and Desert Boundaries) :– प्रायः जंगल, दलदल और मरुस्थलों का चयन सीमाओं के गठन के लिए तब किया जाता है, जब कोई दूसरा विकल्प नहीं रहता। अपनी जन विहीनता के कारण और मानव गतिशीलता को बाधित करने के कारण, इनका उपयोग पहले पड़ोसी राज्यों के मध्य सुरक्षात्मक एवं अवरोधक सीमान्तों के रूप में किया जाता था, लेकिन बढ़ते आर्थिक महत्व के का रण अब ये सीमाओं के गठन के लिए प्रयुक्त होने लगे हैं। भारत और पाकिस्तान के मध्य कच्छ कारण (दलदल) अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाता है। इसी तरह से पूर्वी यूरोप के अनेक भागों में जंगल सीमा निर्धारण में प्रयुक्त हुए है''। फिनलैण्ड एवं रूस के मध्य, रूस और लिथुआनिया के मध्य और लिथुआनिया और पोलैंड के मध्य ये जंगल ही अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के निर्धारक है। सहारा का रेगिस्तान भी मानव इतिहास में काफी लम्बे काल से दो विपरीत संस्कृतियों (विशिष्ट अफ्रीकी संस्कृति एवं यूरोपीय प्रभाव युक्त भूमध्य सागरीय संस्कृति) के विभाजन की भूमिका निभाता चला आ रहा है।

(2) मानव– भौगोलिक सीमाएं (Anthropogeographic Boundaries): – मानव–भौगोलिक सीमा का तात्पर्य उस सीमा से है जिसका निर्धारण जाति, भाषा, धर्म अथवा सांस्कृतिक वैभिन्य के आधार पर किया गया हो। इन सीमाओं के गठन का उद्देश्य क्षेत्रीय संगठन में एकरूपता लाना तथा राष्ट्रीय समुदायों के भौगोलिक राजनीतिक अभिव्यक्ति को वैधानिक स्वरूप प्रदान करना होता है। सैद्धांतिक रूप से इन सीमाओं का निर्धारण आसान होता है, लेकिन धरातल पर इनका अंकन बेहद कठिन होता है। कारण कि प्रजातीय या भाषाई समूह एकदम से एक–दूसरे से अलग नहीं होते, बल्कि दो समूहों के मध्य एक संक्रमण क्षेत्र होता है और इसी संक्रमण क्षेत्र में सीमांकन होता है। परिणाम स्वरूप दोनों ओर जनसंख्या का स्थानांतरण होता है, जैसा की 1947 पर धर्म के आधार पर किये गए भारत–पाकिस्तान विभाजन के बाद हुआ था। अधिकांश मामलों में ऐसी सीमाओं के गठन से अल्प संख्यकों की समस्या उठ खड़ी होती है। सन् 1948 में इजरायत और उसने पड़ोसी अरब देशों के साथ सीमा निर्धारण धर्म के आधार पर किया गया था। वहाँ आज भी यहूदियों और फिलिस्तीनी मुस्लिम समुदाय के बीच संघर्ष की स्थिति बनी हुई है।

(3) ज्यामितीय सीमाएँ (Geometrical Boundaries) :– ज्यामितीय सीमा से तात्पर्य उस सीमा रेखा से है जिसका निर्धारण दो बिन्दुओं के मध्य न्यूनतम दूरी को मिलाने वाली सीधी या ऋजु रेखा के रूप में होता है। या अक्षांश रेखाओ के सहारे पूर्व–पश्चिम दिशा में होता है, या देशान्तर रेखाओं के सहारे उत्तर–दक्षिण दिशा में होता है, या फिर जिनका निर्धारण वृत्तों के चापों के सहारे होता है। वृत्तों के ये चाप किसी माने हुए केन्द्र बिन्दु से कम्पास की सहायता से खींचे जाते हैं। इसे चापाकार सीमा रेखा कहते हैं। ऐसी विभिन्न स्वरूप वाली ज्यामितीय सीमाएं विश्व के अनेक राज्यों के मध्य निर्धारित की गई है (**चित्र संख्या– 5.5 एवं 5.6**)। मेक्सिको

तथा स०रा० अमेरिका के मध्य की सीमा ऋजु (सीधी) रेखीय ज्यामितीय सीमा का बेहतर उदाहरण है। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के मध्य लगभग 250 किमी0 की लम्बाई में 49° उत्तरी अक्षांश के सहारे निर्धारित सीमा अक्षांशीय ज्यामितीय सीमा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। देशान्तर रेखा के सहारे निर्धारित सीमा का श्रेष्ठ उदाहरण अलास्का तथा कनाडा के मध्य 141° प० देशान्तर है। प० अफ्रीका में गैम्बिया की सीमा चापाकार ज्यामितीय सीमा के वर्ग में आती है।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि ज्यामितीय सीमाएँ न तो भौतिक तथ्यों पर आधारित होती हैं और न ही मानवीय तथ्यों पर वास्तव में धरातल पर अंकित ये ज्यामितीय सीमाएं विभिन्न राज्यों के प्रभाव क्षेत्र को विभाजित करने वाली सीमा रेखाओं के रूप में अस्तित्व में रही है। मूलतः ये साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशिक युग की देन है। मूडी के अनुसार

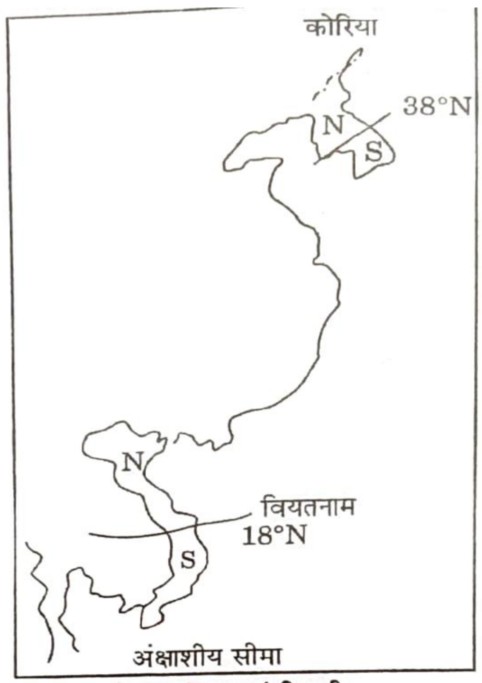

चित्र 3.5 : अक्षांशीय सीमा

चित्र 3. 6: ज्यामितीय सीमा रेखाएँ

यूरोप जैसे क्षेत्र में ऐसी सीमाएँ संतोषजनक विकल्प नही हो सकती।

(4) संश्लिष्ट सीमाएँ (Complex Boundaries) :— वे सीमाएं जिनके निर्धारण में भू—आकृतिक, मानव—भौगोलिक एवं ज्यामितीय जैसे अनेक कारकों का योगदान होता है, उन्हें (संश्लिष्ट अथवा मिश्रित सीमा कहा जाता है। एच०डी० ब्लिज (1970) नें ऐसी सीमाओं को **(Intermediate Boundaries)** की संज्ञा दी है। इस प्रकार की सीमाएँ अमेजन घाटी में ब्राजील के समीपवर्ती देशों के मध्य तथा ट्यूनीशिया, अल्जीरिया के मध्य दृष्टिगोचर होती है।

5.11.2 सीमाओं का आनुवंशिक या कार्यात्मक वर्गीकरण (Genetic or fanctional Classification of Boundaries) :—

रिचर्ड हार्टशोन ने 1956 में एसोसिएन ऑफ अमेरिकन ज्योग्रा फार्म के तत्वावधान में प्रस्तुत किए गए अपने प्रपत्र **'Suggestions on the Term-inology of Political Boundaries'** (राजनीतिक सीमाओं के 'ब्दावली संबंधी सुझाव) में सीमांकन के समय सीमा तथा सांस्कृतिक भूदृश्य के मध्य सम्बन्धों के आधार पर यह वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। भौतिक भूगोल के नदी प्रणाली के विकास के आधार पर इन सीमाओं का नामकरण किया गया है। वर्गीकरण की इस योजना के अन्तर्गत सीमाओं को निम्नलिखित 4 वर्गों में विभाजित किया गया है। (**चित्र संख्या—5.7**)

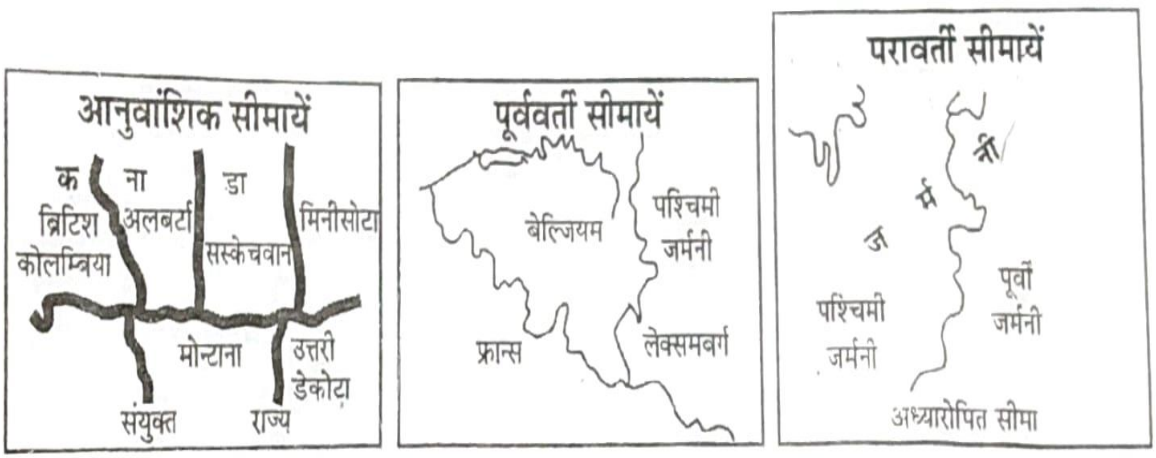

चित्र 3.7 : अध्यारोपित सीमा

(i) **पूर्ववर्ती सीमाएँ (Antecedent Boundaries):-** धरातल पर सांस्कृतिक प्रारूपों के विकास से पूर्व निर्धारित तथा गठित की गई सीमाएं पूर्ववर्ती सीमाएं' कहलाती हैं। प्रतिद्धन्दी औपनिवेशिक शक्तियों के मध्य पारस्परिक सहमति, वार्तालाप एवं समझौते के आधार पर प्रायः निर्जन क्षेत्रों में गठित की गई। ये सीमाएं प्रारंभ से ही स्थिर, शान्त एवं सफल रही है। पूर्ववर्ती सीमा का सर्वोत्तम उदाहरण स०रा० अमेरिका एवं कनाडा की सीमा है जिसका निर्धारण 1818 एवं 1846 के समझौते के आधार पर किया गया था।

(ii) **परवर्ती सीमाएं (Subsequent Boundaries)**:—सांस्कृतिक भूमध्यों के सभी मुख्य तथा गौण तत्वों के विकास के पश्चात अस्तित्व में आने वाली सीमाएं जो अनेक बार भाषा, धर्म, प्रजाति तथा संस्कृति के आधार पर गठित होती हैं परवर्ती सीमाएँ कहलाती हैं। ये सीमाएं मुख्य सांस्कृतिक प्रदेश के भौगोलिक विभाजनों से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार की अनेक सीमाएं यूरोप में है जो भाषाई पृथकता को स्पष्ट करती है। भारत—पाकिस्तान की सीमा एक परवर्ती सीमा ही है। राष्ट्रीय राज्यों के उदय के बाद परवर्ती सीमाओं प्रचलन बढ़ा है। डी ब्लिज के अनुसार 'यह आवश्यक नहीं कि सभी परवर्ती सीमाओं तथा सांस्कृतिक प्रारूपों में सामंजस्य पाया जाय। स्विट्जरलैंड इसका उदाहरण है।

(iii) **अध्यारोपित सीमाएं (Superimposed Boundaries)**:— परवर्ती सीमा के समान ही अध्यारोपित सीमाओं का विकास भी सॉस्कृतिक भूदृश्यों के पूर्ण विकास के बाद ही होता है। ये सीमाएं सांस्कृतिक वातावरण से

समता न रखते हुए उन पर आरोपित होती है, तथा एक ही जाति, भाषा, धर्म के लोगों को विभाजित करती है। धाना, तोगोलैंड, नाइजीरिया, सोमाली गणराज्य, के मरून, कांगों, अंगोला आदि की सीमा एक ही समुदाय के लोगों को विभाजित करती है। अध्यारोपित सीमा में युद्ध विराम रेखा (**Truce Line**) भी सम्मिलित की जाती है।

(i v) **अवशिष्ट सीमाएं (Rekict Boundaries)** :– अवशिष्ट सीमाओं से तात्पर्य उन सीमाओं से है, जो वर्तमान में अपना राजनीतिक महत्व खो चुकी है, लेकिन सांस्कृतिक वातावरण में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। इन सीमाओं को खण्डहर, प्रासाद, स्थान नाम भवनों के वास्तुशिल्प, सांस्कृतिक अवशेष आदि के आधार पर पहचाना जा सकता है। बालून प्रायद्वीप में टर्की की वास्तुकला का प्रमाण प्राचीन सीमा को दर्शाता है।

5.11.3 जे०डी०नीस्टेन (1966) का सीमा वर्गीकरण :–

जॉन नीस्टेन ने 1966 में अपनी पुस्तक **'Boundary Shapes and Boundary Problems'** में सीमाओं का एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस वर्गीकरण का आधार उन्होंने क्षेत्र के कार्यकलापों पर सीमाओं का प्रभाव माना है। इस आधार पर सीमाओं के तीन उपविभाग उन्होंने निर्धारित किए हैं–

(i) **अवशोषी सीमाएं (Absorbing Boundaries)**:– ये वे सीमाएं है जो शक्तियों का शोषण करने की प्रवृत्ति रखती है। ये कम कार्य की सीमाएं होती हैं।

(ii) **परावर्ती सीमाएँ** (**Reflecting Boundaries**):– ये क्षेत्र में पुनः क्रियाशीलता लाने वाली सीमाएं होती हैं जिनकी शक्ति की मात्रा में दिशा बदलने पर भी कमी नहीं आती।

(iii) प्रवेश्य सीमाएं (**Permeable Boundaries**):– ये वे सीमाएं होती है जिन तक शक्ति का कोई अंश उस तक छनकर अथवा प्रच्छन्न पद्धति से पहुंचता है।

5.11:4 एच० डब्ल्यू० वीगटे का सीमा वर्गकिरण : इनके अनुसार सीमाएं के तीन उपविभाग है–

(i) **तथ्येन मान्यता अर्थात् डी फेक्टो (de facto) सीमाएँ**:– ये वे सीमाएं होती है जो किसी एक राज्य द्वारा मान्य नहीं होतीं, जैसे भारत–चीन सीम।

(ii) **कानूनी अधिकार वाली सीमाएं अर्थात डी ज्योर (de jure) सीमाएँ** :– ये वे सीमाएं होती हैं जो पड़ोसी राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होती है, स०रा0अ0 द्वारा निर्धारित बाल्टिक देशों की सीमाएं।

(ii i) **कल्पित अथवा फिफ्टीशियस (Ficticious) सीमाएँ** :– ये वे सीमाएं होती है जो मानचित्र पर तो प्रदर्शित की जाती है, किन्तु धरातल पर उनका अस्तित्व नहीं होता, जैसा 1959 की जर्मन पोलैण्ड सीमा।

5.12 सीमाओं के कार्य (functions of Boundaries)

सीमाएं मानचित्र पर अंकित रेखाएं मात्र नहीं है, वरन जब ये धरातल पर दो राज्यों के मध्य अस्तित्व ग्रहण कही हैं तो प्रमुखतः प्रकार के कार्य सम्पादित करती है–

1. **सुरक्षात्मक कार्य (Defence function)** :– सीमा राज्य की परिधि होती है, अतः एक सुरक्षा रेखा के रूप में सीमा का स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। किसी राज्य का अस्तित्व सीमा सुरक्षा पर ही निर्भर होता है और यह तब और आवश्यक हो जाता है, जब पड़ोसी राज्य शत्रुता रखता हो।

2. **अवरोधक कार्य (Barrier Function) :– एन० कार्लसन (1958) अनुसार**– अंतर्राष्ट्रीय सीमा मनुष्यों, वस्तुओं और मशीनों की गति को रोकने में विशाल महासागरों, ऊँचे पर्वतों तथा सर्वाधिक शुष्क मरूस्थल से भी अधिक प्रभावशाली है। सीमा अवरोधक का चरम स्वरूप लौह आवरण (iron curtain) के रूप में मिलता है, जिसमें मानव या वस्तुएं नहीं अपितु मानव विचार भी अप्रवेश्य होते हैं। जैसा कि पूर्व सोवियत संघ ने किया है।

3. **कानूनी कार्य (Legal functions)** :– सीमा किसी राजा की वह परिधि भी है जहाँ तक राज्य के कानून लागू रहते हैं।और उन्हीं कानूनों के अनुसार प्रत्येक नागरिक को राज्य की शासन प्रणाली का अनुपालन करना होता है।

उपरोक्त के अलावा भी सीमाएं निम्नलिखित कार्य सम्पादित करती है–

- सीमाएं पृथक्कारी कारक है तथा इनका प्रभाव विघटनकारी होता है।
- सीमाएं दो या दो से अधिक भिन्न आर्थिक व्यवस्था वाली इकाइयों के सम्पर्क स्थल का कार्य भी करती है।
- **बोगस (Boggs) के अनुसार** – सीमाओं का कार्य नकरात्मक होता है, न कि सकारात्मक।
- **डी ब्लिज के अनुसार** – 'क्षेत्रीय अलंघ्यता के एक चिन्ह् के रूप में सीमाएं आज भी महत्वपूर्ण है।
- **कैस्पर्सन तथा मिंघी के अनुसार** – 'सीमाएं क्षेत्रीय सम्प्रभुता के पृथक्करण का कार्य करती है।
- **एस०बी० जोन्स (1945) के अनुसार** – 'सीमाओं के कार्यों की सूची मानव कार्यो की सूची की ही पुनरावृत्ति है।

5.13. सीमा विवाद (Boundary Disputes) :–

जे०आ०वी० प्रेस्कॉट (1978) ने सीमा विवादों को चार वर्गों में विभक्त किया है –

(1) क्षेत्रीय सीमा विवाद :– वास्तविक आधार के बगैर जब एक राज्य दूसरे राज्य के स्थल अथवा जल भाग पर अपना दावा व्यक्त करता है, तो जो विवाद उत्पन्न होता है, उसे क्षेत्रीय सीमा विवाद कहते हैं। जैसे चीन ने भारत के लद्दाख एवं अरुणांचल प्रदेश पर अपना दावा व्यक्त कर रखा है। भारत–पाकिस्तान के मध्य उत्पन्न सियाचिन विवाद एक क्षेत्रीय सीमा विवाद ही है जो सियाचिन क्षेत्र के सामरिक महत्व के बढ़ने पर उत्पन्न हुआ है।

(2) स्थिति सम्बन्धी विवाद :– जब सीमा की परिभाषा और सीमा के गठन में असंगति रहती है, तब दो राज्यों के मध्य स्थिति सम्बन्धी विवाद उत्पन्न होते हैं। भारत–चीन सीमा विवाद इसी श्रेणी का विवाद है। ऐसी सीमाएं सामान्यतया पूर्ववर्ती होती है जहाँ विवाद का मूलकारण सीमा का सांस्कृतिक भू–दृश्य पर आरोपित होना होता है।

(5) कार्यात्मक सीमा विवाद :– राज्य के राजनीतिक सीमाओं के कार्यों के सम्बन्ध में एक तरफ निर्णय लेने से उत्पन्न विवाद कार्यात्मक सीमा विवाद की श्रेणी में आते हैं। सीमा की दूसरे राज्य के लिए बन्द कर देना भी ऐसे ही विवादों की श्रेणी में आता है, विशेषकर स्थल आवृत राज्यों के लिए।

(4) संसाधन सम्बन्धी विवाद :– पड़ोसी राज्यों के मध्य ऐसे सीमा सम्बन्धी विवाद कई कारणों से उत्पन्न होते हैं, जैसे जलविद्युत उत्पादन एवं सिंचाई हेतु नदी जल बंटवारा (पाकिस्तान– भारत के मध्य सिन्धु नदी जल विवाद), खनिज तेल प्राप्ति (इराक–कुवैत के मध्य (खनिज तेल उत्पादन विवाद) मछली पकड़ने के क्षेत्र को लेकर उत्पन्न विवाद आदि।

सीमा सम्बन्धी विवादों की तीक्ष्णता को रेखांकित करते हुए लार्ड कर्जन ने ठीक ही कहा था– सीमाएं वास्तव में रेजर की धार के समान है जिनपर वर्तमान युद्ध या शांति अथवा ''राष्ट्रों के जीवन और मृत्यु का प्रश्न लटका रहता है।'

5.14 सीमान्त तथा सीमा में अन्तर (Difference between frontier and Boundary) :–

सामान्यतया राजनीतिक विमर्श में ''सीमान्त और सीमा दोनों ही शब्द पर्यायवाची शब्दों के रुप में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु राजनीतिक भूगोल में दोनों का अलग–अलग अर्थों में प्रयोग करना आवश्यक है। कारण कि इनके अर्थों में पर्याप्त भिन्नता है। एल0के0डी0 क्रिस्टोफ (1985: The Nature of frontiers and Boundaries') ए०ई0मूडी (1971: Geography behind Politics) ने सीमान्त एवं सीमा में निम्न अतंर बताए हैं–

सीमान्त (विशेषताएँ)	सीमा (विशेषताएँ)
1. सीमान्त की क्षेत्रीय प्रकृति होती है;	**1.** सीमा की रेखीय प्रकृति होती है;
2. सीमान्त को प्राकृतिक माना जाता है	**2.** सीमाओं को कृत्रिम माना जाता है;

3. सीमान्त एक संयुक्तक तत्व होती है;	**3.** सीमाओं एक विच्छेदक तत्व होती है;
4. सीमान्त की प्रकृति 'Outer Driented होती है;	**4.** सीमा की प्रकृति Inner Oriented' होती है;
5. सीमान्त उपकेन्द्रीय बल का प्रतिनिधित्व करते है;	**5.** सीमा अभिकेन्द्रीय बल की प्रतिनिधि है;
6. सीमान्त प्रदेश प्राकृतिक क्षेत्रीय इकाइयों के बीच संक्रमण (Trasition) के परिचायक है;	**6.** सीमाएं राजनीतिक इकाइयों के बीच अवस्थांतरण का प्रतिनिधित्व करती है;
7. क्षेत्रीय विस्तार होने के कारण सीमान्त में मानवीय साधन भी होते हैं और जनसंख्या भी निवास करती है;	**7.** सीमा मात्र रेखा होने के कारण यहाँ न मानवीय साधन हो सकते हैं और न ही जनसंख्या;
8. सीमावर्ती प्रदेश वास्तविक्ता हैं (रैट्जेल,1897)	**8.** सीमा रेखा उसका संक्षिप्त स्वरूप है (रैट्जेल,1897)
9. सीमान्त खतरे का स्रोत होता है;	**9.** सीमाएं रेजर की धार के समान तीक्ष्ण होती हैं;
10. सीमान्त अतीत की याद दिलाते हैं;	**10.** सीमाएं वर्तमान व्यवस्था की अभिन्न अंग हैं;
11. सीमान्त अपरिवर्तनीय स्थिति के परिचालक थे;	**11.** सीमाएं स्वभाव से ही परिवर्तनशील है;
12. सीमान्त न तो वैधानिक संकल्पना और न ही राजनीतिक संकल्पना को प्रकट करती है;	**12.** सीमाएं हमेशा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों से निर्धारित होती हैं;
14. सीमान्त प्राकृतिक हों या मानव–भौगोलिक, इनमें गति नहीं पाई जाती है;	**14.** सीमाएं परिवर्तनशील घटना हैं तथा काफी गति शील होती हैं;
13. सीमान्तों के कार्य में ढीलापन होता है;	**13.** सीमाओं के कार्य में सख्ती होती है।
15. सीमान्त मानव जीवन का जैविक युद्ध क्षेत्र है (हाउशोफर)	**15.** सीमा उस युद्ध क्षेत्र का सिर्फ युद्ध विराम (हाउशोफर)

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सीमान्त तथा सीमा में अर्थ एवं वैशिष्ट्य में भिन्नता होते हुए भी दोनों एक ही विकास प्रक्रिया के दो क्रम बद्ध चरणों के परिचायक है।

अतः जो पहले कभी सीमान्त था, वही आज संकुचित होकर सीमा बन गया है। आज सीमान्त प्रायः अन्तस्थ राज्य की भूमिका में आ गए हैं। जबकि समसामयिक विश्व में सीमाएं सामान्य हो गई है।

5.15 सारांशः–

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि राज्य की संरचना में सीमान्त और सीमाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सीमान्त वास्तव में एक मानव रहित क्षेत्र होता है, जिसकी न तो कोई वैधानिक संकल्पना होती है और न ही कोई राजनीतिक या बौद्धिक संकल्पना होती है। यह मूलतः (एक प्राकृतिक संकल्पना होती है जिसकी भौगोलिक स्थिति दो प्रतिद्वन्दी शक्तियों के विस्तार को संतुलित करती है। इस इकाई के अध्ययन से आपने यह भी ज्ञान प्राप्त किया कि सीमान्त का सीमा में परिवर्तन कोई आकस्मिक घटना नही होती, बल्कि यह परिवर्तन मूलतः क्रमिक विकास का प्रतिफल होता है। सीमान्त की अपेक्षा सीमा एक विभाजक रेखा होती है जो एक राज्य के अधिकार क्षेत्र को दूसरे राज्य के अधिकार क्षेत्र से अलग करती है। निश्चय ही इस इकाई के अध्ययन से आपको

सीमाओं की अवधारणा, विकास, वर्गीकरण और सीमाओं के कार्य आदि जानने में सहायता मिली होगी और यह भी पूर्णतः स्पष्ट हो गया होगा की सीमान्त और सीमा में मूलभूत अन्तर क्या है निःसंदेह सीमा विवादों की प्रकृति के अध्ययन ने इस इकाई को पूर्णता प्रदान की है।

5.16 शब्दसूची

सीमान्त	Frontier	सीमा	Boundary
मानव रहित क्षेत्र	No Man's Land	पैबंदकारी	Patch work
अध्यारोपित	Superinposed	मानव–भौगोलिक	Anthropageographic
तथ्येन मान्यता	Defacto	ज्यामितीय	Geomentriced
अवशोषी	Absorbing	संश्लिष्ट	Complex
प्रवेश्य	Permeable	पूर्ववर्ती	Antecdent
अवरोधक	Barrier	परवर्ती	Subsequent

5.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

स्व मूल्यांकन प्रश्न–

1– सीमा कार्य करती है–

(अ) कानूनी **(ब)** अवरोधक **(स)** सुरक्षात्मक **(द)** उपरोक्त सभी

2. सीमान्त होता है –

(अ) संक्रान्ति प्रदेश **(ब)** अग्र प्रदेश **(स)** मानव रहित क्षेत्र **(द)** उपरोक्त सभी

5. कनाडा व सं०रा0 अमेरिका की सीमा किस अक्षांश के सहारे है?

(अ) 49° उ० अक्षांश **(ब)** 59° उ० अक्षांश **(स)** २.° उ० अक्षांश **(द)** 59° उ० अक्षांश

4. अनेक कारकों से निर्धारित सीमाएं कहलाती हैं–

(अ) ज्यामितीय सीमाएँ **(ब)** संष्लिष्ट सीमाएँ **(स)** सांस्कृतिक सीमाएं **(द)** प्रजातीय सीमाएँ

5. सीमाओं की प्रकृति होती है–

(अ) रेखीय **(ब)** विच्छेदक **(स)** परिवर्तनशील **(द)** उक्त सभी

आदर्श उत्तर–

1. (द); **2.** (द); **5.** (अ); **4.** (ब); **5.** (द);

5.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

- Ansel, J., (1968) ; 'Geographie des Frontiers'.
- Boggs, S.W., (1940): 'International Boundaries:A study of Boundary Functions and Problems', Columbia u. Press, New York.
- Colson, L., (1958): 'Geography and World Politics', Prentice Hall, Inc. Englewood Cliffs, N.J. 554 pp.
- De Blij, H.J., (1988): 'Systematic Political Geography', Wiley, New York.
- Goblet, Y.M., (1956) : 'Political Geography and the World Map', George Philip & Sons Ltd., London.
- Haldich, Sir T.H., (192) : 'Political Frontiers and Boundary Making'. London, Macmillan.

- Jones, s.B., (1959) : 'Boundary Concepts in the setting of Place and Time', A. A.A. Geogr. 5, pp.241-255.
- Kristof, L.K.D., (1959) : 'The Nature of Frontiers and Boundaries, A. A.A. Geogr., Vol. 49, No. 5.
- Moodie, A.F., (1949) : 'Geography Behind Politics', H.U.Library, London.
- Nystuen, J.D., (1966) : 'Boundary shape and Boundary Problems', fourth N.A.P.R. Conference-Society Papers15, Chicago, pp, 58-128.
- Pounds, N.J.G. (1951) : 'Origin of the Idea of the Natural Frontiers in France', A.A.A. Geogs, Vol. 41, pp. 136-1515.
- Spykman, N.J., (1944) : 'The Geography of Peace', Hart Court Brass and World], New York.

5.19 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु –

1. सीमान्त की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।

2. सीमा के प्रमुख कार्य क्या हैं?

5. अध्यारोपित सीमा किसे कहते हैं?

4. कार्यात्मक सीमा विवाद क्या है?

5. सीमा और सीमान्त में अन्तर बताइए।

इकाई–06

भू–राजनीतिक सिद्धान्त रिमलैण्ड संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन, हृदय–स्थल की संकल्पना

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 भू–राजनीति

6.2.1 भू–राजनीतिः परिभाषा, विचार, व्याख्या एवं विश्लेषण

6.3 जर्मन भू–राजनीति का संकल्पनात्मक विकास

6.3.1 जैविक राज्य विचार के आधार पर

6.3.2 भू–सामरिकता के विचार के आधार पर

6.4 अल्फ्रेड थेयर महान की सामुद्रिक शक्ति अवधारणा

6.5 सर हेल्फोडे जॉन मैकिन्डर की हृदय स्थल संकल्पना

6.5.1 इतिहास की भौगोलिक धुरी (1904)

6.5.2 हृदय–स्थल की संकल्पना (1919)

6.5.3 मिडलैण्ड बेसिन संकल्पना (1945 में संशोधित)

6.5.4 मैकिन्डर की सामरिक परिदृष्टि की समालोचनात्मक समीक्षा

6.6 निकोलस जान स्पाइक मैन की रिमलैण्ड संकल्पना (1944)

6.6.1 रिमलैण्ड संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन

6.7 अलेक्जेण्डर पी०डी० सेवेरस्की की वायुशक्ति संकल्पना

6.7.1 वायु शक्ति संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन

6.8 सॉल बी० कोहेन का भू–सामरिक एवं भू–राजनीतिक प्रदेश मॉडल

6.8.1 मॉडल में प्रथम संशोधन (1982)

6.8.2 मॉडल में द्वितीय संशोधन (1991)

6.8.3 भू–राजनीतिक एवं भू–सामरिक प्रदेश मॉडल का (समालोचनात्मक मूल्यांकन

6.9 सारांश

6.10 शब्द सूची

6.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

6.0 प्रस्तावना :–

राजनीतिक भूगोल पाठ्यक्रम की यह छठवीं इकाई है। इसमें आप विभिन्न भू–राजनीतिक सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे। भू–राजनीति वास्तव में एक व्यावहारिक कूटनीतिक विज्ञान है जो राज्य के असीमित प्रसार की

इच्छा को व्यक्त करता है। वस्तुतः यह राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के अधिकार को दर्शाने वाली एक संकल्पना है जिसके जनक फ्रेडरिक रैट्जेल थे। राजनीतिक भूगोल के अध्येता होने के नाते विद्यार्थियों को विभिन्न भू–राजनीतिक सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, कारण कि इन सिद्धान्तों के माध्यम से उन्हें यह जानने में सहूलियत होती है कि किसी भी राज्य की राजनीतिक दशाएं लम्बी अवधि तक स्थाई नहीं रह सकती। भू–राजनीतिक के पास ऐसी शक्ति होती है जो बड़ी शक्तियों को कमजोर राज्यों के ऊपर विस्तार करने के लिए प्रेरित करती है। विद्यार्थियों के भू–राजनीतिक ज्ञान और उसके व्यावहारिक स्वरूप को पुष्ट करने के उद्देश्य से इस इकाई में रैट्जेल, जेलेन, हाउशोफर, मैकिन्डर, स्पाइकमैन, सेवेरेस्की, कोहेन जैसे विद्वानों के विचारों एवं सिद्धान्तों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

6.1 उद्देश्य :–

इस इकाई की पाठ्यक्रम सामग्री के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. विद्यार्थियों को भू–राजनीतिक संकल्पना का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।
2. जर्मन भू–राजनीतिक विचारधारा के इतिहास की जानकारी देना।
5. जैविक राज्य विचार धारा एवं भू–सामरिक विचारधारा की मूल भावना से उन्हें अवगत कराना।
4. सामुद्रिक शक्ति अवधारणा और सामरिक चिन्तन के आधारभूत तथ्यों से परिचित कराना।
5. मैकिन्डर की हृदय–स्थल अवधारणा एवं स्पाइकमैन की रिमलैण्ड संकल्पना के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक पक्षों से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
6. विभिन्न भू–राजनीतिक प्रतिमानों का समालोचनात्मक मूल्यांकन कर उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।

6.2 भू–राजनीति :–

'भू–राजनीति' एक व्यावहारिक कूटनीतिक विज्ञान है जो घरातलीय अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन राजनीतिक उद्देश्य से करता है। यह एक गतिशील विज्ञान' भी है, जो राज्य के असीमित प्रसार की इच्छा को व्यक्त करता है। यह राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के अधिकार को दर्शाने वाली एक संकल्पना है, जिसका (संकल्पनात्मक) विकास रैट्जेल (1896) की राज्य विकास की जैवीय अवधारणा, रुडोल्फ जेलेना (1996) भू–राजनीतिक (Geopolitick) और वास–स्थान (Lebensraum या Living space) की (विचारधारा और मैकिन्डर (1904) की 'हृदयस्थल परिकल्पना' को आधार मानकर हुआ। रैटजेल की धारणा थी कि 'राज्य मूलतया परस्पर प्रतिस्पर्धी शक्ति पुंज हैं तथा अन्तरर्राष्ट्रीय वर्चस्व के निरंतर संघर्ष में क्षेत्र प्रसार उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।' जेलेन का विचार था कि– 'राज्य मात्र जीवन्त इकाइयों ही नहीं है, वे विवेकशील इकाइयाँ भी हैं जो अपने अच्छे–बुरे और हित–अहित के बीच चयन करने में सक्षम हैं। प्रत्येक राज्य का अंतिम उद्देश्य अपने राज्य के भौगोलिक क्षेत्र को एक पूर्णतया सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित करना तथा उसके चारों ओर स्थाई प्राकृतिक सीमाओं की प्राप्ति करना है।' मैकिन्डर (1904) की विश्व सामरिक परिदृष्टि थी कि–'जो पूर्वी यूरोप पर नियंत्रण करेगा, वही हृदय स्थल पर राज्य करेगा जो हृदय स्थल पर नियंत्रण प्राप्त करेगा, उसे विश्वद्वीप पर नियंत्रण प्रप्त होगा जो विश्वद्वीय पर शासन करेगा, वही विश्व के राजनीतिक भाग्य का निर्णायक होगा इस तरह रैट्जेल, जेलेन और मैकिन्डर की संकल्पनाओं के सम्मिलित आधार पर प्रथम महायुद्धोत्तरकाल में 'जर्मन रुचि के विषय' के रूप में 'भू–राजनीति' का अभ्युदय हुआ जिसका उद्देश्य था जर्मन राज्य के गौरव की पुनर्स्थापना करना तथा नागरिकों में राज्य के क्षेत्रीय विकास की आवश्यकताओं के प्रति सचेत भौगोलिक अन्तर्बोध जाग्रत करना। दूसरे शब्दों में ''भू–राजनीतिक अवधारणा का प्रमुख आधार रैट्जेल की जैविक राज्य संकल्पना, जेलेन द्वारा उसका परिभार्जित स्वरूप तथा मैकिन्डर का 'भौगोलिक धुरी–हृदय क्षेत्र मॉडल था जिसे आगे चलकर हाउशोफर (1924) ने 'भू–राजनीतिक वित्तान के रूप में विकसित किया। हाउशोफर के अनुसार भू–राजनीतिक एक गतिशील वित्तान है क्योंकि राजनीतिक दशाएं लम्बी अवधि तक स्थाई नहीं रह सकती। भूराजनीतिक के पास ऐसी शक्ति है जो बड़ी शक्तियों को कमजोर राज्यों के ऊपर विस्तार करने के लिए प्रेरित करती है।'

6.2.1 भू–राजनीति : परिभाषा, विचार, व्याख्या एवं विश्लेषण :–

स्वीडिश राजनीतिशास्त्री रूडोल्फ जेलेन (Rudolf Kjellen) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राज्य के अध्ययन के क्रम में Geopolitik (जियोपालिटिक) का शब्दावली का प्रयोग अपनी पुस्तक Der Staat als Lebensform', 1916) में पहली बार किया जिसका 'भूराजनीति' अर्थात् 'राज्य का भौगोलिक वर्णन 'अथवा 'क्षेत्र के राजनीतिक जीवों के अध्ययन की रणनीति। उस प्रकार जेलेन ने राज्य को एक 'विधिकम्प्लीन मानकर एक प्रतिस्पर्धी शक्ति' माना।

फ्रेजीक रैट्जेल (1896) ने अपने जैविक राज्य माडल में जिस बीज को बोया, जिसे रुडोल्फ जेलेन ने 'भू–राजनीतिक के रूप में प्राप्त किया, उसे कार्ल हाउशोफर ने जियोपोलिटिक स्कूल भू–राजनीतिक सम्प्रदाय के रूप में जर्मनी में विकसित किया। हाउशोफर ने 'भूराजनीतिक 'शब्द को जेलेन की कृति ''Der Staat als Lebensform ''से लिया था।

कार्ल हाउशेफर (1924) के अनुसार – भू–राजनीतिक वह वित्तान है जिसमें प्राकृतिक वातावरण एवं राजनीतिक जीवन का अध्ययन किया जाता है तथा राजनीतिक जीवन को उसके पृथ्वी से सम्बन्धों और ऐतिहासिक गतियों की दशाओं के सन्दर्भ में समझा जाता है (Zeitschrift fur Geo-Politik,1924) इसी पत्रिका में हाउषोफर ने पुनः स्पष्ट किया–(भूराजनीतिक) एक ऐसा विज्ञान है जो मिट्टी भौतिक स्वरूप के ऊपर राजनीतिक घटनाक्रम के निर्भरता का विश्लेषण करता है। यह भूगोल के विस्तृत आधारों, विशेषकर राजनीतिक भूगोल पर आधारित है। भूराजनीतिक का उद्देश्य राजनीतिक क्रियाओं के लिए शास्त्रों को जुटाना है तथा राजनीतिक जीवन के निर्देशक सिद्धान्तों का पालन करना है.... यह निश्चित रूप से राज्य का भौगोलिक अन्तः करण है।

ऑटो माउँल (1956) के अनुसार – 'भू–राजनीतिक राज्य से अपने आपको एक स्थिर अवधारणा के रूप में नहीं बल्कि जीवित हस्ती के रूप में सुबह करता है। भूराजनीतिक राज्य को मुख्य रूप से उसके वातावरण को उसके क्षेत्र से एकीकृत करता है और स्थानिक सम्बन्धों से व्युत्पना सभी प्रकार की समस्याओं का हल खोजने का प्रयास करता है। यह राज्य की स्थानिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध है।..... भूराजनीतिक एक विधा है जो दी गई परिस्थितियों में माप तथा आकलन करता है और अपने निष्कर्षो के आधार पर व्यावहारिक राजनीति को निर्देशित करता है। Bas Wesender Geo-politik

बीगर्ट एवं सहयोगियों के अनुसार :– भू–राजनीतिक सम्बन्धी उपरोक्त परिभाषाओ के विचारों की व्याख्या एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भू–राजनीति की विचारधारा एक क्षेत्र विशेष (जर्मनी) तक सीमित थी। इसी कारण कुछ राजनीतिक भूगोलविदों ने इस विचारधारा की आलोचना की। आलोचना सम्बन्धी कतिपय विद्वानों के कथन निम्नवत् है –

ग्रिफिथ टेलर के अनुसार :– यह (भूराजनीति) नियतिवाद की अति अवस्था है। युद्ध में हार के कारण वास्तविकता से दूर हटकर जर्मन विचारक हार के कारणों को जानने के लिए अपने पक्ष में प्रत्येक संभव कारण जुटाना चाहते थे, अतः राजनीतिक भूगोल में (भूराजनीति के रूप में) विस्तारवादी क्षेत्रीय विचार भर दिए।

वाल्केन वर्ग (1959) के अनुसार :– जर्मन भूराजनीति राष्ट्रीय प्रसार के जर्मनदर्शन की व्याख्या करता है।'

पियर्सी (1959) के अनुसार :– 'भूराजनीति जर्मन 'राज्यक्रैक्ट का एक सीमित उपकारण थी जिसे नाजी मिथ्या प्रचार का साधन बनाया गया।

डिमान्जिया के अनुसार :– भूराजनीति प्रचार एवं उपदेश का राष्ट्रीय सस्थान है (Geopolitics is a national enterprise of propaganda & teaching)

जी टी० रेनर (1951) के अनुसार :–'भू–राजनीति एक कुलीन माता की अकुलीन पुत्री है।... इसमें कुटिलता व आत्महित पर अधिक बल दिया जाता है।

सारांशतः, आलोचनाओं के परिप्रेक्ष्य में यहा कहा जा सकता है कि भू–राजनीति का क्षेत्र संकुचित है। यह सिर्फ राजनीतिक कार्यो के लिए कवच का काम करती है। राजनीतिक विस्तारवाद को बढ़ावा देती है तथा विस्तार वाद को प्रोत्साहित कर विश्व संघर्ष एवं युद्ध को प्रोत्साहित करती है। भू–राजनीति और कुछ नहीं है बल्कि भौगोलिक सिद्धान्तों का शक्ति की लालसा के खेल में प्रयोग है।

6.3 जर्मन भूराजनीति का संकल्पनात्मक विकास :–

वैश्विक स्तर पर प्रथम विश्वयुद्ध एक ऐसी घटना थी जिसने यूरोप के राजनीतिक मानचित्र में भारी फेर बदल कर दिया था। जर्मनी, जो अनेक जर्मन भाषी इकाइयों के परस्पर विलय से जर्मन साम्राज्य की स्थापना के साथ ही द्रुतगति से यूरोपीय महाद्वीप का सबसे प्रभावशाली, सबसे बड़ी सामरिक और आर्थिक शक्ति बन गया था, प्रथम विश्व युद्ध में बुरी तरह पराजित हो गया था। युद्ध के पश्चात किए गए शान्ति समझौते की शर्तों के अनुसार जर्मन साम्राज्य का अधिकार क्षेत्र संकुचित कर उसे भाषाई आधार पर कई स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों में बाँट दिया गया। इससे जर्मन अस्मिता और उसके राष्ट्रवादी गौरव को बहुत ठेस लगी। अपनी खोई हुई अस्मिता को प्राप्त करने और राज्य के गौरव की पुनर्स्थापना करने के लिए 1924 में म्यूनिख नगर में रैट्जेल, जेलेन और मैकिन्डर की सम्मिलित संकल्पनाओं के आधार पर भू–राजनीतिक अध्ययन के लिए एक 'भू–राजनीतिक संस्थान की स्थापना की गई। वस्तुतः यही वह समय था जब राजनीतिक भूगोल का विकास भिन्न दिशा में होने लगा, और इस तरह राजनीतिक भूगोल में भू–राजनीति का सूत्रपात हुआ

भू–राजनीति की संकल्पना के उद्‌भव और विकास में स्वीडिश मूल के राजनीति शास्त्री रुडोल्फ जेलेन (1864–1922 ई०), ब्रिटेन के राजनीति शास्त्री हेलफोर्ड मैकिन्डर (1861–1947 ई०) और जर्मनी के विद्वान कार्ल हाउशोफर (1869–1946) का विशेष योगदान रहा है। म्यूनिख में स्थापित 'भू–राजनीतिक संस्थान के निर्देशक के रूप में हाउशोफर ने 1924 में एक पत्रिका 'Zeitschrift fur Geopolitik का सम्पादन प्रारंभ किया जिसमें उन्होंने 'भू–राजनीतिक' को परिभाषित किया, उसने उद्‌देश्य बनाए और यह भी बताया कि किस तरह से राजनीतिक भू–राजनीतिक के माध्यम से अपने राज्य के हितों के लिए कैसे योगदान दे सकते हैं। हाउसोफर की इस भू–राजनीतिक अवधारणा के तीन प्रमुख आधार थे–

(अ) रैट्जेल की जैविक राज्य संकल्पना,

(ब) जेलेन द्वारा उसका परिमाणित स्वरूप, और

(स) मैकिन्डर का भौगालिक धुरी–हृदय क्षेत्र मॉडल।

डार्विन के संघर्ष तथा प्राकृतिक चयन' दर्शन के आधार पर रेट्जेल का मानना था कि–'सीमान्त एक रेखा नहीं है, बल्कि एक स्थानांतरणशील आत्मसाती परिक्षेत्र है। सीमा रेखा राजनीतिक भू दृश्य में स्थाई नहीं होती बल्कि राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनशील होती है।' रैट्जेल के अनुवर्ती विद्वान जेलेन रैट्जेल की 'जैविक राज्य संकल्पना संबंधी उक्त मत से पूर्णतया सहमत थे। उन्होनें रैट्जेल के जैविकराज्य मॉडल में नैतिकता का आयाम जोड़ा और बौद्धिक क्षमता की गुणात्मकता को शामिल किया जेलेन पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने 'Geopolitik' (भू–राजनीतिक) शब्दावली का प्रयोग किया। सर हलफोर्ड मैकिन्डर राजनीतिक भूगोल के क्षेत्र में एक मूर्धन्य विचारक थे। उन्होने 1904 ई० में रॉयल ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी लंदन के अधिवेशन में – The Geographic Pivot of history' विषय पर अपना लेख प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने अपने 'हृदय–स्थल मॉडल की व्याख्या प्रस्तुत की। कार्लहॉउशोफर जलेन की मृत्यु के बाद 'भूराजनीतिक के प्रमुख पैरोकार के रूप में उभरे। हॉउशोफर मैकिन्डर की विश्व सामरिक परिदृष्टि से अत्यधिक प्रभावित थे। मैकिन्डर भी इस अवधारणा में हॉउशोफर को पराजित जर्मनी के राष्ट्रोद्धार, खोई अस्मिता की प्राप्ति व जर्मनी के समस्याओं के समाधान की कुंजी दिखाई पड़ी और उन्होने अपने 'भूराजनीतिक संस्थान (Institut fur Geopolitik) और अपनी भू–राजनीतिक पत्रिका' (Zeitschrift&fur Geopolitik) के माध्यम से जर्मनी को केन्द्र में रखकर भू–राजनीतिक संकल्पना' को विकसित और परिवर्धित किया। उनके इस कार्य और भूराज – नीतिक संकल्पना को इतनी प्रसिद्धि मिली कि 'भूगोल, विशेष कर युद्ध भूगोल के जर्मन राष्ट्रीय पूर्वाधिकार बन गया (वाल्ष, 1944)। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि तत्कालीन जर्मन नीति हॉउशोफर के अधीन म्यूनिख के भू–राजनीतिक संस्थान द्वारा तैयार बृहदार साहित्य ने काफी अधिक प्रभावित थी। और यह प्रभाव 1924 से 1945ई तक जर्मनी के भूगोल पर बना रहा। वास्तव में हॉउशोफर की यह विचारधारा जर्मनी में 'भू–राजनीतिक सम्प्रदाय 'के रूप में विकसित हुई जिसमें रैट्जेल के जीव संबंधी विचार, जेलेन द्वारा उसका परिमार्जित स्वरूप, मैकिन्डर के विश्व सामरिकता सम्बन्धी विचार क्षेत्रीय बाद तथा युद्ध के पश्चात् जर्मनी की राष्ट्रीय भावना का मिश्रण था जिसके परिणामस्वरूप भूराजनीति (Geopolitics) का स्वरूप सामरिकता (Geo–Strategy) ने ग्रहण कर लिया। यद्यपि जर्मन भू–राजनीतिक संकल्पना का विकास हॉउशोफर द्वारा 'राज्य की आत्मा' के रूप में

किया गया, किन्तु इसकी शारीरिक संचना भ्रमात्मक आँकड़ों पर आधारित थी। परिणामतः यह मात्र प्रचार व विस्तारवाद का साधन बन कर रह गई।

साराशंतः भू–राजनीति का संकल्पनात्मक विकास 'दो रूपों में देखा जा सकता है :–

1. जैविक राज्य (Organic State) के विचार के आधार पर
2. भू–सामरिकता (Geo&Strategy) के विचार के आधार पर

6.3.1 जैविक राज्य विचार के आधार पर :–

जैविक राज्य विचार के आधार पर भू–राजनीतिक संकल्पना के विकास में जिन विद्वानों का योगदान प्रभुत्व है, उनमें फ्रेडरिक रेट्जेल (The Laws of spatial Growth, 1898 – Political Geography, 1896)य रूडोल्फ जेलेन ('The Stale as an Organism, 1916) काल हॉउशोफर (Zeitschrift fur Geopolitik mua 'Journal of Geopolitics, 1924–1968) एवं ऑटो (Das Wesender Geopolitik) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

6.3.2 भूसामरिकता के विचार के आधार पर :–

भू–सामरिकता के विचार के आधार पर भू–राजनीतिक संकल्पना के विकास में जिन विद्वानों का योगदान प्रमुख है, उनमें एडमिरल थेयर महान (The Influence of sea Power upon thistory,1890) सर हेलफोर्ड जे० मैकिन्डर ('The Geographical Pivot of History, 1904, Democratic Ideals Cea The World the Winning of the Peace, 1945 and Reakily, 1919) एवं The Round world and the winning of the peace, 1944 निकोलस जॉन स्पाइकमैन (America's Strategy in world power; एवं The Geography of peace; 1944); एलेक्जेण्डर पी0डी0 सेवेरस्की (Victory through Air power; 1945,'Air power Key to surviva एवं America too yuring to die'1961 तथा साडल बी0 कोहेन (Geographyand polities in a Divided world; 1965) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

6.4 अल्फ्रेड थेयर महान की सामुद्रिक शक्ति अवधारणा :–

सामुद्रिक शक्ति प्रसार और नौसामरिक चिंतक अल्फ्रेड थेयर महान (1840–1913) एक अमेरिकी विद्वान थे। अमेरिकी नौ सैनिक अकादमी से स्नातक की शिक्षा (1859) प्राप्त करने के पश्चात लगभग 40 वर्षों तक उन्होने अमेरिकी नौ सेना को अपनी सेवाएँ दीं और 1906 में अमेरिकी नौ सेना के रीअर ऐडमिरल के पद से अवकाश ग्रहण किया। अपने सेवाकाल के दौरान ही उन्होंने अनेक पुस्तकें व लेख लिखें। नौ सैनिक चिंतन पर आधारित उनकी पुस्तकें और लेख यद्यपि कि कई विविध दृष्टिकोणों से किये गए थे, लेकिन प्रायः सभी में इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि आधुनिक युग में विश्व शक्ति के रूप में स्थापित होने के लिए सामुद्रिक मार्गों का नियंत्रण आवश्यक और अनिवार्य शर्त है। उनके द्वारा रचित तीन पुस्तकें विशेष महत्व की हैं–

1. The Influence of Sea Power cupon History: (1890)
2. The Influence of Sea Power upon French Revolution and Umpires 1793–1812 (1892)
5 . The life of Nelson (1897)

अपनी उक्त तीन चर्चित पुस्तकों में वैश्विक सामुद्रिक शक्ति पर उन्होने जो विचार व्यक्त किए उसका सीधा प्रभाव अमेरिका पर ही नहीं बल्कि सभी देशों की नौ सैनिक विचारधारा पर पडा (भाररिटे स्प्राउट 1945) उन्होने अपनी एक कम चर्चित पुस्तक''. The problems of Asia and their effect on International pohicses (1900) में वैश्विक सामरिक माडल प्रस्तुत किया जो उनके सामुद्रिक शक्ति के दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है।

महान की उक्त सभी पुस्तकों के अध्ययन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होने कोई भूरणनीतिक अवधारणा प्रस्तुत की थी, बल्कि उनकी सभी रचनाओं (वे चाहे किसी भी दृष्टिकोण से लिखी गई हों) का सार। तत्व यह है कि सामुद्रिक शक्ति ही विश्व प्रभुत्व का आधार है। महान की (सामुद्रिक शक्ति अवधारणा और सामरिक चिंतन की कुछ आधारभूत बातें निम्नवत् है–

(1.) भूमंडलीय सतह पर सागरों एवं महासागरो का एक अबाध और अविराम तंत्र मौजूद है, अतः सामुद्रिक यातायात एक समन्वित व्यवस्था है;

(2.) भूमंडल पर उत्तर में आर्कटिक से लेकर द0 में आन्तरिक एशिया की पर्वतीय पेटी तक तथा प० में पूर्वी यूरोप से लेकर पूर्व में एशियाई मुख्य भूमि के पूर्वी छोर तक एक विशाल स्थल खण्ड रूसी साम्राज्य के रूप में मौजूद है, और समुद्री मार्गो से पूरी तरह कटा हुआ है;

(5.) यह अन्तर– महादेशीय रूसी साम्राज्य पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व में समुद्र तटीय शक्तियों से घिरा हुआ है;

(4.) स0रा0 अमेरिका, ग्रेट ब्रिटन तथा जापान सामुद्रिक स्थिति वाले देश हैं जो यूरेशियन मुख्य भूमि के कारण एक दूसरे से अलग होने के बावजूद भी अनेक दृष्टियों से उससे सम्बद्ध रूप में स्थित हैं।

उपरोक्त सामरिक तथ्यों को ध्यान में रखकर महान ने अपनी पुस्तक The Influence of Sea Power cupon History (1890) में ब्रिटिश साम्राज्य और उसकी कूटनीति का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला लघु आकार का द्वीपे होते हुए भी– विश्वशक्ति के रूप में ग्रेट ब्रिटेन का विकास उसकी द्वीपीय स्थिति के कारण संभव हुआ। उनके इस निष्कर्ष के प्रमुख आधार निम्नलिखित थे :–

(i) ग्रेट ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति सामुद्रिक यातायात की दृष्टि से आदर्श स्थिति है।

(ii) यूरोपीय देशों में ग्रेट ब्रिटेन एकमात्र ऐसा देश है जो कि पूरी तरह से घिरा है।

(iii) सीमाओं की सुरक्षा के लिए उसे सेना था यौद्धिक सामान पर अधिक खर्च करने की जरूरत नहीं है।

(iv) उत्तरी यूरोपीय देशों तथा अटलांटिक महासागर के बीच में उसकी भौगोलिक स्थिति है।

(v) गहरे सागरवाला सारा व्यापार ब्रिटिश चैनल से गुजरने के करण अन्तरर्राष्ट्रीय व्यापार में उसकी अग्रणी भूमिका है और महत्वपूर्ण सागरीय व्यापारिक मार्ग उसके नियंत्रण में हैं

(Vi) जिब्राल्टर जलडमरुमध्य, स्वेजनहर, उत्तम आशा अंतरीप, सिंगापुर, हांगकांग, मैगलन जल डमरूमध्य, केप ऑफहॉर्न जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गो पर ब्रिटिश नौसेना ने अपने नौसैनिक बेड़े तैनात कर लिए थे।

(Vii) इन नौ सैनिक बेड़ों के आधार पर ग्रेट ब्रिटेन यूरोप, एशिया, एवं प्रशांत एवं अटलांटिक महासागरीय क्षेत्रों में आसानी से निर्णाणक स्थिति में आ गया था।

ग्रेट ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति के विकास के विश्लेषण के आधार पर अल्फ्रेड थेयर महान ने समुद्रिक शक्ति के विकास के लिए निम्नलिखित छः प्रमुख कारकों की पहचान की –

1. **राज्य की भौगोलिक स्थिति** और उसकी (स्थलीय सीमाओं का विस्तार/लम्बाई;
2. **राज्य का भौतिक धरातलीय प्रारूप** जो आन्तरिक एवं तटीय भागों के बीच यातायात को सरल एवं सुगम बना सके और बन्दरगाहों के निर्माण में सहायक हो;
5. **राज्य का भौगोलिक विस्तार** तथा स्थलीय सीमाओं की सुरक्षा;
4. **राज्य की जनसंख्या का आकार** अर्थात् अधिक जनसंख्या – बड़ा नौसैनिक बेड़ा;
5. **राज्य का राष्ट्रीय चरित्र** अर्थात् राज्य के नागरिको में सामुद्रिक यातायात के प्रति रुचि एवं सामुद्रिक शक्ति विस्तार में आस्था;

प्रशासन का स्वरूप एवं सरकारी नीतियाँ :– जो सामुद्रिक शक्ति विस्तार के प्रति सचेष्ट हों।

ग्रेट ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति के विकास के विश्लेषण के आधार पर और सामुद्रिक शक्ति के विकास हेतु पहचाने गए निर्णायक तत्वों का दृष्टि में रखकर महान ने निष्कर्ष निकाला विश्व में मात्र स० रा० अमेरिका ही ऐसा देश है जो समुद्रिक शक्ति विस्तार में ग्रेट ब्रिटेन को मात दे सकता है। अमेरिका की सामुदिक शक्ति के विकास हेतु महान ने पनामा नहर के निर्माण की सिफारिश की थी। महान को पूरा विश्वास था कि एक दिन स०रा० अमेरिका विश्व का सबसे शक्तिशाली राज्य बनेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के शक्तिशाली राज्य बनने में वे रूसी साम्राज्य को एक बाधा मानते थे, इसीलिए उन्होंने इस बात पर भी बल दिया था कि रूसी सामरिक उद्देश्यों को असफल करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन एवं अन्य सामुद्रिक शक्तियों का एक जुट होना अनिवार्य है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि महान के ये विचार, विश्लेषण एवं निष्कर्ष उनकी किसी एक पुस्तक में नहीं है, बल्कि उनके द्वारा लिखे गए लेखों, कथनों

और भाषणों में बिखरे पड़े हैं। महान की मृत्यु हवाई शक्ति के विकास के पूर्व ही हो गई थी, इसलिए उनकी अवधारणा में हवाई शक्ति का उल्लेख नहीं है।

6.5 सर हेल्फोर्ड जॉन मैकिन्डर की हृदय–स्थल संकल्पना :–

लंदन विश्वविद्यालय में भूगोल के आचार्य, लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स के निदेशक, ब्रिटिश संसद के सदस्य एवं रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के उपासभापति जैसे सम्मानित पदों पर आसीन रहे सर हेल्फोर्ड जान मैकिन्डर (1861–1947) अपने समय के एक ऐसे विचारक और मूर्धन्य भूगोलविद् थे जिन्होंने यूरोप के राजनीतिक इतिहास को समुद्री शक्ति और स्थल शक्ति के मध्य अनवरत संघर्ष के रुप मे देखा मैकिन्डर ने अपने विश्व सामरिक मॉडल को वैश्विक अर्थव्यवस्था के उस संकटकालीन दौर में विकसित किया जब सम्पूर्ण विश्व में स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य शिविर से अवनति और अग्रसर हो रहा था। वास्तव में अल्फ्रेड थेयर महान जहाँ आकर रुक गए थे, वहीं से मैकिन्डर ने प्रारंभ किया तथा महान के अनेक निष्कर्षों से अपनी असहमति प्रकट की।

मैकिन्डर ने अपने विश्व सामरिक मॉडल'को विभिन्न संशोधनों के ''साथ तीन बार तीन स्वरूपों में प्रस्तुत किया–

प्रथम – इतिहास की भौगोलिक धुरी (Geographical Pivot of History): 1904

द्वितीय – हृदय–स्थल की संकल्पना (Concept of Heart Laud): 1919

तृतीय – मिड्लैण्ड बेसिन संकल्पना (Concept of Midland Basin): 1945 (संशोधित)

6.5.1 इतिहास की भौगोलिक घुरी (1904) :–

मैकिन्डर ने अपना विश्व सामरिक मॉडल 'इतिहास की भौगोलिक धुरी (The Geographical Pivot of History) 25 जनवरी 1904 जनवरी को 'रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के सम्मुख पहली बार एक शोध पत्र के रूप में प्रस्तुत किया जो बाद में (1904) Geographical Journal (vol. XXIII, PP,421-444) में प्रकाशित हुआ। अपने शोध प्रपत्र में संख्यात्मक पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के बाद सर्वप्रथम उन्होंने 'विश्वद्वीप को रेखांकित किया। पृथ्वी के स्थलाकृतिक मानचित्र के आधार पर मैकिन्डर ने यह निष्कर्ष निकाला कि भू–मण्डलीय स्तर पर पृथ्वी की सतह पर अफ्रीका, यूरोप तथा एशिया के परस्पर संयोग से निर्मित एक विशाल भू–खण्ड है जो सम्पूर्ण पृथ्वी के दो तिहाई क्षेत्रफल को अपने में समेटे हुए है। इस संयुक्त मैकिन्डर ने 'विश्वद्वीप (World Island) की संज्ञा दी। इसी विश्वद्वीप पर पृथ्वी की कुल जनसंख्या का ''सात बटे आठ (81.55%) भाग निवास करता है। पृथ्वी का शेष एक तिहाई भू–भाग छोटे–बड़े खण्डित स्थल–खण्डों (उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, आष्ट्रेलिया, ग्रेट ब्रिटेन और जापान आदि) के रूप में भू–सतह पर फैला हुआ है **(चि०सं० 6.1)**

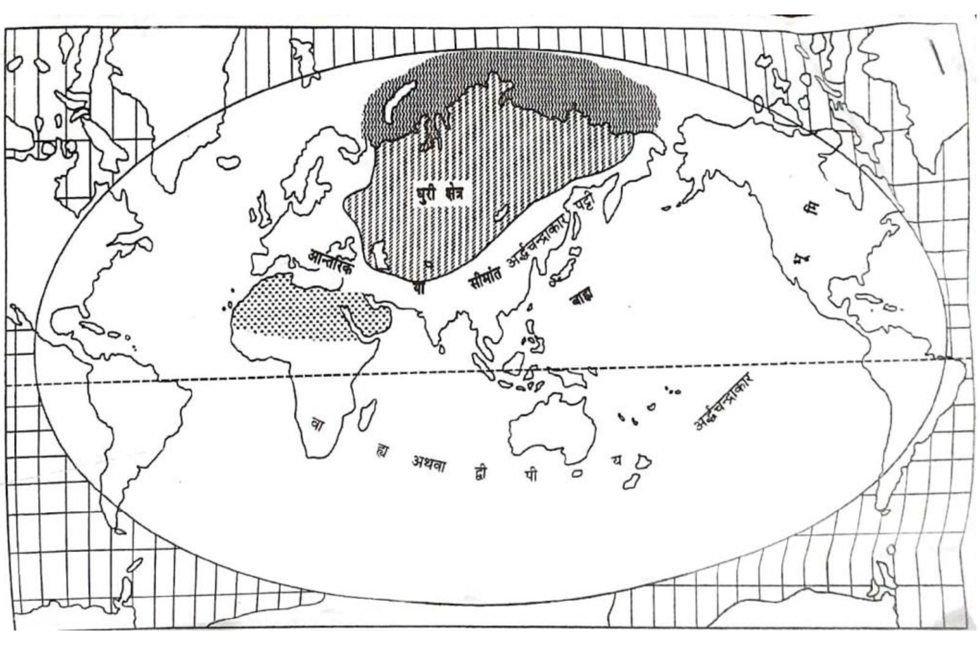

अपने विश्व सामरिक मॉडल में मैकिन्डर से विश्वद्वीप और खण्डित स्थल–खंडो को तीन स्तरों (वर्गों) में विभाजित किया है –

(अ) प्रथम स्तर (वर्ग) आंतरिक और आर्कटिक जल प्रवाह वाले एशिया के आन्तरिक क्षेत्रों का है जो तीन ओर से पर्वतों से और ऊँची अवरोधक पहाड़ियों से घिरा हुआ है और चौथी ओर वर्ष पर्यन्त जमे हुए सागर हैं जो नौशक्ति के लिए अगम्य है। यही मैकिन्डर का 'धुरी क्षेत्र' (Pivot) है।

(ब) द्वितीय स्तर (वर्ग) धुरी क्षेत्र' के पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व में स्थित उन भू–भागों का है जिनका विस्तार यूरेशिया के स्केण्डीनेविया से मंचूरिया तक के तटीय क्षेत्रों तक है। इसे मैकिन्डर ने 'आन्तरिक या सीमावर्ती अर्द्धचन्द्राकार वृत्त (Inner or Marginal Crescent) नाम दिया है। यह अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र पूरी तरह सामुद्रिक शक्तियों के प्रभाव में है कारण कि यहाँ की नदियाँ वर्ष पर्यन्त खुले सागरों में प्रवाहित होती है।

(स) तृतीय स्तर स्थलीय क्षेत्रों की वह पेटी है जो यूरेशिया के बाहर स्थित महाद्वीपों एवं द्वीपों की है। इसमें उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, सहारा के दक्षिण में स्थित अफ्रीकी महाद्वीप के क्षेत्र ग्रेट ब्रिटेन जापान एवं आस्ट्रेलिया तथा संम्बद्ध द्वीपीय क्षेत्र शामिल हैं। इसे मैकिन्डर ने बाहरी या द्वीपीय अर्धचन्द्राकार वृत्त (Outer or Insular Cresent) रहा है।

इस प्रकार मैकिन्डर का धुरी क्षेत्र' अर्थात् इतिहास की भौगोलिक धुरी' यूरेशिया का वह विस्तृत क्षेत्र है जिसकी नदियाँ या तो आंतरिक झीलों में गिरती है'' अथवा वर्ष पर्यन्त बर्फ से ढके समुद्र में। अतः (सामरिक दृष्टि से यह एक विशाल दुर्ग के समान सुरक्षित है। यहाँ की भौगोलिक – राजनीतिक घटनाओं का मूल्यांकन करने के बाद मैकिन्डर ने यह निष्कर्ष निकाला कि पुरानी दुनिया में आन्तरिक यूरेशिया ही विश्व का एक मात्र ऐसा भूखण्ड है जिसने अपने भू–सामरिक महत्व के कारण पुरानी दुनिया के इतिहास और राजनीति को काफी प्रभावित किया है। लेकिन मैकिन्डर के अनुसार धुरी क्षेत्र पश्चिम और पूर्व से अभेध है। इस प्राकृतिक अभेद्य किले का निम्न तलीय क्षेत्र जर्मनी के उत्तरी मैदानों में जाकर मिल जाता है, इस प्रकार जर्मनी के लिए यह आसान है कि वह धुरी क्षेत्र पर अधिकार कर ले और वहाँ से समूचे विश्व पर अपना अधिकार स्थापित करें। सुदूर पूर्व में प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में शताब्दी के प्रारंभ में रूस को सैनिक सम्बन्ध में पराजित करने के बाद जापान का सैन्य शक्ति के रूप में अभ्युदय भी एक खतरे के रूप में था जो धुरी क्षेत्र को पूर्व से भेद करता था। इस तरह से पूर्व (जापान) और पश्चिम (जर्मनी) की बढ़ती शक्ति पुरे क्षेत्र के लिए घातक थी और मैकिन्डर के इंग्लैण्ड एवं उसके विश्व प्रभुत्व के लिए चुनौती थी। अपने इस शोध प्रपत्र में मैकिन्डर ने निष्कर्षतः यह स्पष्ट किया था कि केवल सामुद्रिक शक्ति पर आधारित राज्य दीपकाल तक अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकते। इसके विपरीत एक स्थलीय शक्ति अपने संसाधनों के बल पर स्थाई रूप से शक्तिशाली रह सकती है। इसलिए 'धुरी क्षेत्र' भावी विश्वशक्ति के लिए आधार बन सकता है।

6.5.2 हृदय–स्थल की संकल्पना (1919) :–

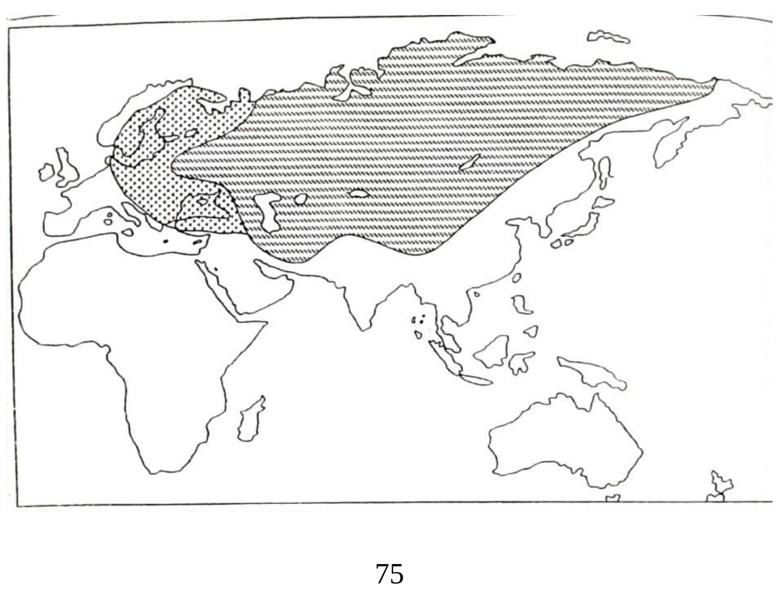

मैकिन्डर ने अपनी इतिहास की भौगोलिक धुरी' संकल्पना (1904) में यह स्पष्ट रूप से कहा था कि उनके द्वारा निर्धारित' विश्वद्वीप का धुरी क्षेत्र' विश्व की किसी भी सामुद्रिक शक्ति के लिए अगम्य है और सामरिक दृष्टि से वह एक विशाल दुर्ग के समान सुरक्षित है। लेकिन 1913–1919 के प्रथम विश्वयुद्ध में कुछ ऐसी घटनाएं घटी (जैसे– रूसी साम्राज्य का 1917 में पतन; रुस के नए कम्युनिस्ट शासकों का जर्मनी के साथ उसी की शर्तों के साथ शान्ति समझौता; युद्ध के दौरान तुर्की जलडमरूमध्य के रास्ते कालासागर में प्रवेश करने की ग्रेट ब्रिटेन की असफलता, जर्मनी की बारूदी सुरंगों का ब्रिटिश नौ सेना को बाल्टिक सागर के बाहर ही रोके रखना;) जिससे मैकिन्डर को लगा कि 1904 में उनके द्वारा प्रति पारित आन्तरिक जल प्रवाह पर आधारित 'धुरी क्षेत्र' उससे अधिक व्यापक था। अतः प्रथम विश्व युद्ध के घटनाक्रमों के परिप्रेक्ष्य में मैकिन्डर को अपनी इतिहास की 'भौगोलिक धुरी' संकल्पना में कुछ संशोधन आवश्यक प्रतीत हुए। इसलिए 1919 में उन्होंने एक पुस्तक 'Democratic Ideals and Reality 'प्रकाशित किए की और इसमें अपनी 'धुरी' संकल्पना को संशोधित स्वरूप में प्रस्तुत करने उसे 'हृदय स्थल संकल्पना' का नाम दिया **(चि0 सं0 6.2)**।

मैकिन्डर का 1919 का 'हृदय–स्थल 1904 के 'धुरी क्षेत्र' से थोड़ा अलग और विस्तृत है। सामरिक चिंतन के उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने हृदय–स्थल की एक नई परिभाषा प्रस्तुत की और रहा कि 'हृदय–स्थल वह क्षेत्र है जिसमें आधुनिक तकनीक के सारे सामुद्रिक शक्तियों को प्रभावी ढंग से बाहर रखा जा सकता है। इस आधार पर परिभाषित सामरिक हृदय–स्थल के अन्तर्गत उन्होंने बाल्टिक सागर, डैन्यूब नदी की नौकागम्य मध्य और निचली घाटी, कालासागर, आर्मेनिया, एशिया माइनर, पर्शिया, तिब्बत एवं मंगोलिया को शामिल किया। युद्ध के अनुभव के आधार पर मैकिन्डर को स्पष्ट था कि 'हृदय स्थल' में एक कमजोर और मोर्चा है– दक्षिणी रूसी का स्टेप्स का वह प्रदेश जिससे होकर 19115 में जर्मन फौजें आगे बढ़ी थी। यूराल और कैस्पियन सागर के बीच स्थित यह स्टेपी संकरा गलियारा ही हृदयस्थल को पूर्वी यूरोप से जोड़ता है। पूर्वी यूरोप में अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभाव के परिणाम स्वरूप जर्मनी हृदय–स्थल के एकमात्र प्रवेश द्वार पर की सरलता से नियत्रण स्थापित कर सकता है और भविष्य में कमजोर रूस से गठजोड़कर अपने नेतृत्व में यूरेशिया में विश्व का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर सकता है। अतः हृदय स्थल क्षेत्र में जर्मनी भी विश्व विजय की भावी संभावनाओं को समाप्त करने के और पेरिस में शांतिवार्ता के लिए एकत्र पूरोपीय और अमेरिकी राजनयिकों को भावी जर्मन संकट से आगाह करने के लिए मैकिन्डर ने एक नई सामरिक 'ाक्ति प्रतिपादित की

''जो पूर्वी यूरोप पर शासन करेगा, वह हृदय स्थल को नियंत्रित करेगा;

जो हृदय–स्थल पर शासन करेगा, वह विश्वद्वीप को नियंत्रित करेगा;

जो विश्वद्वीप पर शासन करेगा, वह विश्व को नियंत्रित करेगा।''

मैकिन्डर के हृदय–स्थल मॉडल' की यह सूक्ति प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी की नीतियों के लिए निःसंदेह प्रासंगिक थी। इस सूक्ति की भौगोलिक वास्तविकता ने ही जर्मनी के क्षेत्रीय प्रसार के आकार एवं दिशा को निर्धारित करने में यूरोपीय और अमेरिकी राजनयिकों की सहायता की।

6.5.3 मिड्लैण्ड बेसिन संकल्पना (1945 में संशोधित) :–

असामयिक भूराजनीतिक वैश्विक परिवर्तनों को देखते हुए गौकलर ने अपने भूसामरिकता के दृष्टिकोण में पुनः एक बार फिर परिवर्तन किया। उन्होंने 1945 में Foreign Affairs' नामक पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख The Round World and Winning of the Peace' मे विश्व भूराजनीति को नई व्याख्या प्रस्तुत की। उनकी इस नवीनतम व्याख्या में' दो बिन्दु प्रमुख थे :–

प्रथम :– उनके अनुसार 'हृदयस्थल आज भी पृथ्वी का महानतम दुर्ग है तथा इतिहास में पहली बार एक ऐसी जन समष्टि द्वारा रक्षित है जो संख्या और गुण के सन्दर्भ में पर्याप्त है। अपनी इस मान्यता के बावजूद भी उन्होंने 1919 में प्रस्तुत हृदयस्थल की सीमा में परिवर्तन करते हुए तत्कालीन सोवियत संघ के उस क्षेत्र को हृदयस्थल से पृथक कर दिया जो येनेसी नदी के पूर्व में स्थित है। यह क्षेत्र, जिसे उन्होंने 'Lena Land (लीना स्थल) कहा, उनकी दृष्टि में किसी भी राजनीतिक महत्व वाला नहीं है, कारण कि यह क्षेत्र पर्वतों; पठारों एवं कोणधारी वनोवाली घाटियों से आच्छादित है।

द्वितीय :– उनके अनुसार–पश्चिमी यूरोप और पूर्वी उत्तरी अमेरिका व्यावहारिक स्तर पर आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से इतने निकट से जुड़े हैं कि वे एक दूसरे के परिपूरक दिखाई पड़ते हैं। मैकिन्डर के शब्दों में स0रा0 अमेरिका के प्रभूत व"ा प्राप्त करने वाले क्षेत्र और उसकी सारी कोयला खाने पूर्वी हिस्से में स्थित हैं, जबकि यूरोप में उनका केन्द्रीकरण पश्चिमी भाग में है। अतः प0 यूरोप और पूर्वी स0रा0 अमेरिका एक ही समुदाय के दो संतुलित अंग हैं।' उनकी दृष्टि में– पश्चिमी यूरोप और स0रा0 अमेरिका के बीच फैला आन्ध्र महासागर एक समुद्र मात्र न रह कर व्यावहारिक स्वर पर–संघन सागरीय और वायु मार्गों की जलवायु घाटी बन गया है जिसकी भू–राजनीतिक क्षमता गणनातीत है। इसी परिक्षेत्र को मैकिन्डर ने 'मिडलैण्ड बेसिन (मध्य स्थलीय बेसिन) की संज्ञा दी है।

अपनी नवीनतम व्याख्या में मैकिन्डर ने स्पष्ट किया कि अब दो पृथक–पृथक अपराजेय शक्तियों (पश्चिम में मिडलैंड बेसिन और पूर्व मे (संशोधित हृदय स्थल) का अस्तित्व है और इन दो शक्तियों के मध्य पूर्वी–मध्य यूरोप एक अन्तस्थ क्षेत्र के रूप में उभरेगा। मैकिन्डर के अनुसार – 'मिडलैण्ड बेसिन तथा (संशोधित) हृदय स्थल एक दूसरे के करीब आकर जर्मन सैन्य शक्ति के संभावित खतरों का सामना करेंगे। सारांशतः मैकिन्डर का 1945 का संकल्पनात्मक संशोधन अधिक व्यापक है और समसामयिक राजनीतिक परिदृश्य को प्रतिबिम्बित करता है।

6.5.4 मैकिन्डर की सामरिक परिदृष्टि की समालोचनात्मक समीक्षा :–

मैकिन्डर की सामरिक परिदृष्टि की समालोचनात्मक समीक्षा के मुख्य बिन्दु निम्न हैं :–

(1) यूरोपीय इतिहास का संघर्ष सदा से मिश्रित प्रकार का रहा है, लेकिन मैकिन्डर ने इसे सीधे तौर पर स्थल शक्ति बनाम सामुद्रिक शक्ति संघर्ष के तौर पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जो वास्तविकता से बिल्कुल विपरीत है।

(2) मैकिन्डर ने धुरी क्षेत्र की संसाधन संभाव्यता का अति आंकलन किया है। उन्होंने "शक्ति संभाव्यता को भौगोलिक क्षेत्र की संसाधन संभाव्यता के साथ एकीकृत कर दिया, जो उचित नहीं है।

(5) महाद्वीपीय आन्तरिक स्थितियों के परिणाम स्वरूप हृदय–स्थल की जलवायु बेहद असुविधा जनक है। भौगोलिक समस्याओं के कारण यह शाश्वत कठिनाइयों का क्षेत्र है अतः यहाँ विकास की प्रक्रिया उसी अनुपात में बेहद खर्चीली है।

(4) हृदय स्थल में गतिशीलता प्रभावशाली नही है।

(5) मैकिन्डर ने 1904 के अपने शोध पत्र में हवाई जहाज के बारे में कुछ नही कहा जब कि इसकी शुरुवात हो चुकी थी।

(6) 1945 में प्रस्तुत मिडलैंड संकल्पना के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मैकिन्डर परिवर्तनशील तकनीकी का वर्तमान राजनीतिक प्रारूपों पर पड़ने वाले प्रभावों और उसमें उनकी नई भूमिका को आँकने में असफल सिद्ध हुए।

(7) जिस 'Leena Land' को मैकिन्डर ने आर्थिक–राजनीतिक महत्वहीन कहा था, उसी लीना लैण्ड का आर्थिक एवं सामरिक महत्व युद्धोपरांत क्रमशः बढ़ने लगा। रूस और चीन के बीच आर्थिक–सामरिक समझौते ने इसके महत्व में और वृद्धि की है।

(8) हृदय क्षेत्र की भ्रामक विशालता (जो मर्केटर प्रक्षेप पर बने मानचित्र है का परिणाम थी।) की इनकी आलोचकों की परिधि में है जिसे बाद में अमरीकी विद्वान वीगर्ट और स्टीफैशन (1944) ने हृदय स्थल को अलग से शीर्ष केन्द्रित समान दूरी वाले प्रक्षेप पर निरूपित करके भ्रांति को उद्घाटित किया था।

सारांशतः, यदि मैकिन्डर को आलोचनाओं के रूप में पत्थर मिले तो प्रशंसा के रूप में फूलों की भी प्राप्ति उन्हें हुई। उनकी हृदय स्थल संकल्पना अपने प्रकाशन की तिथि (1904) से 1990 तक विश्व सामरिक चिंतक का केन्द्र बनी रही। जर्मन भू–राजनीति को भी उसने प्रभावित किया है।

6.6. निकोलस जान स्पाइक मैन की रिमलैण्ड की संकल्पना (1944) :–

येल विश्वविद्यालय के अन्तरर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान के आचार्य व निर्देशक निकोलस जान स्पाइक मैन (1895–1945 ई0) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के कुशल ज्ञाता एवं भू–राजनीति के महान विशेषज्ञ थे। उनकी अपनी पुस्तक 'The Geography of Peace' जो उनकी मृत्यु के बाद 1944 में प्रकाशित हुई, वास्तव में मैकिंडर के विचारों की विस्तृत समीक्षा के उद्देश्य से लिखी गई थी। पुस्तक में व्यक्त उनके समीक्षात्मक विचार ही बाद में ''रिमलैण्ड (उपान्त क्षेत्र) संकल्पना' के नाम से प्रसिद्ध हुए **(चि०सं० 6.5)**।

स्पाइक मैन ने अपनी पुस्तक में मैकिन्डर के हृदय स्थल सम्बन्धी संकल्पना की समीक्षा करते हुए उनकी मूलभूत भौगोलिक व ऐतिहारिक मान्यताओं को तो स्वीकार किया लेकिन मैकिन्डर द्वारा प्रतिपादित सामरिक परिदृष्टि के नि"क"र्षों से अपनी असमति प्रकट की। उनकी असहमति के कई कारणों में दो कारण प्रमुख थे।

प्रथम :– भौगोलिक बाधाओं, कठिन जलवायु, विरल प्राकृतिक संसाधनों एवं यातायात के समुचित साधनों के अभाव आदि के कारण हृदय स्थल का विश्व शक्ति के रूप में विकसित होने में संदेह है;

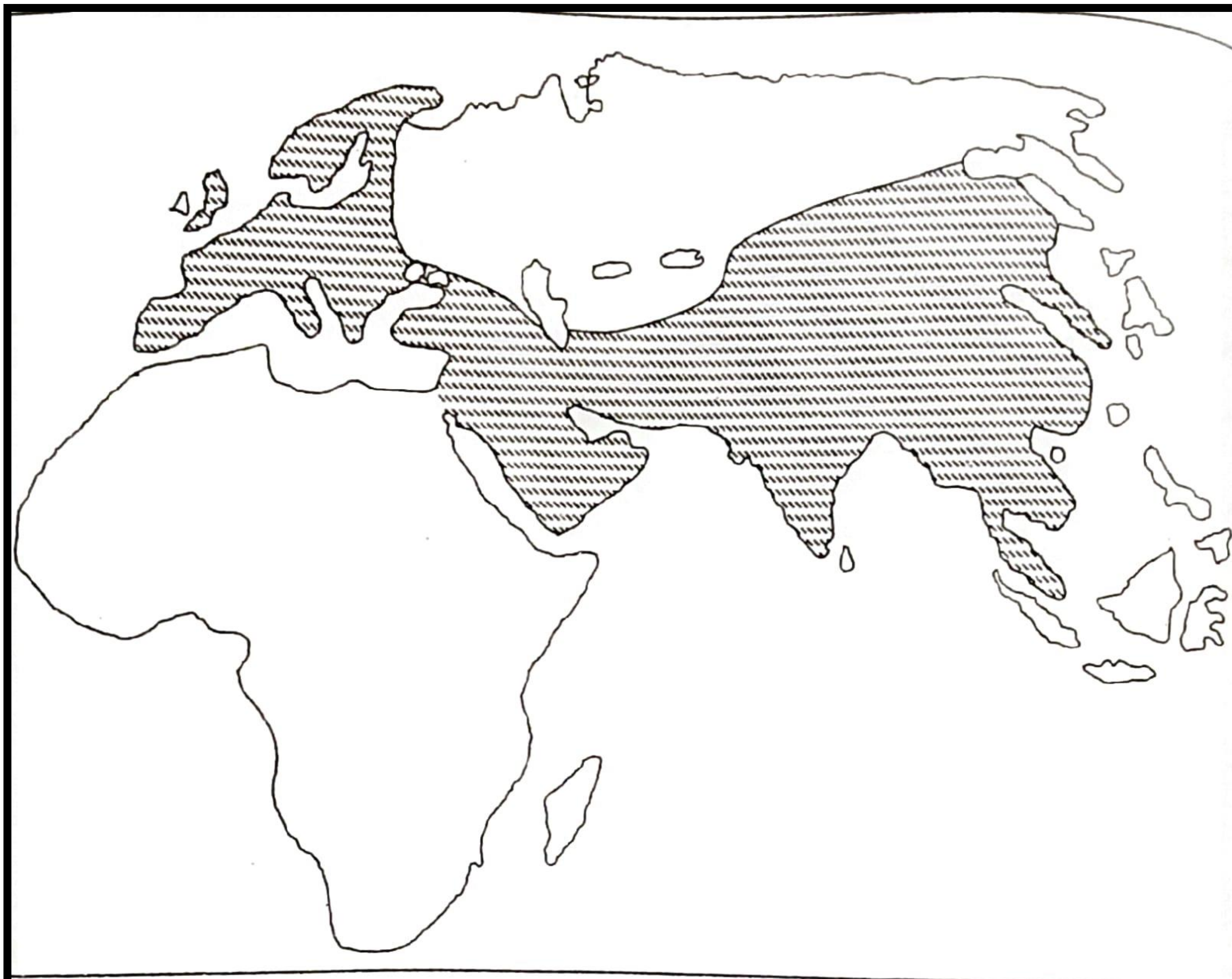

चित्र• 6•3 स्पाइकमैन का रिमलैण्ड (1944)

द्वितीय:– कम कृषि उत्पादकता के कारण हृदय स्थल एक बड़ी जनसंख्या के भरण–पोषण में सक्षम नहीं है। यहाँ औद्योगिक विकास की संभावनाएं भी काफी क्षीण है।

उपरोक्त तर्को के परिपेक्ष्य में स्पाइक मैन ने 'हृदय–स्थल' की अपेक्षा यूरेशिया के परिधीय क्षेत्र' को अधिक महत्व प्रदान किया जो वास्तव में मैकिंडर का 'आन्तरिक या सीमावर्ती अर्द्धचन्द्राकार वृत्त' है जिसे स्पाइक मैन ने

"आंशिक रूप से स्थलीय और आंशिक रुप से समुद्रिक'' पेटी के रूप में स्वीकार किया है और उसे 'Rimland' (उपान्त क्षेत्र) की संज्ञा दी है। स्पाइक मैन के रिमलैण्ड' में बाल्टिक और कालासागर, इस्थुमस के पश्चिम स्थित प्रायः पूरा महाद्वीपीय यूरोप, एशिया के पर्वतीय, द० पश्चिमी, दक्षिणी और द० पूर्वी क्षेत्र तथा चीन शामिल थे। स्पाइक मैन का दृढ़ मत था कि उत्तर कोलम्बस काल में सामुद्रिक शक्ति का व्यापक वर्चस्व निर्विवाद है। वर्तमान विश्व राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय सामरिक सम्बन्धों का मूल आधार आज भी सामुद्रिक सामर्थ्य में निहित है न कि हृदय स्थल में विकास की भावी संभावनाओं में अपने इस दृढ़ मत के आधार पर एवं मिडलैण्ड' की शक्ति, सामर्थ्य एवं सामरिक महत्व का आंकलन करते हुए स्पाइक मैन ने बताया कि पुराने विश्व की शक्ति राजनीति के लिए अगर कोई कथन सही है, तो वह यह है :–

''जो रिमलैण्ड को नियंत्रित करेगा, वह यूरेशिया पर शासन करेगा, जो यूरेशिया पर शासन करेगा, वह विश्व के भाग्य का निर्णय करेगा।''

स्पाइक मैन का यह भी कहना था कि अमेरिका की नीति रिमलैण्ड पर अधिकार करने की होनी चाहिए अथवा कम से कम अपने नियंत्रण को सोवियत संघ से संरक्षित करना चाहिए।

6.6.1 रिमलैण्ड संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन :–

स्पाइक मैन की "रिमलैण्ड संकल्पना' में कई कमजोर बिंदु हैं, जैसे :–

1. रिमलैण्ड कोई एक भौगोलिक इकाई नहीं है। यह भौगोलिक विविधताओं का सार संग्रह है, तथा इसमें अनेक भाषा–भाषी, धर्म एवं जाति के लोग निवास करते है जिनमें स्वाभाविक एकता का भाव असंभव है।
2. रिमलैण्ड में अनेक राज्य है जो राजनीतिक विविधताओं से युक्त है। ये सभी देश एक शक्ति के नियंत्रण में नहीं आ सकते।
5. रिमलैण्ड सुरक्षात्मक दृष्टि से कमजोर है। इस पर दोनों ओर (हृदय स्थल की ओर से एवं (सागरीय क्षेत्रों की ओर से) से आक्रमण किया जा सकता है। अतः यह विश्व शक्ति नहीं बन सकता।

6.7. अलेक्जेण्डर पी०डी० सेवेरस्की की वायु शक्ति संकल्पना :–

सन् 1894 में रूस में जन्मे, पले, बढ़े और रूसी वैमानिकी सैनिक स्कूल से शिक्षा प्राप्त अलेक्जेण्डर पी०डी० सेवेस्की (1894–1974) अभियांत्रिक योग्यता से सम्पन्न हवाई युद्ध कला के एक महान् रणनीतिक विशेषज्ञ थे। रूसी नौसैनिक विभाजन मिशन के सदस्य के रूप में 1918 स0रा0 अमेरिका आए सेवेरस्की ने 1927 में अमेरिकी नागरिकता प्राप्त की और अमेरिका वायु सेना में मेजर के रूप में कमीशन प्राप्त किया सेवेरस्थी अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो रूस व स0रा0 अमेरिका की वायुशक्ति से परिचित थे, इसलिए उन्होने दोनों देशों 'के सन्दर्भ में ही अपनी वायुशक्ति संकल्पना की रूपरेखा प्रस्तुत की। सेवेस्की ने तीन महत्व पूर्ण पुस्तकों की रचना की–

(1) Victory through Air Power (1942),

(2) Air Power Key to Survival (1950), एवं

(5) America: too young to Die (1961) | अपनी प्रथम पुस्तक (Victory through Air Power) में उन्होंने युद्ध में वायु शक्ति की भूमिका पर जोर दिया और स्थल सेना और नौसेना को वायुसेना का अधीनस्थ कहा इसी पुस्तक में उन्होंने वायुसेना के आधुनिकीकरण के लिए 1 सूत्री फार्मूला प्रस्तुत किया।

सेवेरस्की ने अपनी दूसरी पुस्तक (Air Power:Key to Survival) में अपने 1 सूत्री फार्मूले को एक संकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया। अपने संकल्पनात्मक विचारों को स्पष्ट करने के लिए सेवेरस्की ने उत्तरी ध्रुव पर केन्द्रित समान दूरी वाले एजिमुथल प्रक्षेप' का प्रयोग किया जिसमें ''उत्तरी ध्रुव केन्द्र में तथा सोवियत संघ वायु प्रभाव क्षेत्र' एवं 'संयुक्त राज्य वायु प्रभावक्षेत्र एवं संयुक्त राज्य वायु प्रभावक्षेत्र उसके दोनों ओर हैं। दोनों राज्यों के वायु प्रभुत्व क्षेत्रो का प्रदर्शन उन्होने निर्णय क्षेत्र (Arex of Decision) की संज्ञा दी जहाँ वायुशक्ति भी कुशलता के आधार पर ही निर्णय संभव था। सेवेरस्की के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका को अपनी सामरिक शक्ति परीक्षण में उसकी विजय के बारे में किसी प्रकार का सन्देह ने रहे। वस्तुतःपी0डी0 सेवेरस्की की यह संकल्पना अमेरिकी आवश्यकता के अनुरूप थी (चि0सं0–6.4)

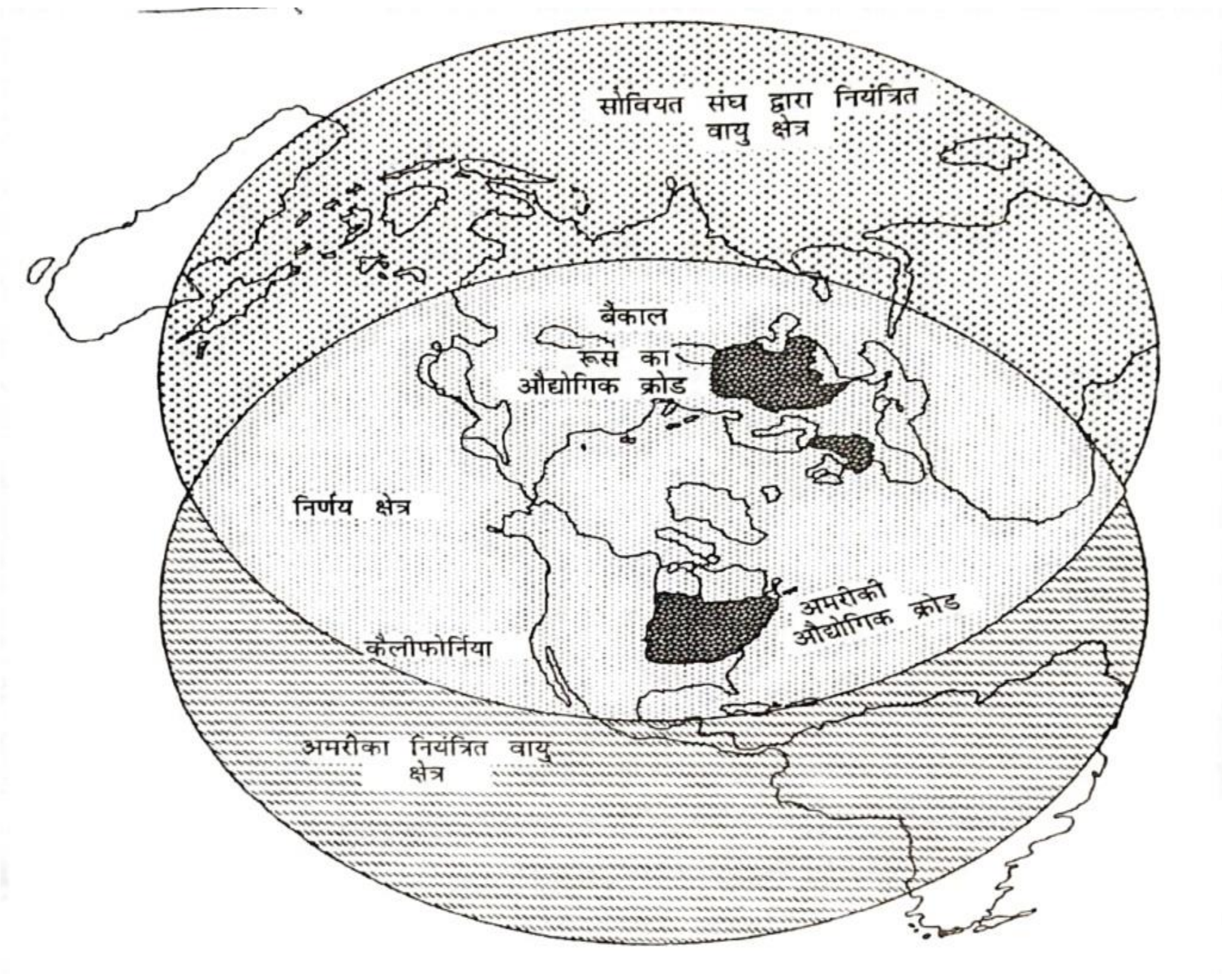

चित्र : 6.4 डी० सेवेरस्की की वायु युद्ध कला का सामरिक परिदृश्य (1950)

6.7.1 वायुशक्ति संकल्पना का समालोचनात्मक मूल्यांकन

1. **एस० बी० जोन्स के अनुसार** – अन्तर्महाद्वीपीय मिसाइल, आणविक शक्ति एवं उपग्रह प्रणाली के विकसित हो जाने के बाद वायु शक्ति पर निर्भर रहना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।'
2. **बन्दी के अनुसार** – किसी देश का शक्ति सामर्थ्य केवल सैन्य शक्ति पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अधिकाधिक देशों को अपने पक्ष में कैसे किया जाय, इस पर निर्भर करता है।
5. हवाई बमबारी के विरुद्ध जिस रक्षा प्रणाली का जिक्र सवेस्की ने किया है, उसकी विश्वसनीयता पर राजनीतिक विश्लेषकों को संदेह है।
4. वर्तमान युग में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आए क्रान्तिकारी परिवर्तनों ने सेवेरस्की की भी संकल्पना की विश्वसनीयता काफी घटा दी है और इस सिद्धांत को पुराना बना दिया है।
5. सेवेरेस्की ने अन्तरर्राष्ट्रीय राजनीति को पूरी तरह दो महाशक्तियों के बीच के सीधे संघर्ष के रूप में देखने का प्रयास किया है, जो उचित नहीं है।
6. शीतयुद्ध के युग में दोनो महा शक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की पहरेदार अवश्यथी परन्तु उसका केन्द्र नहीं। हाँ दोनों भी मानसिकताएं संकल्पना के अनुरूप अवश्य थी।

6.8 सॉल बी० कोहेन का भूसामरिक एवं भूराजनीतिक प्रदेश मॉडल :—

1950 ई0 के बाद परिवर्तनशील अन्तरर्राष्ट्रीय परिवेश और बहुनाभीय सामरिक परिदृष्टि में उभरते हुए तटस्थ भू–दृष्य को ध्यान में रखकर अमेरिकी भूगोल विद् एस० बी० कोहेन ने एक नई सामरिक संकल्पना अपनी पुस्तक Geography and Polities in a Divided World (1965) में प्रस्तुत की। कोहेन की मान्यता थी कि, स्थल शक्ति – सामुद्रिक शक्ति संघर्ष की स्थिति को देखते हुए नियंत्रण की नीति कारगर नहीं हो सकती। गति आधारित रण क्षेत्र की एकता भी सम्पूर्ण नहीं हो सकती, कारण कि वे रणक्षेत्र विभाज्य है। मौलिक रूप से विभाजित विश्व में अलग–अलग रणक्षेत्र है। अपनी इन्हीं मान्यताओं के आधार पर कोहेन ने अपने सैनिक रूप से प्रत्यास्थ एवं भौगोलिक रूप से संवेदनशील मॉडल में विश्वस्तरीय विभाजन के लिए 'भू–सामरिक प्रदेश' एवं प्रादेशिक विभाजन के लिए भू–राजनीतिक प्रदेश' शब्दावली का चयन किया। कोहेन के मॉडल के अनुसार राजनीतिक दृष्टि से विश्व को दो प्रकार के क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है– (1) भू–सामरिक, भू–राजनीतिक भू–राजनीतिक प्रदेश सामरिक प्रदेश के उप विभाग जो भौगोलिक लक्षणों की एकता को अभिव्यक्त करते हैं। **(चि0 सं0 6.5)** कोहेन के भू–सामरिक व भू–राजनीतिक प्रदेशों का विवरण निम्नवत् है–

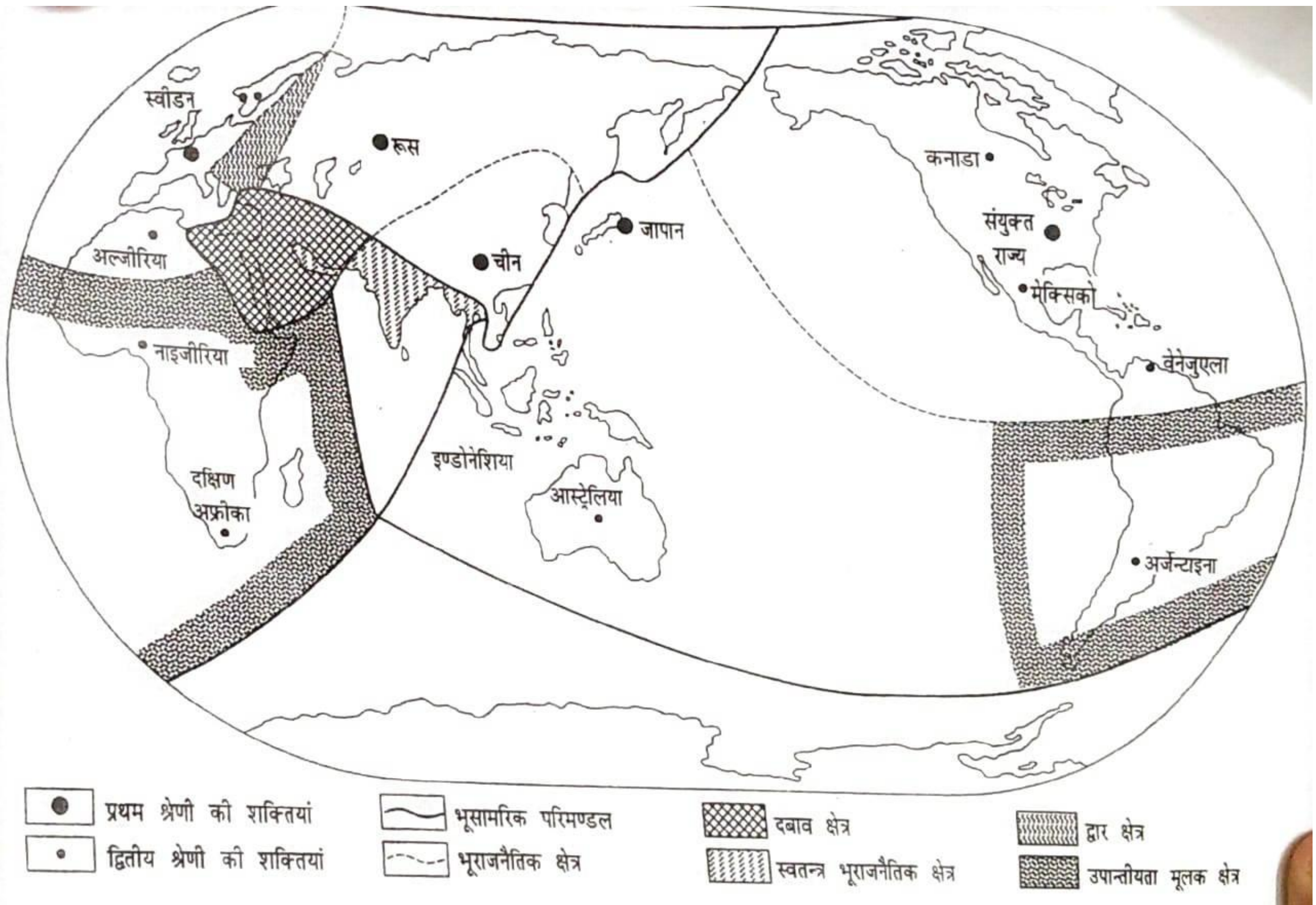

चित्र : 6.5 कोहेन (1991) द्वारा प्रतिपादित भूसामरिक परिमण्डल और भूराजनैतिक क्षेत्र संकल्पना *(दीक्षित, 1994 से साभार उद्धृत)*।

भू–सामरिक प्रदेश भू–राजनीतिक प्रदेश

(अ) व्यापार आधारित सागरीय विश्व

(i) सागरीय रोव

(ii) एंग्लो अमेरिका तथा कैरीबियन

(iii) दक्षिणी अमेरिका

(iv) सहारा के दक्षिण स्थित अफ्रीका

(v) सागर तटीय एशिया

(vi) ओषेनिया–आष्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड

(ब) यूरेषियन महाद्वीपीय 'ाक्ति

(vii) हृदय स्थल एवं पूर्वी यूरोप

(स) खंडित पेटियाँ (षैटर बेल्ट्स)

(viii) मध्य–पूर्व एशिया

(ix) दक्षिण–पूर्व एशिया

(द) हिन्द महासागर से घिरा द0 एशियाई पठार

(x) दक्षिण एशिया

6.8.1 मॉडल में प्रथम संशोधन (1982) :–

मॉडल का प्रथम स्वरूप प्रस्तुत करने के बाद धीरे–धीरे कोहेन ने अनुभव किया कि द्विध्रुवीय अन्तर्रा"ट्रीय राजनीति के बावजूद विश्व राजनीति उत्तरोत्तर एक बहुनाभीय प्रक्रिया बन गई थी; अतः 1982 में उन्होंने अपने मॉडल में संशोधन किया। उनके संशोधन के अनुसार–

(i) मूल मॉडल के भू–राजनीतिक प्रदेश प्रथम श्रेणी के बहुशक्ति केन्द्र है; ये ही इनके विभाजन के आधार हैं।

(ii) चीन, जापान तथा यूरोप द्वितीय श्रेणी के भू–राजनीतिक प्रदेश हैं जो नये विश्वशक्ति केन्द्र के रूप में उभरे हैं। भारत, ब्राजील तथा नाइजीरिया की भी द्वितीय श्रेणी के शक्तिकेन्द्र के रूप में उभरने की संभावना है। रोहेन ने ऐसे 215 राज्यों की सूची प्रस्तुत की है।

(iii) इसके बाद उन्होने तृतीय, चतुर्थ और पंचम श्रेणी के राज्यों सूची बद्ध किया है।

(iv) सहारा के स्थिति द० अफ्रीका को तीसरी खंडित पेटी (षैटर बेल्ट) के रूप में मान्यता प्रदान थी।

6.8.2 मॉंडल में द्वितीय संशोधन (1991):–

बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य (1990 में सोवियत संघ के विघटन और वारसा संधि की (समाप्ति) को ध्यान में रखकर कोहेन ने 1991 में पुनः अपने मॉडल में संशोधन किया जो शीत युद्ध के बाद की स्थिति के अनुरूप था। इस संशोधन में उन्होंने विश्व राजनीतिक परिदृश्य को चार श्रेणियों में विभक्त किया – (i) भूसामरिक परिमण्डल, **(ii)** भूराजनीतिक क्षेत्र, **(iii)** राष्ट्रीय इकाइयाँ, एवं **(i v)** द्वारा राज्य क्षेत्र **(Galaway Territories)**। यह अंतिम श्रेणी कोहेन के चिंतन का नया पक्ष है। उनके अनुसार– द्वार राज्य क्षेत्र विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के अंग हैं और मिन्न–भिन्न पड़ोसी इकाइयों के बीच सम्पर्क के महत्वपूर्ण माध्यम है। ये कालान्तर में स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व प्राप्त कर सकते हैं और विश्व राजनीति को स्थायित्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अपने इस संशोधन में कोहेन ने यह भी स्पष्ट किया कि प्रायः द्वितीय श्रेणी की भू–राजनीतिक शक्तियाँ एक–दूसरे के सामरिक परिमण्डल में व्याप्त रहती हैं लेकिन तीन क्षेत्र इस नियम के अपवाद है– **(i)** दक्षिण एशिया, (जो एक पृथक भू–राजनीतिक क्षेत्र बन गया है; **(ii)** द0प0 एशिया, जो दो प्रधान परिमंडलो के मध्य एक दबाव क्षेत्र है, **(iii)** मध्य और पूर्वी यूरोप, जो एक पारगम्य परिवर्तनशील क्षेत्र है।

6.8.3 भू–सामरिक एवं भू–राजनीतिक प्रदेश मॉडल का (समालोचनात्मक मूल्यांकन) :–

1. यह स्थाई नहीं बल्कि परिवर्तनशील मॉडल है, जिसमें निरंतर संशोधन आवश्यक रहेगा।

2. भू–सामरिक प्रदेशों की सीमाओं को लेकर भी विवाद हो सकता है।

5. कोहेन के विचरों में तटस्थता नहीं है। इनमें राष्ट्रीय तरफदारी की गंध आती है।

4. इनके मॉडल में घेरे बन्दी की नीति का यद्यपि कि आंशिक समर्थन है, लेकिन यह विश्व संघर्ष को प्रोत्साहित कर सकता है।

6.9 सारांश :–

आपने इस इकाई में भू–राजनीति की मूल भावना तथा उसके संकल्पनात्मक विकास का विस्तार से अध्ययन किया है। इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने यह जाना कि जैविक राज्य विचारधारा' ने किस प्रकार जर्मन भूराजनीति को प्रभावित किया और तत्कालीन शासकों की सोच को बदल कर रख दिया। सामुद्रिक शक्ति अवधारणा, हृदयस्थल संकल्पना, मिडलैण्ड बेसिन संकल्पना, रिमलैण्ड संकल्पना, वायुशक्ति संकल्पना एवं भू–सामरिक तथा भूराजनीतिक प्रदेश मॉडल के अध्ययनों से निश्चित रूप से आपके भू–राजनीतिक ज्ञान में वृद्धि हुई होगी और आपको यह समझने में मदद मिली होगी कि स्थलीय, सामुद्रिक एवं वायु शक्तियाँ वैश्विक भू–राजनीतिक एवं भूसामरिक सोंच पर अपना गहन प्रभाव डालने में बेहद सक्षम होती है।

6.10 शब्द सूची :–

धुरी	Pivot	भू–राजनीति	Geo-Politics
जैविक राज्य	Organic state	मिथ्या प्रचार	Propaganda
हृदय स्थल	Heart Land	भू–सामरिकता	Geo-strategy
समुद्रिक 'ाक्ति	Sea Power	वायु 'ाक्ति	Air Power
अर्धचन्द्राया वृत्त	Crescent	सीमावर्ती	Marginal
द्वीपीय	Insular	अन्तर्महादीपीय	Intercontinental

6.11. स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर :–

स्वमूल्यांकन प्रश्न :–

1. Democratic Ideals and Reality' पुस्तक के लेखक हैं–

(अ) एख०बी० कोहेन **(ब)** मैकिन्डर **(स)** पी.डी. सेवेरस्की **(द)** ए.टी. महान

2. विश्व सामरिक मॉडल के जनक हैं–

(अ) ए0टी0 महान **(ब)** एस0बी0 कोहेन **(स)** पी0डी0 सेवरेस्की **(द)** मैकिन्डर

3. अल्फ्रेड थेयर महान ने जो सामरिक दृष्टिकोण दिया, वह है–

(अ) वायु शक्ति **(ब)** स्थल शक्ति **(स)** सामुद्रिक शक्ति **(द)** उक्त सभी

4. एस0बी0 कोहेन द्वारा का प्रतिपादित विश्वप्रदेश हैं–

(अ) भू–सामरिक प्रदेश **(ब)** भू–आर्थिक प्रदेश **(स)** भू–गर्मिक प्रदेश **(द)** उक्त सभी

5. एच०जे० मैकिन्डर ने अपना विश्व सामरिक मॉडल विभिन्न संशोधनों के साथ प्रस्तुत किया–

(अ) एक बार **(ब)** दो बार **(स)** तीन बार **(द)** चार बार

आदर्श उत्तर –

1. (ब) ; **2.** (द); **3.** (स); **4.** (अ); **5.** (स)

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें :–

de Seversky, (1942): Victory Through Air Power'', New York, Simon and Schuster.

de Seversky, A- (1950) : Air Power : Key to Survival, Newyork Simon and schuster.

Kohen, S.B., (1965) : Geography and Politics in a Divided World, New York Randsome House.

Mackinder, H.J., (1904) The Geographical Pivot of history, Geos. Jour., 25: pp. 421–4515.

Mackinder, H.J. (1919): Democratic Ideals and Reality'; Constable & Co., London

Mackinder, H.J., (1945): The Round World and the Winning of The Peace, Foreign Affairs, 21, pp. 595–605

Mahan, AT, (1890) The Influence of Sea Power upon thistory: 260–11585, Bostan, Little Brown & Co.

Pearcy, G.E.etal., (1959). ''World Political Geography, Geography; Thomas V. Crowell Co., New York.

Spykman, NJ., (1944): The Geography of Peace', Hast court Brace and World, New York,

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु :–

1. हृदय–स्थल परिकल्पना का मूल उद्देश्य क्या है?
2. कोहेन द्वारा प्रतिपादित भू–सामरिक प्रदेशों के नाम लिखिए।
3. मैकिन्डर के विश्व सामरिक मॉडल' की वर्तमान वैश्विक राजनीति में प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए।
4. स्पाइक मैन की रिमलैण्ड विचार धारा का विश्लेषण कीजिए।

5.सेवेरस्की के भू–सामरिक विचारों की समीक्षा कीजिए।

इकाई–7

रोस्टोव का आर्थिक वृद्धि सिद्धान्त, स्मिथ का स्थानिक सीमा का सिद्धान्त

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 रोस्टोव का आर्थिक वृद्धि सिद्धान्त

7.4 स्मिथ का स्थानिक सीमा सिद्धांत

7.5 सारांश

7.6 परीक्षोपयोगी प्रश्न

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 महत्वपूर्ण पुस्तकें/संदर्भ ग्रंथ

7.1 प्रस्तावना :–

आर्थिक विकास क्या है?, आर्थिक विकास के कारक कौन–कौन से हैं?, आर्थिक विकास की अवस्थायें कितनी हो सकती हैं। इन सबको समझने के लिए रोस्टोव का आर्थिक वृद्धि सिद्धान्त और स्मिथ का स्थानिक सीमा का सिद्धान्त पढ़ने के बाद इस विषय पर विद्यार्थी तथ्यात्मक अध्ययन का विश्लेषण कर पायेंगे।

7.2 उद्देश्य :–

आर्थिक विकास का अर्थ विकास की अवस्थायें व पथ को समझने के साथ–साथ

1. रोस्टोव के आर्थिक विकास के 5 चरणों को अच्छी तरह से समझ सकेंगे।
2. रोस्टोव के अलावा स्मिथ के स्थानिक सीमा सिद्धांत के बारे में अध्ययन कर सकेंगे कि किस प्रकार स्मिथ ने अपने सिद्धांत के माध्यम से औद्योगिक स्थल का निर्धारण करते समय आर्थिक सीमाओं का स्पष्टीकरण किया है।
3. आर्थिक वृद्धि की अवस्थायें व आर्थिक सीमाओं के बारे में अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होगा।

7.3 रोस्टोव का आर्थिक वृद्धि सिद्धांत :–

रोस्टोव के आर्थिक वृद्धि सिद्धांत के अंतर्गत विकास के चरण मॉडल 20 वीं सदी के सबसे प्रभावशाली सिद्धांतों में से एक हैं।

भूगोलविद प्रायः विकास के पैमाने का प्रयोग कर स्थानों को वर्गीकृत करने का प्रयास करते हैं; तथा प्रायः राष्ट्रों को विकसित और विकासशील, प्रथम विश्व और तीसरा विश्व या केन्द्र और परिधि में विभाजित करते हैं।

इन सभी स्तरों पर आपको किसी देश के विकास का आंकलन करने की आवश्यकता होती है, जिससे प्रश्न उठता है कि वास्तव में "विकसित" होने का अर्थ क्या है? क्यों कुछ देश विकसित हुये और कुछ नहीं?

20वीं सदी की शुरूआत से ही भूगोलवेत्ता और उनके अलावा विकास के अध्ययन में रूचि रखने वाले लोगों ने इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की है और इस प्रक्रिया में, इस घटना को समझाने के लिए अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग मॉडल प्रस्तुत किये।

डब्ल्यू–डब्ल्यू रोस्टोव प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री थे, इन्होनें आर्थिक विकास की अवस्थाओं का विश्लेषण मार्क्स के सिद्धांत के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया।

उन्होनें ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए उसी आधार पर ऐसे मॉडल का प्रतिपादन करने की कोशिश की है, जो सभी अर्थव्यवस्थाओं के विकास पथ की व्याख्या कर सके।

प्रत्येक देश की सामाजिक एवं अन्य परिस्थितियाँ अलग–अलग होती है। उनकी आर्थिक प्रगति हेतु चल रही गतिविधियाँ और परिस्थितियाँ एक दूसरे से भिन्न होती है।

अतः सभी राष्ट्रों के लिए प्रगति की अवस्थाओं को एक ही आधार पर निर्धारित करना बहुत कठिन होता है, फिर भी रोस्टोव ने अपनी पुस्तक "आर्थिक विकास के चरण" 1960 में लिखी जिसमें उन्होंने आर्थिक विकास की पाँच अवस्थाओं का वर्णन किया है।

आर्थिक विकास की पाँच अवस्थाऐं :–

7.3.1 प्रो0 रोस्टोव ने आर्थिक विकास को निम्न पाँच व्यवस्थाओं में वर्गीकृत किया है–

1. परम्परागत समाज की अवस्था
2. उत्थान से पूर्व की दशायें
3. उत्थान अवस्था
4. परिपक्वतोन्मुख अवस्था
5. अत्यधिक उपभोग का युग

1. परम्परागत समाज की अवस्था :–

रोस्टेव के अनुसार इस अवस्था में आर्थिक क्रियाओं का संचालन न्यूटन से पूर्व के विज्ञान एवं तकनीक पर आधारित होता है। विनिर्माण उद्योग छोटे पैमाने पर होता है और उत्पादन प्रणाली रूढ़िवादी तथा प्राचीन तकनीक पर आधारित होती है।

इस अवस्था की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार है :–

(A) आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति सीमित दृष्टिकोण का पाया जाना।

(B) समाज की दशा अत्यंत पिछड़ी।

(C) कृषि प्रमुख व्यवसाय।

(D) उद्योग पिछड़ी अवस्था में।

(E) राज्य की आर्थिक क्रियायें अत्यंत सीमित।

(F) कृषिगत आय तथा बचतों का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों जैसे– युद्धों, खर्चीली शदियों तथा अन्त्येंिटयों आदि में व्यय किया जाता है।

(A) आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति सीमित दृष्टिकोण :– इस अवस्था में समाज के ढ़ाँचे का विकास न्यूटन पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी पर आधारित सीमांत उत्पादन–फलकों के ही भीतर होता है और भौतिक जगत के प्रति न्यूटन पूर्व की मनोवृत्तियाँ पायी जाती है।

(B) समाज की दशा अत्यंत पिछड़ी :– इस अवस्था में समाज अत्यंत पिछड़ी हुयी अवस्था में होता है सभी सामाजिक–आर्थिक कार्य पुरानी या परिम्परिक पद्धतियों के अनुसार संचालित होते हैं। जिसके कारण उत्पादन तथा आय बहुत कम होती है।

(C) कृषि प्रमुख व्यवसाय :– इस अवस्था में कृषि अर्थव्यवस्था की कृषि मूल आधार होती है, अधिकाँश कार्यरत जनसंख्या कृषि में संलग्न है, कृषि ही आय का प्रमुख स्त्रोत होती है। उद्योग धंधे सीमित तथा हस्त उद्योग और कुटीर उद्योग के रूप में पाये जाते हैं।

(D) उद्योग पिछड़ी अवस्था में :– इस अवस्था में कृषि अर्थव्यवस्था की मूल आधार थी, इसलिए उद्योग धंधों का विकास बहुत सीमित था और अगर उद्योग धंधों का विकास हुआ भी तो हस्त उद्योग और कुटीर उद्योग के रूप में पाया जाता है। बृहद उद्योगों का विकास इस समय दिखाई नहीं देता।

(E) राज्य की आर्थिक क्रियायें अत्यंत सीमित :– इस अवस्था में राज्य की आर्थिक क्रियायें अत्यंत सीमित थी, क्योंकि यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के पूर्व की अवस्था परम्परागत समाज का उदाहरण है। आदिम अवस्था से लेकर पशुपालन, आदिम कृषि तथा सामंतवादी अवस्थायें परम्परागत समाज के अंतर्गत ही आती है। जनसंख्या भी अल्प या निम्न स्तर की रहने के कारण आर्थिक क्रियायें अत्यंत सीमित होती है।

(F) कृषिगत आय तथा बचतों का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों में खर्च :– कृषिगत आय तथा बचतों का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्य अर्थात् युद्ध, खर्चीली शादियाँ, अन्त्येष्टियाँ आदि में खर्च किया जाता है अर्थात् उत्पादक के निर्माण व उनकी संस्था में वृद्धि जैसे कार्य बहुत कम होते हैं।

(F) उल्लेखनीय है कि परम्परागत समाज स्थिर समाज नहीं होता बल्कि उत्पादन के स्तर, व्यापार के प्रतिरूप जनसंख्या तथा आय में परिवर्तन लाने की पर्याप्त, संभावनायें उपस्थित होती हैं।

2. उत्थान से पूर्व की दशायें :– आर्थिक विकास की यह अवस्था संक्रमण काल है, यह उत्थान से पूर्व की दशा परम्परागत समाज और उत्थान अवस्था के मध्य संक्रमण स्थिति की परिचायक होती है। जिससे सतत् विकास की पूर्व स्थितियों का निर्माण होता है। इसमें कई प्रकार के आर्थिक तथा गैर आर्थिक (सामाजिक–राजनीतिक) परिवर्तन दिखाई देते है।

गैर आर्थिक परिवर्तनों के अंतर्गत बुद्धिजीवियों का एक वर्ग उदित होता है, जो यह महसूस करता है कि आर्थिक नवीनीकरण प्रगति के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार सामाजिक व मनौवैज्ञानिक परिवर्तन होते है तथा समाज परंपरागत अवस्था के कवच से बाहर निकलकर एक वैज्ञानिक समाज का स्वरूप धारण करते हुए आत्म–स्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश की तैयारी करने लगता है।

उत्थान के पूर्व की दशाओं की विशेषताये :–

1. **कृषि** :– कृषि के क्षेत्र में तकनीकी क्राँति लाने के प्रयत्न जारी रहते हैं– फलतः खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि होती है।

   कृषि का सापेक्षिक महत्व कम होने लगता है और उसके साथ ही साथ शहरी लेख में औद्योगिक कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि होने लगती है।

2. **उद्योग** :– कृषि के विकास के कारण कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि होती है जिसका प्रयोग भिन्न–भिन्न उद्योगों में होने लगता है। इस अवस्था में आधुनिक उद्योग निर्माण कार्य शुरू हो जाते हैं।

3. **जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में पूँजी संग्रह की उच्च दर** :– इस अवस्था में जनसंख्या वृद्धि की दर की अपेक्षा पूँजी एकत्र करने की दर उच्च होने की वजह से औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिलता है। विदेशी पूँजी को आमंत्रित कर आंतरिक बचत के संचय को प्रोत्साहित किया जाता है।

4. **नव प्रवर्तनों का विदोहन** :– नवाचार के माध्यम से आर्थिक क्रियाओं में परिवर्तन और उत्पादन में वृद्धि की संभावनायें बढ़ती है और औद्योगिक कार्यशील जनता की संख्या का अनुपात भी धीरे–धीरे बढ़ने लगता है।

5. **विशिष्टीकरण के लिए श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था** :– उद्योगों में वृद्धि व विकास के लिए श्रमिकों को प्रशिक्षित कर उनके कौशल को बढ़ावा होता है, ताकि दक्ष श्रमिकों के माध्यम से उद्योगों को विकसित कर विस्तार किया जा सके।

6. **विदेशी व्यापार** :– पूँजीगत आयातों का विस्तार होता है और इसका वितरण प्रबंधन प्राथमिक वस्तुओं और प्राकृतिक साधनों के निर्यात् द्वारा किया जाता है।

7. **बड़े पैमाने पर उत्पादन का प्रारंभ** :– धीरे–धीरे कच्चे माल में वृद्धि, प्रौद्योगिक विकास, प्रशिक्षित श्रमिक जैसी सुविधायें उपलब्ध होने के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारंभ होता है।

8. **बैंकिंग, परिवहन व शिक्षा** :– बैंकिंग व्यवस्था, परिवहन, संचार शिक्षा और श्रम की शक्ति में सुधार होने लगता है।

9. **राजनीतिक सत्ता** :– इस अवस्था में भूमिपतियों, जमींदारों का महत्व कम हुआ और प्रजातांत्रिक सरकारें बनने लगती है।

10. **समाज का स्वरूप** :– इस अवस्था में शिक्षा का प्रचार होने से सामाजिक संगठन सुदृढ़ हो जाते है, संक्षेप में कहें तो सामाजिक स्वरूप में अत्यधिक सुधार हो जाता है।

11. **आवश्यक शर्ते** :– रोस्टोव के अनुसार आर्थिक विकास के आवश्यक तत्वों को पैदा करने के लिए कुछ आवष्यक शर्तों का पूरा होना आवश्यक है।

    1. **विनियोग** :– राष्ट्रीय आय का लगभग 5 से 1 प्रतिशत या इससे अधिक का विनियोग होना चाहिए।

    2. **कृषि उत्पादकता** :– कृषि उत्पादकता बढ़नी चाहिए ताकि बढ़ती हुई शहरी व सामान्य जनसंख्या के लिए खाद्यानों की पूर्ति हो सके।

       सामाजिक उपरिव्यय पूँजी :– यातायात एवं सामाजिक सेवाओं के विकास पर कुल विनियोग का बहुत बड़ा भाग खर्च होना चाहिए।

       आधुनिक उद्योग :– आधुनिक उद्योगों का विकास होना चाहिए।

       सामाजिक मूल्य :– सामाजिक मूल्यों तथा दृष्टिकोणों में परिवर्तन होना चाहिए।

       विकास की पहली अवस्था निष्क्रिय है। दूसरी अवस्था इसमें सक्रियता लाती है, जिसके कारण अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

    3. **उत्थान अवस्था** :– यह आर्थिक विकास की लघु कालीन अवस्था होती हैं। जिनमें आर्थिक विकास की गति अत्यंत तीव्र होती है और अर्थव्यवस्था तीव्रता से ऊँचाई की ओर प्रस्थान करती है। यह प्रगति की एक ऐसी अवस्था है जिसमें अर्थव्यवस्था इस योग्य हो जाती है कि वह पूरी तरह आत्मनिर्भर हो जाती है और विकास के कार्यों के लिए आवश्यक सामग्री भी स्वयं उत्पन्न करने की स्थिति में आ जाती है।

       रोस्टोव के अनुसार :– "उत्थान औद्योगिक क्राँति है जो उत्पादन के साधनों पर आमूल परिवर्तनों से प्रत्यक्षतः जुड़ी रहती है जिनका समय की अपेक्षाकृत, लघु अवधि में अपना निर्णायक परिणाम होता है।"

       उत्थान की अवधि लगभग बीस या तीस वर्षों तक रहती है इसमें जो आधुनिक शक्तियाँ हैं, वे प्रचलित परंपराओं तथा संस्थानों के साथ संघर्ष करते–करते इन बाधाओं को पार करके आगे कदम बढ़ाती है।

इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. **कृषि** :– कृषि में नवीन वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपायों का उपयोग किया जाता है जिसके कारण कृषि पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि हो जाती है।

2. **उद्योग** :– उद्योगों में भी नवीन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, जिससे उत्पादन में वृद्धि हो जाती है।

3. **पूँजी विनियोग** :– इस अवस्था में पूँजी विनियोग की दर कुल राष्ट्रीय आय के 1 प्रतिशत से भी अधिक हो जाती है।

4. **समाज का स्वरूप** :– इस अवस्था में शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ, जिसके कारण सामाजिक संगठन सुदृढ़ हो जाते है।

5. **अन्य विशेषतायें** :–

   1. अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर हो चुकी होती है।
   2. विकास के रास्ते खुलते है।
   3. प्रौद्योगिकी और नवाचार विकास में सहायक होते हैं।
   4. आर्थिक विकास की बाधाओं पर नियंत्रण पाकर आर्थिक प्रगति की राह खुलती है।

आवश्यक शर्तें :– प्रो0 रोस्टोव का कहना है कि उत्थान अवस्था अर्थात् आत्मस्फूर्ति की निम्नलिखित शर्तें हैं:–

1. **शुद्ध विनियोग** :– उत्थान अवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है राष्ट्रीय आय में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए, जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो सके।

2. **निदर्शक क्षेत्रों का तीव्र विकास** :– उत्थान की अवस्था में प्रारंभ में कुछ चयन क्षेत्रों में आधुनिक तकनीकों का प्रयोग कर तेजी से विकास होता है।

(A) प्राथमिक विकास क्षेत्र :– इस क्षेत्र में नवाचार तथा संसाधनों के फायदेमंद विदोहन की संभावनाओं के साथ उच्च विकास दर को प्राप्त किया जाता है।

(B) सहायक विकास क्षेत्र :– यह क्षेत्र प्राथमिक विकास के विकसित होने के कारण प्राथमिक विकास के एक आवश्यक अंग के रूप में सहायक विकास क्षेत्र का विकास तीव्रगति से होता है।

(C) व्युत्पन्न विकास क्षेत्र :– इस क्षेत्र में विकास कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय जनसंख्या, औद्योगिक उत्पादन इन सभी में आगे बढ़ते हुये विकास को प्राप्त करने का उद्देश्य रहता है।

रोस्टोव का कहना है कि प्राथमिक क्षेत्र अपने चारों ओर नये उद्योगों का जाल तैयार कर देते हैं जो एक मजबूत आर्थिक पद्धति की शुरूआत है। उदाहरण इंग्लैण्ड में सूती वस्त्र उद्योग के स्थापित होने से अन्य उद्योगों की स्थापना की संभावनायें बढ़ी हैं।

3. **राजनीतिक सामाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन** :– इस अवस्था में राजनीतिक सामाजिक तथा संस्थागत ढ़ाँचे में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप समय के अनुसार बचतों को प्रोत्साहन देने के साथ–साथ विदेशी पूँजी को भी आकर्षित करती है।

तालिका 7.1

रोस्टोव के अनुसार विभिन्न देशों में उत्थान की अवधि

देश	उत्थान की अवधि	देश	उत्थान की अवधि
ब्रिटेन	1783—1802	जापान	1878—1900
फ्राँस	1830—1860	रूस	1890—1914
बेल्जियम	1833—1860	कनाडा	1896—1914
सं0रा0 अमेरिका	1843—1860	अर्जेण्टाइना	1935
जर्मनी	1850—1873	भारत	1952
स्वीडन	1868—1890	टर्की	1973

परिपक्वतोन्मुख अवस्था :– इस अवस्था को स्पष्ट करते हुए रोस्टोव ने लिखा है कि "परिपक्वता की अवस्था यह समयावधि है जिसमें कि समाज महत्वपूर्ण तरीके से आधुनिक टेक्नॉलॉजी को अपने अधिकांश संसाधनों के लिए प्रयोग कर लेता है।

इनका कहना है कि यह अवस्था एक लंबी प्रक्रिया है। एक समाज को परिपक्वतोन्मुख अवस्था तक पहुँचने के लिए लगभग 60 वर्ष का समय लग सकता है पर इस अवधि को लेकर निश्चित रूप से कोई भवि"यवाणी नहीं की जा सकती।

जब कोई देश परिपक्वता की अवस्था में आता है, तो उसमे निम्नलिखित विशेषताएं दिखाई देती हैं:–

1. **कार्य शक्ति**:– कार्य शक्ति की प्रकृति में परिवर्तन होता है, जिसके परिणाम स्वरूप कृषि कार्यों में लगी जनसंख्या का अनुपात घटता जाता है तथा द्वितीयक एवं तृतीयक उद्योगों में इनकी जनसंख्या बढ़ती है और ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों के लिए जनसंख्या का स्थानांतरण तीव्र गति से होता है।
2. **उद्यमता** :– उद्यमता की प्रकृति में परिवर्तन होता है, जिससे कठोर तथा मेहनती मालिकों का स्थान शिक्षित एवं विनम्र प्रबंधकर्ता ले रहे है।
3. **समाज का स्वरूप** :– शिक्षा का विकास होने के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर कम हो जाती है।
4. **पूँजी विनियोग** :– इस अवस्था में पूँजी विनियोग की दर कुल राष्ट्रीय आय की 20 प्रतिषत तक हो जाती है।
5. **अत्यधिक उपभोग का युग** :– यह युग आर्थिक विकास की चरमावस्था है। इसमें अर्थव्यवस्था पूर्णतः आधुनिक होने के साथ देश में उत्पादन का स्तर अत्यधिक ऊँचा हो जाता है। देश में लगभग पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित हो जाती है।

इस अवस्था में किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था निम्नलिखित तीन दशाओं में से किसी भी तरह विकसित राष्ट्र होने की तरफ बढ़ सकती है –

(A) विश्व राष्ट्रों में अधिकतम शक्तिशाली बनने का प्रयत्न किया जाता है।

(B) अधिकतम मात्रा में उपभोग की टिकाऊ वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग होता है।

(C) व्यक्तिगत उपभोगवाद के स्थान पर समाज को सुरक्षा व श्रमकल्याण उपलब्ध कराने की कोशिश की जाती है।

विशेषताएं :– इस अवस्था की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

(A) कृषि :– इस अवस्था में कृषि का पूर्ण विकास हो चुका होता है।

(B) उद्योग :– देश में अनेक आधारभूत।

(C) पूँजी विनियोग :– इस अवस्था में पूँजी–विनियोग की कुल मात्रा 20 प्रतिशत से भी अधिक हो सकती है।

(D) समाज का स्वरूप :– इस अवस्था में समाज में सम्पन्नता व समृद्धि का एक नवीन युग प्रारंभ होता है।

(E) अन्य विशेषताएं :– इस अवस्था की अन्य विशेषताएं इस प्रकार है :–

(a) उपभोग का स्तर उच्चतम होता है।

(b) औद्योगिक जनसंख्या में अचानक वृद्धि हो जाती है।

(c) लगभग पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि –

1. संयुक्त राज्य अमेरिका 1920 में संसाधनों का अत्यधिक उपयोग करने वाला पहला देश था।

2. अत्यधिक उपभोग की अवस्था ग्रेट ब्रिटेन को 1930 में और 1950 में जापान व पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों द्वारा इस अवस्था को प्राप्त किया गया था।

3. साम्यवादी देश इस 1953–55 के आस–पास इस अवस्था को प्राप्त कर सका था।

रोस्टोव के आर्थिक वृद्धि सिद्धांत का आरेखीक प्रदर्शन

विकास की अवस्थाओं का रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण :– विण्डलवर्जर ने रोस्टोव मॉडल की व्याख्या करते हुए आर्थिक विकास की उपर्युक्त 5 अवस्थाओं को एक घुमावदार रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

चित्र में क्षैतिज अक्ष के सहारे समय को तथा उर्ध्वाधर अक्ष के सहारे आय को प्रदर्शित किया गया है। चित्र से स्प"ट है कि आर्थिक विकास की प्रथम अवस्था (परम्परागत समाज) में आय या आर्थिक विकास की प्रथम अवस्था में विकास की गति अत्यंत मंद होती है।

द्वितीय अवस्था (उत्थान पूर्व) में आर्थिक विकास की गति पहली अवस्था की अपेक्षा थोड़ा बढ़ जाती है।

तृतीय अवस्था (उत्थान अवस्था) में विकास की गति एकाएक अत्यंत तीव्र हो जाती है और विकास का वक्र अत्यंत तीव्र हो जाता है।

चतुर्थ अवस्था (परिपक्कोन्मुख अवस्था) में वक्र का ढ़ाल उन्नतोदर होता है तथा विकास दर पहले से तो कम होती है, किन्तु फिर भी ऊँची बनी रहती है।

पंचम और अंतिम अवस्था (अत्यधिक उपभोग करने की अवस्था) में आय उच्च स्तर तक पहुँचकर स्थिर हो जाती है और आय वक्र लगभग क्षैतिज हो जाती है। जो आगे चलकर नीचे की ओर झुक सकती है।

7.6 मूल्यॉंकन :–

रोस्टोव की विकास–अवस्थाओं की आलोचनायें निम्न आधार पर की गयी।

1. **अच्छे सिद्धांत का अभाव** :– विकास की अवस्थाओं का विभाजन कर देने मात्र से कोई अच्छा सिद्धांत प्रस्तुत नहीं होता, बल्कि वह एक प्रसिद्ध लोकघोषणा के लिए ही उपयुक्त है।
2. **परम्परागत समाज की अनुपस्थिति** :– अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैण्ड व आस्ट्रेलिया जैसे अनेक राष्ट्र परम्परागत समाजों से युक्त रहकर उत्पन्न हुये थे।
3. **तर्क का अभाव** :– विकास को विभिन्न अवस्थाओं में दिखाने का कोई महत्वपूर्ण आधार दिखाई नहीं देता।
4. **महत्वपूर्ण तत्व की पहचान की कमी** :– विकास की इन अवस्थाओं में अवस्थाओं की महत्ता को स्पष्ट नहीं किया गया है।
5. **अनिश्चितता** :– इस विभाजन के अनुसार किस अवस्था के बाद कौन सी आयेगी, ये बताया गया है, किन्तु इन अवस्थाओं से यह पता नहीं चलता कि आगे क्या होने वाला है, साथ ही विशाल उपभोग की अवस्था के बाद की चर्चा नहीं की गयी है।
6. **अपूर्ण सांख्यिकीय आधार** :– इनके सिद्धांत के निर्णयों के सांख्यिकीय आधार अपूर्ण है।
7. **आधार का अभाव** :– प्रो0 रोस्टोव ने ऐसा कोई आधार नहीं दिया है, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक अवस्था कब पूर्ण होगी और दूसरी कब शुरू होगी।
8. **दुहरापन** :– जब एक अवस्था दूसरी अवस्था में संक्रमण करती है, तो किसी अवस्था को विशिष्ट अवस्था की श्रेणी में कैसे रखा जा सकता है।
9. **गैर आर्थिक तत्वों की अवहेलना** :– प्रो0 रोस्टोव ने विकास की अवस्थाओं को निर्धारित करने के लिए आर्थिक भौतिक तत्वों को अधिक महत्व दिया है और सांस्कृतिक सामाजिक एवं नैतिक तत्वों के महत्व को उभारा नहीं गया है, जबकि ये विकास में सर्वाधिक अवरोध प्रस्तुत करते हैं।

7.4 स्मिथ का स्थानिक सीमा सिद्धांत

डी0एम0 स्मिथ ने 1971 में प्रकाशित पुस्तक **"इंडस्ट्रियल लोकेशन" (औद्योगिक अवस्थिति)** में वेवर के न्यूनतम लागत सिद्धांत में थोड़ा संशोधन करते हुये औद्योगिक अवस्थिति सिद्धांत प्रस्तुत किया।

उनका उद्देश्य इस सिद्धांत के माध्यम से वास्तविक जगत में औद्योगिक स्थल का निर्धारण करते समय अर्थात् औद्योगीकरण स्थानीयकरण के समय आर्थिक सीमाओं का स्पष्टीकरण किया जा सकें।

स्मिथ ने अपने सिद्धांत के स्पष्टीकरण हेतु स्थानिक लागत वक्र तथा क्षेत्रीय आय वक्र का सहारा लिया।

स्मिथ का सिद्धांत मूलतः वेबर के सम परिवहन लागत रेखा (आइसोडापेन) विधि पर ही आधारित है। अन्तर केवल यह है कि उन्होंने परिवहन लागत के स्थान पर कुल लागत को लेकर समलागत रेखाएँ बनाया है।

स्थानिक लागत वक्र उत्पादन के साधनों को एकत्रित करने तथा उत्पादन प्रक्रिया में होने वाले खर्च को प्रदर्शित करती है जो दिए हुए बिन्दु से दूरी के अनुसार बदलती रहती है।

स्थानिक आय वक्र किसी बिन्दु से दूरी में वृद्धि के साथ निर्मित वस्तु की माँग या आय में भिन्नता को दर्शाती है। कुल लागत और कुल व्यय की अंतक्रिया से औद्योगिक स्थानीयकरण का निर्धारण होता है।

उद्योग को स्थापित करने के लिए वह स्थल सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक उचित माना जाता है। जहां कुल खर्च की तुलना में कुछ आय अधिकतम हो।

अतः कारखाना उस बिन्दु पर स्थापित किया जायेगा, जहां अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। अधिकतम लाभ वहां प्राप्त होगा, जहां कुल लागत का धनात्मक अंतर (कुल आय – कुल लागत) सर्वाधिक होता है।

स्मिथ ने उद्योग की उपयुक्त स्थिति के निर्धारण हेतु स्थानिक सीमाओं का उपयोग किया है। अतः इनके सिद्धांत को स्थानिक "सीमा के सिद्धांत" के नाम से जाना जाता है।

स्मिथ की स्थानिक सीमा तथा उसके अंर्तगत उद्योग की स्थापना के लिए स्थल चुनने की प्रक्रिया को **चित्र 7.2** से दर्शाया गया है।

चित्र 7.2 लाभ की स्थानिक सीमा

स्थानिक सीमा, बिन्दु के बिन्दु पथ (मार्ग) द्वारा निर्मित होती है। जहां किसी उत्पादित वस्तु पर किया गया खर्च उस वस्तु के विक्रय से प्राप्त होने वाली आय के बराबर होता है।

यह उस क्षेत्र को प्रदर्शित करता है, जिसके भीतर उद्योग (कारखाना) स्थापित करना लाभप्रद होता है।

फायदे को ध्यान में रखकर स्थानिक सीमा, सीमा संकल्पना का प्रतिपादन सर्वप्रथम रोस्टोव ने 1958 में किया था। यह किसी भूगोलवेत्ता के द्वारा प्रतिपादित भौगोलिक आर्थिक संकल्पनाओं में से एक है। वर्तमान समय में स्थानीय सीमा औद्योगिक अवस्थिति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इसका महत्वपूर्ण घटक बन गयी है।

चित्र 7.2 में क्षैतिज दूरी के सहारे स्थानिक लागत के वक्र को दिखाया गया है। स्थानिक लागत वक्र कुल लागत को और स्थानिक आयवक्र कुल आय को प्रदर्शित करता है। X और X_1 बिन्दुओं पर कुल लागत और कुल आय समान है। जब इसको दूरी अक्ष में प्रक्षेपण किया जाता है। तब क्षैतिज अक्ष पर M और M_1 दो बिन्दु प्राप्त होते है, जो लाभ की स्थानिक सीमा को इंगित करते है।

इन बिन्दुओं के मध्य जो स्थान स्थित है। उनकी कुल आय कुल खर्च से अधिक है। अब इसके भीतर किसी भी बिन्दु पर कारखाने को स्थापित करने से उद्योगपति को थोड़ा बहुत लाभ तो अवश्य होता है, किन्तु स्थानिक सीमा से बाहर कुल आय कुल लागत से कम प्राप्त होती है जिसके कारण उद्योगपति का नुकसान होगा।

वैसे तो स्थानिक सीमा के भीतर कहीं भी उद्योग स्थापित करने से उद्योगपति को लाभ होता है, किन्तु चित्र में प्रदर्षित O बिन्दु स्थिति सबसे अच्छी है, क्योंकि इस स्थान पर उद्योग को स्थापित करने पर सर्वाधिक लाभ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है।

इस स्थिति में कुल आय अधिकतम और कुल लागत न्यूनतम होती है, जिसके फलस्वरूप कुल लाभ अधिकतम होता है। यदि कोई उद्योगपति अपनी व्यक्तिगत कुशलता व दक्षता की वजह से O बिन्दु से हटकर भी स्थानिक सीमा के भीतर (M और M_1) के मध्य अन्य किसी स्थान पर भी उद्योग स्थानित करता है, तो वह लाभ कमाता है।

इस प्रकार उद्योगपति औद्योगिक स्थिति का चयन स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता है।

स्थानिक सीमा की आकृति तथा विस्तार में वर्तमान लागत और आय तल के अनुसार भिन्नता पायी जाती है।

स्थानिक लागत वक्र और स्थानिक आय वक्र की प्रवणता (ढाल कोण) जितनी विस्तृत होगी, औद्योगिक अवस्थापना की सीमाएं उतनी ही छोटी होंगी।

इसके विपरीत जिस उद्योग में लागत और आय में स्थानिक भिन्नता कम पायी जाती है, उसके स्थानीयकरण की सीमाएं उतनी बड़ी और विस्तृत होंगी और अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र में उद्योग को कही भी स्थापित किया जा सकता है।

स्थानिक सीमाओं के बाहर कारखाना स्थापित करना तभी फायदेमंद हो सकता है। जब किसी कारण से लागत में कमी लायी जा सके और लागत वक्र की प्रवणता में कमी आ सके। उदाहरण स्वरूप यदि कोई उद्योगपति अपनी कार्य कुशलता या व्यवसायिक दक्षता से लागत में कमी ला सके तो उसके लिए स्थानिक सीमाएं पहले से अधिक दूरी तक हट जायेंगी।

व्यावसायिक कुशलता की भांति ही उद्योगों के एकत्रीकरण, बडे पैमाने पर उत्पादन, लागत तत्वों में प्रतिस्थापन (विकल्प के माध्यम से) आदि के द्वारा लागत वक्र की प्रमाणिता में कमी लायी जा सकती है और स्थानिक सीमा का विस्तार किया जा सकता है। इसी प्रकार स्थानिक आय वक्र की प्रवणता में परिवर्तन लाया जा सकता है।

7.5 सारांशः–

1. व्यवहारिक जगत में स्थानिक सीमाओं का अनुभाविक निर्धारण कठिन है, क्योंकि सिद्धांत को व्यवहार में लाने का सुखद संयोग स्थापित होना बहुत दुरूह होता है, किन्तु इसे असम्भव भी नहीं कहा जा सकता।
2. माँग की स्थानिक भिन्नता का विश्लेषण तथा उसकी स्थानिक आय वक्र की प्रवणता के निर्धारण हेतु समन्वयन अधिक जटिल है।

फिर भी स्मिथ द्वारा प्रस्तावित उद्योग के लिए लाभप्रद स्थिति, सीमा निर्धारण और विभिन्न कारणों से उत्पन्न सीमा के प्रसार एवं संकुचन तथा सीमा से बाहर विलग औद्योगिक अवस्थिति के प्रादुर्भाव आदि व्यवहारिक पक्षों को समझने के लिए निष्चय ही महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है।

अतः यदि व्यवहार में इस प्रकार की स्थानिक सीमाएं नहीं प्राप्त हो सकती, तो भी औद्योगिक अवस्थिति के सैद्धान्तिक विवेचन में इसके विस्तार और संकुचन की मात्रा को उपयोगी एवं सहायक उपकरण के रूप में प्रयास किया जा सकता है।

7.6 परीक्षोपयोगी प्रश्न :–

(1) डब्ल्यू–डब्ल्यू रोस्टोव किस देश के निवासी थे?

(A) इंग्लैण्ड **(B)** फ्राँस

(C) अमेरिका **(D)** रसिया

(2) रोस्टोव ने आर्थिक विकास की अवस्थायें बतायी?

(A) चार **(B)** पाँच

(C) तीन **(D)** छः

(3) रोस्टोव की पुस्तक है–

(A) आर्थिक विकास के मूल तत्व **(B)** आर्थिक विकास के स्तर

(C) आर्थिक विकास के चरण (D) आर्थिक विकास के आयाम

(4) रोस्टोव के अनुसार परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में–

(A) उद्योग प्रगति की अवस्था में थे। (B) उद्योग संक्रमण काल में थे।

(C) उद्योग वृद्धि कर रहे थे। (D) उद्योग पिछड़ी अवस्था में थे।

(5) रोस्टोव के अनुसार आर्थिक विकास में सं0रा0 अमेरिका की उत्थान अवधि थी।

(A) 1843–1860 (B) 1783–1802

(C) 1850–1873 (D) 1896–1914

(6) "इंडस्ट्रियल लोकेशन" पुस्तक के रचयिता है।

(A) क्रिस्टालर (B) रोस्टोव

(C) डी0एम0 स्मिथ (D) बाउडेविले

(7) डी0एम0 स्मिथ के अनुसार उद्योगों की अवस्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका है।

(A) कच्चे माल की प्राप्ति (B) औद्योगिक स्थानीयकरण में सीमाओं का स्प"टीकरण

(C) उत्पादों की माँग (D) उद्योगपति की आर्थिक स्थिति

(8) स्मिथ ने किस भूगोलवेत्ता के न्यूनतम लागत सिद्धांत को संशोधित किया–

(A) वेबर (B) क्रिस्टालर

(C) फ्रीडमैन (D) मिर्डल

उत्तरः 1.() 2.() 3.()4.()5.()6.()7.()8.()

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

(1) रोस्टोव के आर्थिक विकास सिद्धांत में किन पाँच अवस्थाओं का वर्णन है?

(2) रोस्टोव के अनुसार परम्परागत समाज से क्या अभिप्राय है?

(3) उत्थान अवस्था को समझाइये।

(4) परिपक्वतोन्मुख अवस्था की विशेषतायें बताइये।

(5) रोस्टोव के सिद्धांत का मूल्यांकन कीजिये।

(6) स्मिथ के स्थानिक सीमा सिद्धांत में किसको प्रमुखता दी गयी है?

(7) स्मिथ के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

7.8 महत्वपूर्ण पुस्तकें/संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ0बी0सी0 जाट – आर्थिक भूगोल पंचशील प्रकाशन जयपुर
2. डॉ0 एस0डी0 मौर्य – आर्थिक भूगोल प्रवालिका पब्लिकेशन प्रयागराज
3. डॉ0 वी0सी0 सिन्हा – आर्थिक संवृद्धि एवं एस0बी0पी0डी0 नियोजन पब्लिकेशन हाऊस
4. डॉ0 मोहम्मद हारून – आर्थिक भूगोल के तत्व (वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर उ0प्र0)

इकाई–8
औद्योगिक अवस्थिति सिद्धाँत

यहाँ पर इजार्ड एवं हूबर महोदय का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 उद्योगों के प्रकार

8.4 उद्योगों की अवस्थिति (स्थानीयकरण) को प्रभावित करने वाले कारक

8.5 उद्योगों के अवस्थिति सिद्धान्त

8.6 हूबर का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त

8.7 एक से अधिक कच्चे माल और उत्पादित वस्तु की दशा

8.8 कच्चे माल या उत्पादित वस्तु का प्रतिस्थापन प्रभाव

8.9 सिद्धांत मूल्याँकन

8.10 ईजार्ड का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त

8.11 सिद्धांत की व्याख्या

8.12 यातायात स्थानापन

8.13 श्रम स्थानापन्न

8.14 सिद्धान्त का मूल्यांकन

8.15 साराँश

8.16 शब्द सूची

8.17 परीक्षोपयोगी प्रश्न

8.1 प्रस्तावना :–

अष्टम इकाई में आप औद्योगिक विकास जो कि किसी भी देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, उसकी अवस्थिति या स्थानीयकरण के संदर्भ में विशेषकर इजार्ड और हूबर के द्वारा प्रतिपादित औद्योगिक अवस्थिति सिद्धाँत का अध्ययन कर जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.2 उद्देश्य :–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

1. औद्योगिक अवस्थिति व स्थानीयकरण को भलीभाँति समझ सकेंगे।

2. औद्योगिक अवस्थिति को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3. औद्योगिक अवस्थिति से संबंधित सिद्धांतों में से इजार्ड व हूबर के सिद्धाँतों को भली–भाँति समझ सकेंगे।

4. इस इकाई के अध्ययन के बाद हूबर व इजार्ड द्वारा लाये गये सिद्धाँतों की अन्य विद्वानों के द्वारा तुलना करते हुये आप उद्योगों की अवस्थिति से संबंधित तथ्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर पायेंगे।

8.3 उद्योगों के प्रकार :–

मिट्टी के बर्तन से लेकर बड़ी–बड़ी मशीनों का निर्माण सभी उद्योगों की श्रेणी में आता है, इनकी व्यापकता के माध्यम से हमें इन्हें मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. कुटीर उद्योग :–

इस उद्योग को घरेलू स्तर पर चलाया जाने वाला उद्योग भी कहा जाता है। इस प्रकार के उद्योग में व्यक्ति या तो खुद या परिवार वालों के साथ स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति या विक्रय के लिए वस्तुओं का उत्पादन करता है, जिसके लिए कच्चा माल आस–पास के क्षेत्रों से ही ज्यादातर उपलब्ध हो जाता है, जैसे कि गाँव में लोग गाँव में प्राप्त संसाधनों से जूते, मिट्टी के बर्तन, जड़ी–बूटी आदि से दवाईयाँ बनाकर उसे गाँव में ही बेचते हैं।

2. लघु उद्योग :–

इन उद्योगों में विनिर्माण उत्पादन और सेवा छोटे स्तर पर पायी जाती है। इन उद्योगों में निवेश ज्यादातर मशीनों पर किया जाता है। इन उद्योगों में वस्तुओं का निर्माण और सेवा प्रदान करने का कार्य छोटी–छोटी मशीनों की सहायता से सीमित मानव संसाधन के प्रयोग से किया जाता है।

भारत में भी स्वतंत्रता के पश्चात् पूँजी की कमी की वजह से सरकार ने भी ज्यादातर लघु उद्योग के विकास का प्रयास किया। इंजीनियरिंग, खेलकूद, दवाइयाँ, परिवहन तथा कृषि आदि की वस्तुओं के छोटे–छोटे कारखाने लघु उद्योगों के उत्तम उदाहरण है।

3. बृहद उद्योग :–

बृहद उद्योगों के विकास के पीछे औद्योगिक क्राँति का बहुत बड़ा हाथ है, जिसकी वजह से, बड़ी से बड़ी वस्तुओं का निर्माण कम खर्च और कम समय में संभव हो गया। इसके साथ ही वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान और विशिष्टीकरण बढ़ावा मिलने लगा और उसका प्रयोग उद्योगों की स्थापना व उत्पादन में किया जाने लगा।

अधिक मात्रा में पूँजी, मशीनों की पर्याप्त उपलब्धता, ऊर्जा व पर्याप्त भूमि की व्यवस्था कच्चेमाल तथा परिवहन व कुशल श्रमिक की उपलब्धता जब एक साथ मिलते है तभी वृहद उद्योग उन्नत होते हैं।

बृहत उद्योगों का विकास आधुनिक सभ्यता के विकास का परिचायक है।

8.4 उद्योगों की अवस्थिति (स्थानीयकरण) को प्रभावित करने वाले कारक :–

उद्योग को स्थापित करने के लिए उपयुक्त भूमि उद्योग में प्रयुक्त कच्चे माल, बाजार, परिवहन के साधन, पूँजी, तकनीक (प्राविधिकी) की उपलब्ध दशाओं के अनुसार ही उद्योग स्थापित किये जाते हैं।

उद्योगों की अवस्थिति पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक इस प्रकार हैं :–

1. **भूमि**:–किसी उद्योग की स्थापना में समतल भूमि की आवश्यकता होती है। उद्योगों की आवश्यकतानुसार थोड़ी या विस्तृत भूमि की आवश्यकता होती है। उदाहरण स्वरूप लोहा–इस्पात, उर्वरक, सूतीवस्त्र, भारी इंजीनियरिंग आदि वृहद उद्योगों के लिए विस्तृत भूमि की आवश्यकता होती है।

2. **श्रम**:–श्रम भी उद्योगों की स्थापना का एक महत्पूर्ण कारक है। विभिन्न उद्योगों में उत्पादन की मात्रा यंत्रों की संख्या के अनुपात में श्रम की व श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। जो उद्योग श्रमिकों की कुशलता पर आधारति होता है, उसमें अधिक श्रम की आवश्यकता पड़ती है, जिसमें स्वचालित मशीनों का उपयोग ज्यादा किया जाता है, उसमें श्रमिकों की आवश्यकता कम पड़ती है।

3. **पूँजी** :–अलग–अलग प्रकृति तथा उत्पादन की मात्रा के अनुसार अधिक या कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। लघु उद्योगों में कम तथा वृहद उद्योगों के संचालन में विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

4. **कच्चा माल** :–कच्चा माल विनिर्माण उद्योग में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कच्चे माल के रूप में व उसके गुणों में बदलाव लाकर अधिक उपयोगी वस्तु का निर्माण किया जाता है। किसी उद्योग में एक जैसे कि–

फर्नीचर उद्योग में लकड़ी और किसी में एक से ज्यादा जैसे लोहा–इस्पात उद्योग में लौह अयस्क, कोयला, चूनापत्थर, मैंग्नीज आदि कई कच्चे मालों की आवश्यकता पड़ती है।

5. **शक्ति संसाधन** :–वर्तमान समय के आधुनिक उद्योगो में उनके संचालन के लिए शक्ति एक अनिवार्य तत्व है। विभिन्न उद्योगों की आवश्यकतानुसार शक्ति की अलग–अलग मात्रा की जरूरत पड़ती है, किसी भी आधुनिक उद्योग की स्थापना वहीं पर की जाती है जहाँ कारखाने के संचालन के लिए उपयुक्त शक्ति संसाधन विद्यमान है।

6. **अनुकूल जलवायु** :–उद्योगों की स्थापना में जलवायु भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव डालती है जैसे कि– सूती वस्त्र उद्योग के लिए नमीयुक्त जलवायु उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि इस प्रकार की जलवायु में धागा बारीक से बारीक काटा जा सकता है। वह टूटता नहीं है। श्रमशक्ति कुशलता पर भी जलवायु का प्रभाव है। शीत जलवायु में ऊनी वस्त्र व हीटर के उद्योग विकसित होते है। अर्थात् जलवायु की भी उद्योग की स्थापना में बड़ी भूमिका है।

7. **बाजार** :–बाजार से अभिप्राय उस क्षेत्र से है जहाँ वस्तु की माँग व पूर्ति होती है। किसी वस्तु के उत्पादन से पहले ही उसको प्राप्त होने वाले बाजार पर विचार किया जाता है।

8. **प्राविधिकी या प्रौद्योगिकी** :– औद्योकीकरण तकनीकी विकास का ही परिणाम है। आधुनिक उद्योगों में उन्नत तकनीकों के प्रयोग से ही उत्पादन की गुणवत्ता व मात्रा दोनों बढ़ाये जाने का प्रयास किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जर्मनी जैसे विकसित देश उद्योगों के विकास में उच्च तकनीकों के माध्यम से गुणवत्ता व उत्पादन में वृद्धि हेतु प्रयासरत हैं वहीं विकासशील देशों में अभी भी तकनीकी ज्ञान पिछड़ी अवस्था में है।

   वर्तमान में विकसित तकनीक, आधुनिक औद्योगिकरण के विकास का आधार है।

9. **जलापूर्ति** :–कई प्रकार के उद्योग जैसे वस्त्र उद्योग, रासायनिक उद्योग, चमड़ा उद्योग, जूट उद्योग आदि के लिए अधिक मात्रा में जल की आपूर्ति की आवश्यकता होती है। अतः कुछ उद्योगों के स्थानीयकरम में जल की आपूर्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

10. **सरकारी नीति एवं निर्णय** :–उद्योगों को स्थापित करने में सरकारी नीतियों का भी प्रभाव पड़ता है। उद्योगों से कर वसूलना किसी उद्योग को कर में छूट देकर उसे प्रोत्साहित करना या पिछड़े क्षेत्रों सरकार द्वारा स्वयं उद्योग स्थापित कर उसे बढ़ावा देने जैसे कदम सरकार द्वारा उठाये जाते हैं, इसका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव उद्योगों पर पड़ता है।

    इसके अलावा भी कुछ स्थानीय कारण है जैसे स्थानीय करे, अपशिष्ट निस्तारण, सामाजिक प्रवृत्ति आदि भी उद्योगों के स्थानीयकरण में अपना योगदान देते हैं।

8.5 उद्योगों के अवस्थिति सिद्धाँत :–

(Location Theories Of Industries) किसी उद्योग की स्थापना कहाँ पर उपयुक्त होगी, कहाँ पर उद्योग की स्थापना लाभप्रद होगी, अर्थात, उद्योगों की अवस्थिति के संदर्भ में बहुत से भूगोलवेत्ताओं ने जैसेः– अल्फ्रेड वेबर (1929), आगस्ट लॉश, (1954) ई० एम० हूबर (1948), वाल्टर इजार्ड (1956), डी० एम० स्मिथ (1966) एवं अमेरिकन भूगोलवेत्ता ए० के० फिल्ब्रिक ने अध्ययन के आधार पर अपने मतों का प्रतिपादन किया।

8.6 हूबर का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धाँत (Industrial Location Theory Of Hoover) :–

प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री ई० एम० हूबर (E.M.Hoover) ने औद्योगिक अवस्थिति संबंधी न्यूनतम लागत सिद्धाँत का प्रतिपादन किया, और उसे 1948 में अपनी पुस्तक ''Location Of Economic Activity'' (आर्थिक क्रिया की अवस्थिति) में प्रकाशित किया।

हूबर ने बेवर के सिद्धाँत में महत्वपूर्ण परिमार्जन किया और परिवहन लागत को अधिक वास्तविक रूप में प्रस्तुत करते हुए परिवहन लागत के साथ उत्पादन लागत को भी सम्मिलित किया।

किसी उद्योग में लगने वाली लागत पर विचार करते हुये हूबर ने बताया कि किसी भी उद्योग में लगने वाली लागत को हूबर ने तीन भागों में बाँटा है।

1. कच्ची सामग्री को एकत्रित करने संबंधी लागत
2. उत्पादन प्रक्रिया संबंधी लागत
3. उत्पादित वस्तु को माँग क्षेत्र (बाजार) तक पहुँचाने की लागत। कच्ची सामग्री एकत्र करने तथा उत्पादित वस्तु को बाजार तक पहुँचाने की परिवहन लागत दोनों को मिलाकर परिवहन लागत के अंतर्गत रखा जायेगा।

औद्योगिक लागत को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) उत्पादन लागत **(2)** परिवहन लागत

हूबर की यह मान्यता थी कि ये दोनों लागत उद्योगों की अवस्थिति पर प्रभाव डालते हैं।

परिवहन लागत का प्रभाव :–

हूबर के अनुसार किसी उद्योग की स्थापना व उसका संचालन तभी उचित ढंग से हो सकता है जबकि उसकी स्थापना ऐसे जगह पर की जाये जहाँ कुल परिवहन लागत न्यूनतम हो।

अतः उद्योग को ऐसे स्थान पर स्थापित करना लाभदायक होगा जहाँ (1) कच्चे माल को एकत्र करने का परिवहन व्यय न्यूनतम हो (2) उत्पादित होने वाली वस्तु के बाजार तक पहुँचने का व्यय न्यूनतम हो।

कच्चे माल को एकत्रित करने का परिवहन मूल्य न्यूनतम तब होगा जबकि कारखने की स्थापना कच्चे माल के स्त्रोत के पास की जाये और उत्पादित की गयी वस्तु को बाजार तक पहुँचाने का व्यय तब न्यूनतम होगा जब उद्योग को बाजार के निकट स्थापित किये जाये। उद्योग की सर्वोतत्तम अवस्थिति के लिए इन दोनों परस्पर विरोधी आकर्षणों के बीच संतुलन स्थापित करने की जरूरत होती है, और इस प्रकार का संतुलन कच्चे माल और उत्पादित वस्तुओं की अलग–अलग विशेषताओं के आधार पर अलग–अलग दशाओं में पृथक–पृथक स्थानों पर प्राप्त होता है।

हूबर ने अपने सिद्धाँत की व्याख्या दो दशाओं के अनुसार किया है जो इस प्रकार है :–

(अ) एक कच्चे माल और उत्पादित वस्तु की दशा

(ब) एक से अधिक कच्चे माल और उत्पादित वस्तु की दशा।

8.6 (अ) एक कच्चा माल और एक उत्पादित वस्तु :–

इस तरह की स्थिति में यह मान लिया जाता है कि जब किसी उद्योग में एक ही कच्चे माल का प्रयोग उत्पादन के लिए किया जाता है। साथ ही बाजार (मांग क्षेत्र) एक स्थान विशेष पर केंद्रित होता है तो इस स्थिति में उद्योग की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थल हो सकते है :–

(1) कच्चे माल के स्त्रोत के पास **(2)** बाजार केन्द्र के पास

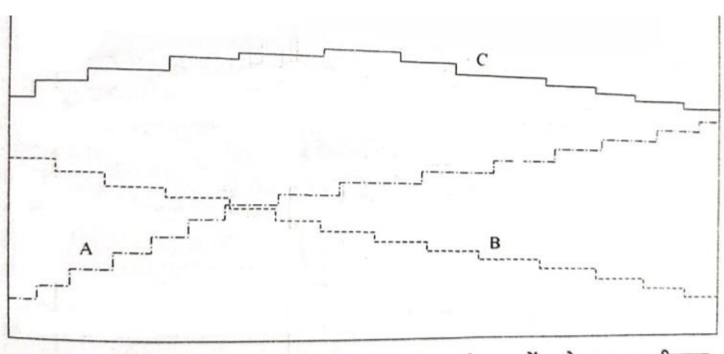

एक कच्ची सामग्री और एक बाजार बिन्दु की दशा में उद्योग का स्थानीकरण
(ई.एम. हूवर के अनुसार)

चित्र 8.1

चित्र 8.1 में रेखा। कच्चे माल को एकत्रित्र करने के परिवहन व्यय को और रेखा B उत्पाद को बाजार तक पहुँचाने पर लगने वाले परिवहन व्यय को प्रदर्शित करती है। रेखा C कच्चे माल को स्त्रोत बाजार बिंदु के मध्य स्थित सभी संभव बिंदुओं पर कुल परिवहन व्यय (A+B) को प्रदर्शित करती है।

हूबर का मानना था कि वस्तुओं के परिवहन की दर प्रति इकाई दूरी (प्रति मील या प्रति किमी) के अनुपात की दर से नही बल्कि दूरी के चरणों के आधार पर निर्धारित होती है। इसलिए ही परिवहन रेखाओं को वक्र या सीधे रूप में नहीं बल्कि क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ते हुये प्रदर्शित किया गया है। उदाहरण के लिए किसी वस्तु के परिवहन (प्रति इकाई वजन) का माल भाडे में सामान्यतः 1–5, 6–1, 11–20, 21–40 किमी। आदि चरणों में रेखाओं की वृद्धि होती है, इसलिये और परिवहन पर हुये खर्च को कई चरणों में ऊपर उठते या नीचे गिरते हुये दिखाया गया है।

A रेखा की स्थिति कच्चे माल के स्त्रोत पर निम्नतम है और इसके आगे धीरे–धीरे ऊँचाई बढ़ती जाती है।

B रेखा की निम्नतम स्थिति बाजार केंद्र पर है जो दूरी के अनुसार क्रमशः ऊंची होती जाती है।

यहाँ पर इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कच्चे माल की परिवहन दर उत्पादित वस्तु की परिवहन दर से ज्यादा है। C रेखा कुल परिवहन लागत (A+B) को प्रदर्शित करती है। C रेखा की निम्नतम ऊँचाई कच्चे माल के स्त्रोत पर है जो सबसे कम परिवहन लागत को दर्शाती है।

इसके अनुसार उद्योग को कच्चे माल के स्त्रोत के निकट स्थापित होना चाहिए। इसके विपरीत यदि उत्पादित होने वाली वस्तु के खर्च की दर को कच्चे माल के परिवहन की दर से कम मान लिया जाये तो सबसे कम परिवहन खर्च बाजार केंद्र पर आयेगा और उद्योग बाजार केंद्र पर स्थापित होगा।

कच्चे माल और उत्पादित वस्तु के परिवहन खर्च को प्रदर्शित करने वाली क्रमशः। A और B रेखायें उन्नतोदर (Convex) हैं।

A रेखा कच्चे माल के स्त्रोत पर और रेखा बाजार केन्द्र पर न्यूनतम परिवहन खर्च दिखाता है। इसके योग को प्रदर्शित करने वाली C रेखा भी उन्नतोदर है जो बीच में अधिक और दोनों छोरों पर कम खर्च दिखाती है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक ही कच्चे का उपयोग करने वाले तथा एक ही वस्तु तैयार करने वाले उद्योग की स्थापना कच्चे माल के स्त्रोत अथवा बाजार केंद्र पर ही होगी किसी दूसरी जगह नहीं।

किंतु इसका अपवाद भी है। यदि परिवहन की सुविधा एक साथ उपलब्ध नहीं है एक छोर से दूसरे छोर तक साधन बदलना पड़ता है तब सबसे कम लागत दोनों साधनों के मिलन बिंदु पर होने के कारण वहाँ उद्योग को स्थापित किया जा सकता है।

इस प्रकार उद्योग की अवस्थिति तीन स्थानों पर हो सकती है :–

(1) कच्चे माल के स्त्रोत पर

(2) बाजार केंद्र पर

(3) मध्यवर्ती बिन्दु पर।

(1) कच्चे माल स्त्रोत पर अवस्थिति :– यदि उद्योग में प्रयुक्त कच्चे माल का वजन उत्पादन प्रक्रिया के दौरान कम हो जाता है, तो ऐसे उद्योग को कच्चे माल के स्त्रोत पर स्थापित करना फायदेमंद होता है क्योंकि इससे कच्चे माल के अनावश्यक भार को नहीं ढोना पड़ता है। इसी प्रकार जल्दी नष्ट होने वाली खतरनाक तथा टूट–फूट जाने वाले कच्चे माल की परिवहन दर अधिक होने के कारण उनका उपयोग करने वाले उद्योग को कच्चे माल के स्त्रोत के निकट स्थापित करना फायदेमंद होता है।

(2) बाजार बिन्दु पर अवस्थिति :– जब किसी उत्पाद का वजन कच्चे माल से अधिक होता है तब ऐसे उद्योग बाजार केंद्र पर स्थापित होते है। कुछ उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया के दौरान बनी वस्तु का वजन अगर कच्चे माल से अधिक होता है इसी प्रकार जब उत्पाद शीघ्र नष्ट होने, खतरनाक तथा टूटने–फूटने वाला होता है।

तो उसका प्रति इकाई परिवहन का खर्च कच्चे माल की तुलना में ज्यादा होता है जिसके कारण ऐसे उद्योगों की बाजार केंद्र पर स्थापना की जाती है।

(3) मध्यवर्ती बिंदु पर अवस्थिति :– जब वस्तु का परिवहन एक छोर से दूसरे छोर तक एक प्रकार के साधन से नहीं बल्कि दो साधनों से हो तो इस प्रकार की स्थिति में परिवहन में सबसे कम खर्च दोनों साधन जहाँ पर मिलते हैं उस बिंदु पर होता है। जिस बिंदु पर परिवहन के साधन बदलते हैं वहाँ वस्तुओं को उतारकर अन्य साधनों पर चढ़ाने पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है जिससे परिवहन लागत बढ़ जाती है। इस प्रकार दो परिवहन के साधनों का मिलन जहाँ पर होता है वहाँ उद्योग स्थापित करने से अतिरिक्त व्यव से बचा जा सकता है।

अतः ऐसे उद्योग जिनमें वस्तु के परिवहन का सबसे कम खर्च मध्यवर्ती बिंदु पर आता है उद्योग को कच्चे माल के स्त्रोत और बाजार बिंदु के बीच स्थापित किया जा सकता है।

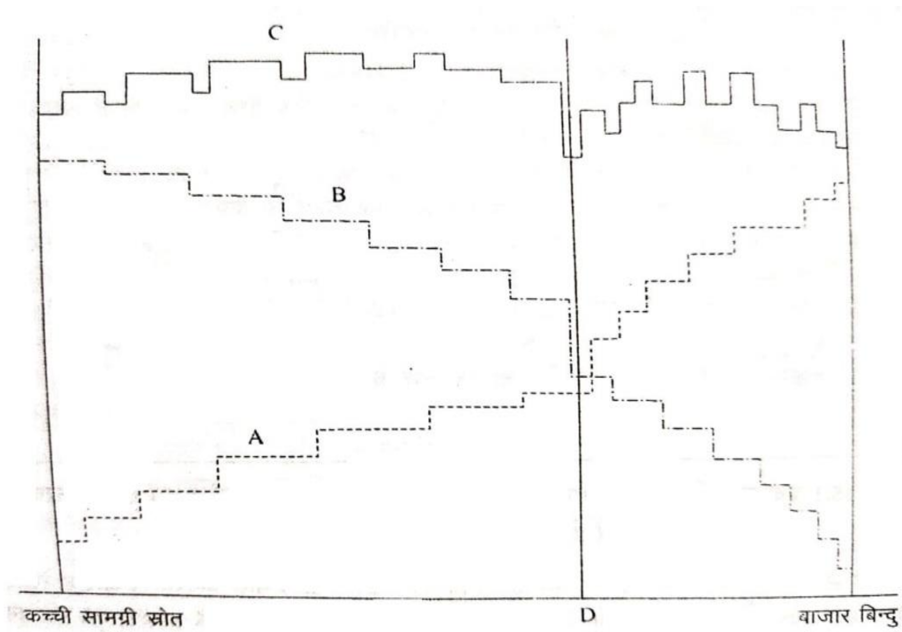

दो परिवहन माध्यमों के मिलन बिन्दु पर उद्योग का स्थानीकरण

चित्र 8.2 में प्रदर्शित किया गया है कि जिसमें। रेखा परिवहन के खर्च को B रेखा उत्पाद के परिवहन व्यय को और C रेखा कुल परिवहन के खर्च को प्रदर्शित करती है। इसमें दिखाया गया है कि मध्य बिंदु पर परिवहन के साधन बदल जाते है और मध्यवर्ती बिंदु D पर ही परिवहन का खर्च न्यूनतम है।

8.7 (ब) एक से अधिक कच्चे माल और उत्पादित वस्तु की दशा :–

हूबर के अनुसार यदि किसी उद्योग में एक से अधिक कच्चे माल का उपयोग होता है और एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होता है, तब उद्योग की स्थापना के स्थल का चयन करना कठिन होता है।

इस स्थिति में उद्योग की अवस्थिति प्रभावित होती है :–

(1) परिवहन मार्ग की संरचना एवं वितरण प्रतिरूप से

(2) परिवहन मार्गों में पड़ने वाले कच्चे माल के स्त्रोत से

(3) परिवहन मार्गों के मिलन बिंदु से

(4) बाजार केंद्र की क्रमिक भौगोलिक स्थित आदि से।

इसके स्पष्टीकरण हेतु **चित्र 8.3** के माध्यम से कल्पित परिवहन जाल को दिखाया गया है। जिसके किनारे विभिन्न बाजार बिंदु मौजूद है। इसके लिये मान लिया गया है कि उद्योग में लोहा और कोयला दो कच्चे माल का प्रयोग किया जाता है जो क्रमशः। और B बिंदुओं पर मौजूद है। यहाँ पर यह भी माना गया है कि लोहा व कोयला तथा उत्पादित वस्तु की प्रति इकाई दूरी (जैसे प्रति किमी या प्रति मील) परिवहन के खर्च का अनुपात 2 : 3 : 4 है। इस प्रकार। (लोहा) B (कोयला) और C (बाजार) बिंदुओं की ओर उद्योग की स्थापना के आसार भी उसी अनुपात में होंगे।

चित्र के माध्यम से देखें तो उद्योग की अवस्थिति की चार अवस्थितियाँ हो सकती हैं–

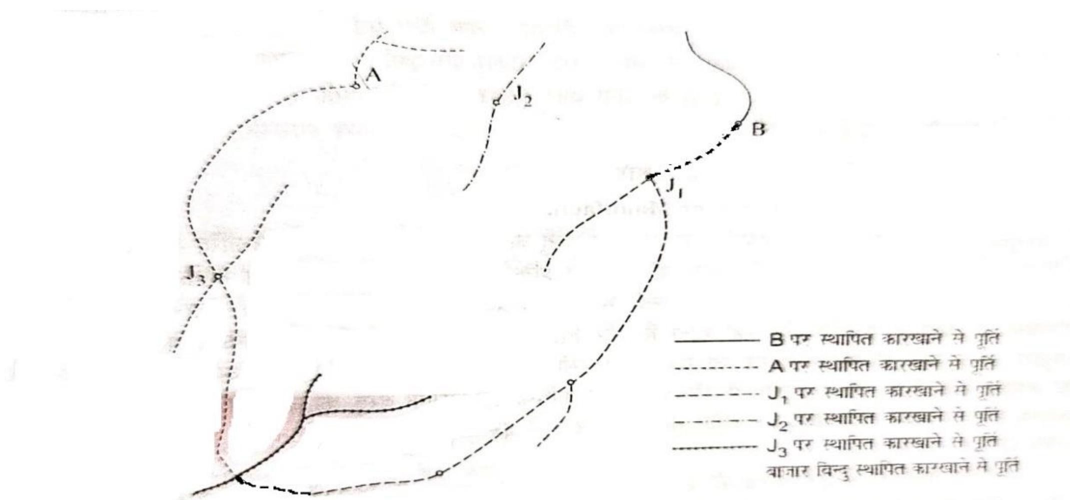

एक से अधिक कच्ची सामग्री स्रोत, उत्पादित वस्तु तथा बाजार बिन्दु की दशा में उद्योग का स्थानीकरण (ई.एम. हूवर के अनुसार)

चित्र 8.3 एक से अधिक कच्चे माल के स्त्रोत, उत्पादित वस्तु तथा बाजार बिंदु की दशा में उद्योग का स्थानीयकरण (ई०एम० हूबर के अनुसार) –

1. **लोहा स्त्रोत (A बिन्दु) पर उद्योग की स्थापना)** :– उन सभी बाजार बिंदुओं के लिए जो। बिन्दु से आने जाने वाले रास्ते से और। से गुजरने वाली शाखा मार्ग पर स्थित है।। बिंदु पर कारखानों की स्थापना होने से कुल परिवहन लागत सबसे अल्पतम होगी। यदि। के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर कारखाना स्थापित किया जायेगा तो लोहा और कोयला दोनों का परिवहन खर्च लगेगा और यदि। और B बिंदुओं के मध्य स्थापित किया जायेगा तब भी लोहा और उत्पाद को कुछ दूर तक ले जाने का परिवहन व्यय होगा।

2. **कोयला स्त्रोत (B बिंदु) पर उद्योग की स्थापना** :– B बिन्दु से गुजरने वाले शाखा मार्ग पर स्थित बाजारों के लिए B बिंदु पर कारखाना स्थापित करने से परिवहन की लागत अल्पतम होगी, क्योंकि केवल लोहा का परिवहन खर्च लगेगा। B बिन्दु से आगे कारखाना स्थापित करने पर लोहा और कोयला दोनों का परिवहन खर्च लगेगा।

3. **जंक्शन बिंदुओं पर उद्योग की स्थापना** :– चित्र में प्रदर्शित तीनों जंक्शन बिंदुओं (J1, J2 और J3) में से किसी भी बिन्दु (स्थान) पर कारखाने की स्थापना की जा सकती है क्योंकि वहाँ से शाखा मार्गों पर स्थित बाजारों में वस्तुएँ भेजने के लिए अल्पतम परिवहन खर्च पड़ेगा। किंतु अन्य बिंदु पर कारखाने की स्थापना करने से दोनों कच्चे माल या कम से कम एक कच्चे माल तथा उत्पादित वस्तु के परिवहन पर खर्च करना पड़ेगा।

4. **बाजार बिन्दु पर उद्योग की स्थापना :–।** तथा B बिंदुओं के बीच पड़ने वाले बाजारों के लिए कारखाने की स्थापना बिंदु पर करना लाभदायक होगा क्योंकि यहाँ किसी भी बिंदु पर कच्चे माल (A और B) विपरीत दिशाओं से आकर मिलती है इससे कच्चे माल की परिवहन लागत अल्पतम होती है और उत्पाद के परिवहन

पर कुछ भी व्यय नहीं होता है। इस प्रकार कुल परिवहन लागत अल्पतम आती है। बाजार बिंदु के अतिरिक्त अन्य किसी बिंदु पर कारखाना स्थापित करने पर कच्चे माल और उत्पाद दोनों का परिहवन खर्च देना पड़ेगा।

इस प्रकार परिवहन खर्च के दृष्टिकोण से। और B बिंदुओं के मध्य सभी बाजार बिंदुओं पर कारखाने की स्थापना करना लाभदायक होगा। यही स्थिति जंक्शन 3 (J3) के दोनों ओर के उस हिस्से में भी निर्मित होगी जहाँ से दोनों तरह के कच्चे माल की प्राप्ति दो विपरीत दिशाओं से होती हैं।

8.8 कच्चे माल या उत्पादित वस्तु का प्रतिस्थापन प्रभाव :—

कच्चे माल तथा परिवहन दरों का एक निर्धारित अनुपात है किंतु वास्तविक जगत में किसी उत्पाद को निर्मित करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार बदलाव करके मँहंगे कच्चे माल के स्थान पर उसकी अपेक्षा सस्ते कच्चे माल का प्रयोग किया जा सकता है। अतः कच्ची सामग्रियों का अनुपात पहले से निर्धारित नहीं रहता है और विभिन्न बिंदुओं पर इनकी सापेक्षिक लागत के अनुसार उनकी मात्रा को कम ज्यादा किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि उद्योग में एक से अधिक वस्तु का उत्पादन होता है तो उनके अनुपात में परिवर्तन करके तुलनात्मक रूप से अधिक लाभप्रद वस्तु का उत्पादन और अधिक मात्रा में किया जा सकता है।

उद्योग की अवस्थिति पर प्रतिस्थापना का प्रभाव इस तरह से पड़ता है :—

1. कच्चे माल में प्रतिस्थापन की संभावना होने पर उद्योग मध्यवर्ती बिंदुओं की अपेक्षा कच्चे माल स्त्रोत की ओर आकर्षित होता है।
2. उत्पाद में प्रतिस्थापन की संभावना बनी रहने पर कारखाना की स्थापना की गुंजाइश मध्यवर्ती स्थानों की अपेक्षा बाजार बिंदुओं की ओर अधिक होती है।

उत्पादन प्रक्रिया लागत तथा उद्योग का स्थानीयकरण :—

कुछ उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया में लगने वाली लागत बहुत अधिक होती है और परिवहन लागत अपेक्षाकृत नगण्य होती है और उत्पादन पर इसका की विशेष प्रभाव नहीं पाया जाता है।

उत्पादन प्रक्रिया की लागत के अंतर्गत भूमि, श्रम पूँजी कर आदि तत्वों को समिल्लित किया जाता है। कुल उत्पादन लागत को अल्पतम करने के लिये कारखाने की वहाँ पर स्थापित किया जाता है जहाँ पर उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण खर्च के तत्व विद्यमान रहते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी उद्योग में कुल खर्च का 75 प्रतिशत श्रम पर हो रहा है, तो उद्योग की स्थापना वहाँ पर की जायेगी जहाँ पर सस्ते व कुशल श्रमिक पर्याप्त संख्या में मौजूद हों।

कुल उत्पादन लागत तभी न्यूनतम होती है जब उत्पादन के विभिन्न कारकों की उपलब्धता सर्वाधिक कम कीमत पर है।

उत्पादन के खर्च को कम करने के लिए अधिक महँगे तत्वों की अपेक्षा उनके स्थान पर सस्ते तत्वों का उपयोग किया जा सकता है।

पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन कारकों के उपयोग करने की आदर्श स्थिति उसको कह सकते हैं जहाँ प्रत्येक उत्पादन कारक का सीमांत उत्पादन उसके मूल्य के अनुपात के बराबर हो। इसका समीकरण इस तरह से प्रदर्शित किया जा सकता है—

$$\frac{\text{A कारक का सीमांत उत्पादन}}{\text{A कारक का मूल्य}} = \frac{\text{B कारक का सीमांत उत्पादन}}{\text{A कारक का मूल्य}}$$

यदि किसी उद्योग में इस प्रकार का संतुलन स्थापित नहीं है तो मूल्य की तुलना में अधिक सीमांत उत्पादन वाले तत्व में उस सीमा तक वृद्धि करना लाभदायक होगा जब तक कि वस्तु सीमांत उत्पादन और उसका मूल्य संतुलित न हो जाये। व्यवहारिक रूप में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति कम पायी जाती है।

अतः कारखाने को वहाँ स्थापित किया जाता है जहाँ तुलनात्मक रूप से सस्ते कारक उपलब्ध हों और कुल लागत अल्पतम हो।

8.9 सिद्धात मूल्याँकन :–

1. हूबर ने वेबर के 'न्यूनतम लागत सिद्धात' को थोड़ा परिष्कृत करने का प्रयास कर परिवहन के खर्च को तुलनात्मक रूप से अधिक वास्तविक रूप में अपनाकर उद्योगों के स्थानीयकरण में उत्पादन लागत पर भी विचार किया। हूबर के अनुसार किसी उद्योग को उस स्थान पर स्थापित करना फायदेमंद होगा जहाँ कुल लागत न्यूनतम होती है। हूबर का यह विचार अधिक यथार्थ है।
2. उद्योग की अवस्थिति में उत्पादन लागत को संयुक्त करके हूबर ने अपने सिद्धाँत को तुलनात्मक रूप से व्यवहार के अधिक निकट लाने की कोशिश की।
3. उत्पादन लागत को कम करने के लिए हूबर ने सस्ती स्थानापन्न वस्तुओं के प्रयोग तथा अपेक्षाकृत कम मूल्य वाली वस्तुओं या तत्वों के प्रयोग की महत्ता को बताया है जो वास्तविकता के अधिक करीब है।
4. हूबर ने उत्पादन के कारकों को गतिशील बताया है और अपने सिद्धाँत की व्याख्या पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में किया है, किन्तु व्यवहारिक जगत में पूर्ण प्रतियोगिताओं की दशायें कम मिलती है इसलिए इस सिद्धांत की सार्थकता उतनी नहीं है, जितना होना चाहिए।

8.10 ईजार्ड का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धाँत :–

वाल्टर ईजार्ड ने 1956 में आर्थिक कार्यों के स्थानीयकरण के सिद्धाँत का प्रतिपादन अपनी पुस्तक प्रकाशित (Location And Space Econcomy) के माध्यम से किया। ईजार्ड ने वॉन थ्यूनेन के कृषि अवस्थिति सिद्धाँत तथा वेबर एवं लॉश के औद्योगिक अवस्थिति सिद्धाँत के अध्ययन के पश्चात् उनका समन्वय करके औद्योगिक स्थानीयकरण के संदर्भ में अपने मत का प्रतिपादन किया।

इजार्ड ने स्थानापन्न को प्रमुखता देते हुये अपने सिद्धाँत के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि, जहाँ पर उद्योग के स्थापना के लिये सर्वाधिक प्रभावशाली घटक पाया जाता है, वहीं पर उसकी स्थापना सर्वाधिक उपयुक्त होती है किंतु किसी अन्य स्थल पर यदि दूसरा कारक महत्वपूर्ण होता है, और उसकी वजह से वहाँ कुल लाभ अधिकतम प्राप्त होने की संभावना मौजूद रहती है तो उद्योगपति द्वितीय कारक वाले स्थान पर ही कारखाने को स्थापित करना चाहेगा। स्थान से संबंधित विकल्प (स्थानापन्न) पर आधारित होने के कारण ईजार्ड के सिद्धाँत को "स्थानापन्न का सिद्धाँत" के नाम से भी जाना जाता है।

इनके अनुसार यदि द्वितीय कारक वाले स्थान पर उद्योग स्थापित करने से उद्योगपति को अतिरिक्त परिवहन का खर्च भले ही वहन करना पड़े किंतु अन्य मदों पर बचत होने से कुल लाभ की मात्रा अधिकतम हो जाती है।

इन्होंने अपने समन्वित सिद्धाँत के माध्यम से यातायात, श्रम एकत्रीकरण के स्थानापत्र को आधार बनाया है।

इन्होंने सिद्धाँत का विश्लेषण सर्वांगसम क्षेत्र की बजाय दिये गये बाजार क्षेत्र में विनिर्माण उद्योग के लिए अनिवार्य तत्वों को ध्यान में रखकर केन्द्र स्थलों की कल्पना की है, और माना है कि बाजार क्षेत्र के अलग–अलग भागों में वस्तुओं की माँग पूरी करने के लिए कई औद्योगिक स्थल मौजूद होते है।

8.11 सिद्धान्त की व्याख्या :–

ईजार्ड ने उद्योग के स्थानीयकरण में स्थानापन्न पर विशेष बल दिया है और इसी को आधार बनाकर सिद्धान्त को स्पष्ट किया है।

1. किसी कच्चे माल की अधिकतम प्राप्ति की दशा में कारखाने को उसके स्त्रोत के समीप स्थापित किया जाता है किंतु यदि किसी दूसरे स्थान पर यातायात का सस्ता साधन होने पर कच्चे माल को एकत्र करने के लिए बड़े हुए खर्च को स्थानापत्र यातायात से प्राप्त बचत के द्वारा किया जाता है।

2. जब एक ही कच्चा माल कई स्त्रोतों से मिलता है तो उसे स्त्रोत को छोड़कर दूसरे स्थान से भी प्राप्त किया जा सकता है।

3. जब एक ही स्त्रोत पर विद्यमान किसी कच्चे माल को अलग–अलग जगहों पर स्थित कारखाने तक ले जाने की व्यवस्था की जाती है तो उसके भारह्रास को ध्यान में रखा जाता है। उत्पाद तैयार होने की प्रक्रिया के दौरान यदि भारह्रास अधिक है तो कारखाने की स्थापना कच्चे माल के स्त्रोत के निकट की जायेगी और भारह्रास यदि कम है तो कारखाना बाजार के समीप स्थापित किया जायेगा।

8.12 यातायात स्थानापन :–

1. **प्रथम स्थिति** :– यदि वस्तु निर्माण के लिए अनिवार्य कच्चा माल स्थानांतरित नहीं किया जा सकता तो कारखाना निश्चित रूप से कच्चे माल के स्त्रोत पर स्थापित किया जा सकेगा, किंतु यदि व स्थानांतरित किया जा सकता है तो कारखाने की स्थापना का निर्धारण अवस्थिति त्रिभुज (Locational Triangle) की सहायता से किया जायेगा।

चित्र 8.4 में आधार अक्ष से बाजार से दूरी तथा लम्बवत अक्ष पर कच्चे माल के स्त्रोत से दूरी को प्रदर्शित किया गया है।

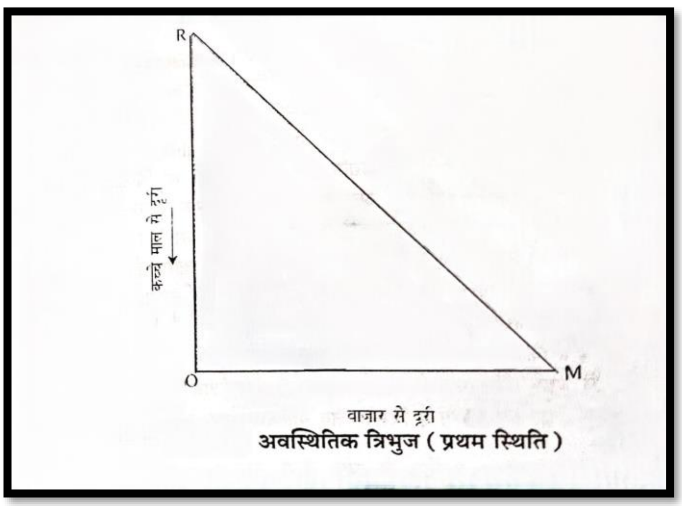

अवस्थितिक त्रिभुज (प्रथम स्थिति)

चित्र 8.4

R बिंदु से कच्चे माल के स्त्रोत को और M बिंदु से बाजार केंद्र को प्रदर्शित करता है।

कच्चे माल के स्त्रोत से दूरी जैसे–जैसे बढ़ेगी बाजार से दूरी कम होती जायेगी। इस प्रकार जो RM रेखा है वह दोनों बिंदुओं से समान रूप से होने वाले परिवहन खर्च को दिखाती है।

यदि उद्योगपति अपने कारखाने के RM के दाँये ओर स्थापित करता है तो उसे यात्रा व्यय अधिक करना पड़ेगा। अतः कारखाने को त्रिभुज ROM के भीतर किसी बिंदु पर लाभ कमाने के लिए कारखाने को स्थापित करना होगा।

2. **द्वितीय स्थिति** :– उद्योग में दो कच्चे माल की आवश्यकता होती है। यदि। कच्चा माल एक ही स्त्रोत पर उपलब्ध है उसे स्थानांतरित नहीं किया जा सकता तब उद्योग। कच्चेमाल के स्त्रोत पर ही स्थापित किया जायेगा। किंतु अगर कच्चा माल स्थानांतरण योग्य है तो कारखाने की अवस्थिति निर्धारित करने हेतु अवस्थिति त्रिभुज की सहायता लेनी पड़ेगी।

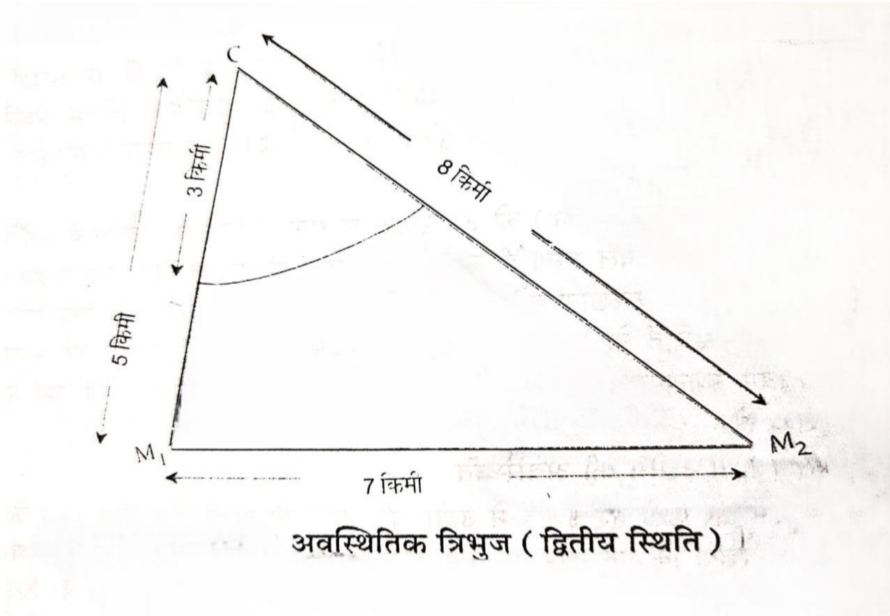

चित्र 8.5 अवस्थिति त्रिभुज (द्वितीय स्थिति)

चित्र 8.5 में C बाजार केंद्र को, M_1 प्रथम कच्चा माल स्त्रोत को और M_2 द्वितीय कच्चा माल स्त्रोत को प्रदर्शित करता है।

मान लिया कि कारखाने को बाजार केंद्र से (C) 3 किमी. की दूरी पर स्थापित करना है। बाजार केंद्र से 3 किमी. की दूरी पर स्थित बिंदु पक्ष को चाप द्वारा प्रदर्शित किया गया है जिस पर कहीं भी उद्योग को स्थापित किया जा सकता है।

उस चाप रेखा को परिवर्तित रेखा में चित्रित करने पर उद्योग की अवस्थिति को **चित्र 8.6** के द्वारा समझा जा सकता है।

चित्र 8.6 से स्पष्ट है कि कारखाने की संभावित अवस्थिति की दूरी M_1 से घटने पर M_2 से बढ़ जायेगी और से घटेगी तो M_1से बढ़ जायेगी।

अतः जब भी अल्पतम खर्च वाले बिंदु को ज्ञात करना है तो समव्यय रेखाओं की सहायता लेना पड़ेगा।

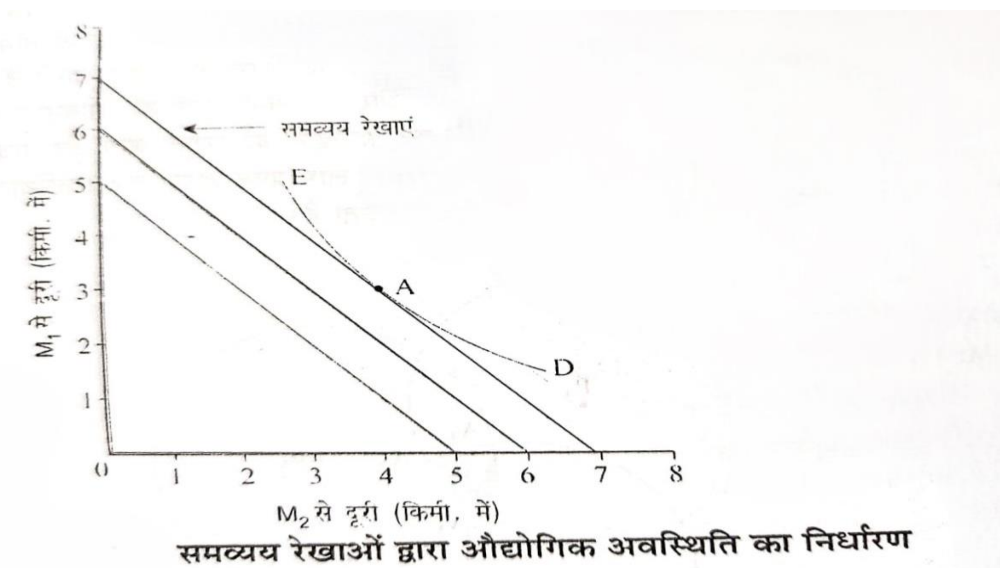

M_1 से दूरी (किमी में)

चित्र 8.6 समव्यय रेखाओं द्वारा औद्योगिक अवस्थिति का निर्धारण

इस प्रकार अगर एक बिंदु के परिवहन खर्च में वृद्धि हो रही है तो उसे दूसरे बिंदु से होने वाले परिवहन खर्च की बचत से उसकी पूर्ति हो जाती है।

इस चित्र में न्यूनतम परिवहन खर्च वाले बिंदु की तलाश हेतु चित्र में सम परिवहन अर्थात् समव्यय रेखायें खींची गयी हैं। यहाँ पर यह मान लिया जाता है कि M_1 और M_2 से समान मात्रा में कच्चे माल जैसे (4–4 टन) की आवश्यकता होती है और परिवहन की दर भी एक जैसी है। इस प्रकार ग्राफ पर खींची गयी समव्यय रेखायें सीधी और समानान्तर रहेंगी तथा बाँये से दाँये ओर झुकी होंगी। वक्र रेखा ED के जिस बिंदु पर न्यून समव्यय रेखा स्पर्श करेगी यह बिंदु उद्योग की स्थापना की आदर्श स्थिति को दर्शायेगा। इस बिंदु के अतिरिक्त प्रत्येक बिंदु पर व्यय बढ़ता चला जायेगा। उद्योग की स्थापना की यह आदर्श स्थिति C बिंदु से ली गयी काल्पनिक दूरी पर आधारित है।

अतः सर्वोत्तम अवस्थिति ज्ञात करने के लिए बिंदु M_1 और M_2 से भी निश्चित दूरियाँ लेकर उसकी गणना करना पड़ता है।

8.13 (ब) श्रम स्थानापन्न :–

ईजार्ड के अनुसार (उद्योग) उस स्थान पर स्थापित हो सकता है जहाँ श्रम सस्ते में उपलब्ध हो किंतु श्रम केवल सस्ता नहीं बल्कि कुशल भी होना चाहिए। कुशल श्रम के अभाव में केवल सस्ते श्रम के साथ उद्योग स्थापित नहीं किया जा सकता।

अतः इसके लिए श्रम स्थानापन्न अर्थात् विकल्प की खोज करना होगा।

इजार्ड के अनुसार अन्य सभी घटक यदि सभी जगह समान दर में उललब्ध हैं तो श्रम स्थानापन्न के आधार पर उद्योग को ऐसे स्थान पर स्थापित किया जायेगा जहाँ सस्ता और कुशल श्रम प्राप्त होता है।

(स) एकत्रीकरण तथा उद्योग की अवस्थितिः–

एकत्रीकरण पर विचार कहते हुए इजार्ड ने उद्योग की स्थापना का निर्धारण **चित्र 8.7** के द्वारा किया है।

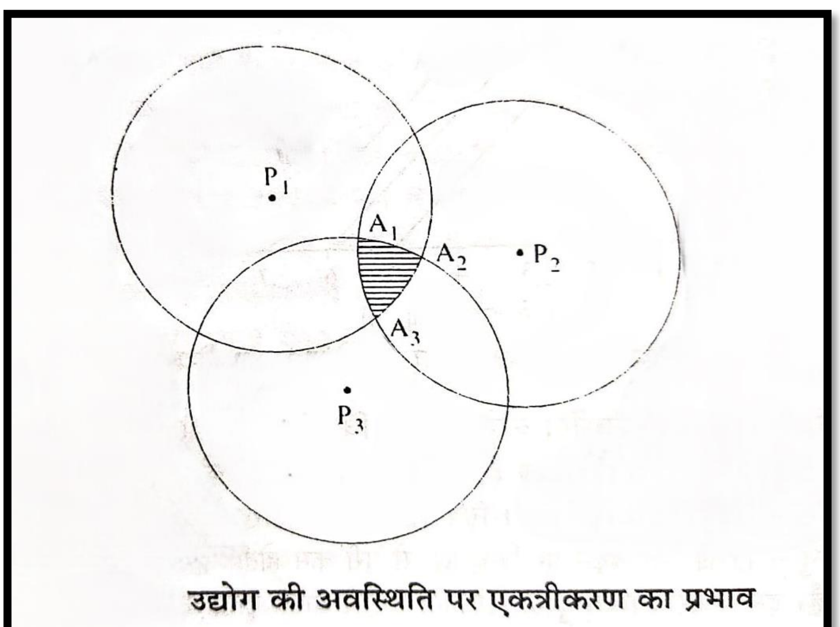

चित्र 8.7

इनके अनुसार यदि किसी द्वीप पर लौह अयस्क के भंडार मौजूद है और वहाँ पर तीन देश खनिज की शुद्धि अपनी शोधनशालायें स्थापित करना चाहते हैं चित्र में B_1, B_2, B_3 तीनों देश के समुद्र पत्तन हैं और R_1, R_2 और R_3 यदि शोधनशालाओं के लिये उपयुक्त क्षेत्र हैं। इनका मानना है कि यदि इन उद्योग को संयुक्त कार्य क्षेत्र (एकत्रीकरण) वाले स्थान में स्थापित किया जाये तो उद्योग फायदेमंद साबित होगा।

इस स्थिति का निर्धारण तीन समपरिवहन रेखाओं के प्रतिच्छेदन के माध्यम से हो सकता है।

संयुक्त कार्य क्षेत्र A_1, A_2, A_3 के भीतर उद्योग की स्थापना होने पर लौह अयस्क को लाना तथा शुद्ध लोहे को बाजार तक भेजना कुछ खर्चीला हो जायेगा किंतु वह एकत्रीकरण के माध्यम से अवस्थिति निर्धारित करने पर प्राप्त होने वाले लाभ से कम होगा। अतः कारखाने को A_1, A_2, A_3 से घिरे क्षेत्र के अंदर कहीं भी स्थापित किया जा सकता है।

8.14 सिद्धाँत का मूल्यांकन :–

1. ईजार्ड ने अपने अवस्थिति सिद्धान्त में कच्चे माल के स्त्रोत और बाजार केंद्र को निश्चित बिंदु मानकर सिद्धाँत का विश्लेषण किया है किंतु उत्पाद की माँग का क्षेत्र कितना विस्तृत है इस पर ध्यान नहीं दिया गया है।
2. कल्पना के आधार पर प्रतिपादित यह सिद्धान्त व्यवहारिक जगत में बहुत कम प्रभावी है।
3. इस पूरे सिद्धान्त में परिवहन व्यव पर सर्वाधिक बल दिया गया है किंतु उत्पादन प्रक्रिया की लागत पर विचार नहीं किया गया है।

बहुत सी कमियों के बावजूद यह सिद्धान्त उद्योग अवस्थिति के सिद्धान्तों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

8.15 साराँश :–

इस इकाई के माध्यम से उद्योग अवस्थिति क्या उसको कौन से कारक प्रभावित करते हैं तथा इससे संबंधित हूबर व इजार्ड द्वारा दिये गये सिद्धान्त को सरल व सहज ढंग से प्रस्तुत किया गया है ताकि वह विद्यार्थी को सहजता से समझ में आ जाये।

8.16 शब्द सूची :–

अवस्थिति (Location) कच्चा माल (Raw Material) उत्पादन लागत (Production Cost) परिवहन लागत (Transportation Cost) उत्पादित वस्तु (Product) बाजार बिंदु (Market Point) मध्यवर्ती बिंदु (Middle Point) अवस्थिति त्रिभुज (Location Traingle) समव्यय रेखायें (Even Espenditure Line) स्थानापत्र (Substitute)

8.17 परीक्षोपयोगी प्रश्न :–

(1) "आर्थिक क्रिया की अवस्थिति" इस पुस्तक के लेखक है :–

(1) अल्फ्रेड वेबर (2) डी० एम० स्मिथ

(3) ई० एम० हूबर (4) इजार्ड

(2) गाँव में बनाये जाने वाले मिट्टी के बर्तन उदाहरण है :–

(1) लघु उद्योग (2) कुटीर उद्योग के

(3) वृहद उद्योग के (4) उद्योग के

(3) परिवहन लागत से अभिप्राय है :–

(1) यात्रा भत्ता (2) कच्चे माल के स्त्रोत पर किया गया खर्च

(3) उत्पादन पर किया गया खर्च (4) परिवहन पर किया गया खर्च

(4) बाजार का अर्थ है :–

(1) जहाँ उत्पाद निर्मित होता है। **(2)** कच्चे माल की प्राप्ति का स्त्रोत

(3) जहाँ वस्तुओं का क्रय–विक्रय होता है। **(4)** जहाँ उत्पाद का पुनर्निर्माण होता है।

(5) उद्योग की अवस्थिति का अर्थ है :–

(1) उद्योग की पूँजी की स्थिति **(2)** श्रमिकों की स्थिति

(3) कच्चे माल की स्थिति **(4)** उद्योग का स्थानीयकरण

(6) मध्यवर्ती बिंदु का अर्थ है :–

(1) प्रारंभ का बिंदु **(2)** बीच का बिंदु

(3) अंत का बिंदु **(4)** क्रमानुसार बिंदु

(7) वाल्टर इजार्ड ने किस चीज पर विशेष जोर दिया।

(1) उद्योगों के स्थानीयकरण पर **(2)** स्थानापन्न पर

(3) कच्चे माल की प्राप्त पर **(4)** उत्पादन के निर्माण पर

(8) इजार्ड ने औद्योगक अवस्थिति सिद्धाँत का प्रतिपादन किया :–

(1) वर्ष 1856 में **(2)** 1956 में

(3) 1756 में **(4)** 1656 में

उत्तर: **1**.() 2.() 3.()4.()5.()6.()7.()8.()

8.18 महत्वपूर्ण पुस्तकें संदर्भ :–

(1) डॉ. बी० सी० जाट – आर्थिक भूगोल (पंचशील प्रकाशन जयपुर)

(2) एस० डी० मौर्य – आर्थिक भूगोल प्रवार्लेका पब्लिकेशन प्रयागराज

(3) एस० डी० मौर्य – प्रादेशिक नियोजन एवं विकास (प्रवालिका पब्लिकेशन प्रयागराज)

(4) डॉ० मोहम्मद हारून – आर्थिक भूगोल के तत्व (वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर उत्तर प्रदेश)

8.19 अभ्यास प्रश्न :–

(1) परिवहन लागत से क्या अभिप्राय है, समझाइये।

(2) उत्पादन लागत से आप क्या समझते हैं ?

(3) उद्योगों की अवस्थिति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों के बारे में समझाइये।

(4) बाजार बिंदु पर उद्योग की स्थापना से आप क्या समझते हैं ?

(5) स्थानापन्न शब्द का क्या अर्थ है ?

इकाई –09

उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्त–बेवर का सिद्धान्त,, बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त, समन्वित सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्‌दे”य

9.3 उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्त

9.3.1 बेबर का सिद्धान्त

9.3.1.1 वेबर के सिद्धान्त की मान्यताएं

9.3.1.2 परिवहन लागत

9.3.1.3 श्रम की लागत

9.3.1.4 एकत्रीकरण का प्रभाव

9.3.2 वेबर के सिद्धान्त की आलोचना

9.3.3 वेबर के सिद्धान्त में परिष्कार

9.3.3.1 परिवहन लागत का प्रभाव

9.3.3.2 बाजार बिन्दु पर उद्योग की स्थापना

9.3.3.3 कच्ची सामग्री या वस्तु का प्रतिस्थापन

9.3.3.4 उत्पादन प्रक्रिया लागत तथा उद्योग का स्थानीयकरण

9.3.4 हूवर के सिद्धान्त की आलोचना

9.4 बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त

9.5 समन्वित सिद्धान्त

9.6 सारां”ा

9.7 बोध प्र”न

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.1 प्रस्तावना

इकाई 8 में हमने वस्तु–निमार्ण उद्योग के बारे में समझा है। अब हम इस इकाई में यह समझेगें कि उद्योग की स्थापना किस स्थान पर करना लाभप्रद रहेगा। उद्योग के लिए स्थान का चयन उसके आव”यक तत्वों के समुचित मूल्यांकन के बाद ही किया जाता है।अधिकतम लाभ के लिए उद्योग की स्थापना किस स्थान पर स्थापित किया जाए इसके लिए वेबर महोदय ने उद्योग अवस्थिति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के माध्यम से वेबर महोदय ने उद्योग की आद”ा स्थिति के लिए परिवहन लागत, श्रम लागत तथा एकत्रीकरण के लाभ को महत्वपूर्ण माना है। हूबर महोदय ने वेबर के सिद्धान्त में परिमार्जन कर न्यूनतम लागत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उन्होनें किसी उद्योग में लगने वाली लागत में कच्ची सामग्री को एकत्रित करने, उत्पादन प्रक्रिया लागत एवं उत्पादित पदार्थ को बाजार तक लगने वाली लागत सम्मिलित रूप शामिल है। फेटर एवं होटलिंग ने उद्योग की अवस्थिति के लिए बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ग्रीनहट महोदय ने न्यूनतम लागत एवं

स्थनीयकरण अन्योन्याश्रित सिद्धान्तों का समन्वयन करते हुए समिन्वत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस प्रकार से इस इकाई का अध्ययन कर हम समझ सकेगें कि उद्योग की स्थापना के आद"ा स्थान का चयन कैसे किया जाता है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उद्योग स्थनीयकरण के सिद्धान्तों को समझ सकेगें।
- उद्योग की स्थापना पर परिवहन लागत, कच्चे माल एवं बाजार के महत्व को समझ सकेगें।
- हम यह भी जान सकेगें कि उद्योग की स्थापना क्यों सभी जगह नहीं हो सकती।

9.3 उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्त

अभी तक हमने इकाई 8 में उद्योग एवं उद्योगों के स्थानीयकरण के बारे में पढ़ा है। उद्योग की स्थापना में स्थान का चयन बहुत महत्वपूर्ण होता है। स्थान निर्धारण में प्रमुख समस्या उद्योग के आव"यक तत्वों को एक स्थान पर एकत्र करना है।सभी तत्वों की वि"ोषतायें अलग–अलग और उद्योगों के लिए उसका सापेक्षिक आकर्षण भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। अतः उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए अनिवार्य तत्वों के सापेक्षिक आकर्षण की समस्या का समाधान विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से हल किया जाता है। उद्योग स्थानीयकरण के लिए परिवहन लागत की समस्या का समाधान न्यूनतम लागत सिद्धान्त के द्वारा, क्षेत्रीय मांग की आपूर्ति का समाधान बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त एवं अधिकतम लाभ प्राप्ति सिद्वान्त से किया जाता है। उद्योग स्थानीयकरण के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या अधोलिखित है:

9.3.1 बेबर का सिद्धान्त

प्रख्यात जर्मन अर्थ"ाास्त्री अल्फ्रेड वेबर नें उद्योग के स्थानीयकरण का सिद्धान्त प्रतिपादन का प्रथम विद्वान थे। अल्फ्रेड वेबर ने 1909 ई0 में जर्मन भाषा'Uber den Standort den Industrien' में किया था। दुरूह जर्मन भाषा में होने के कारण प्रारम्भ में उनके सिद्धान्त को अधिक ख्याति नहीं मिल सकी। इनके सिद्धान्त को प्रसिद्धि तब मिली जब सन 1929 इसका अंग्रेजी में अनुवाद'Theory of Location of Industries'नाम से प्रका"ात हुआ।

वेबर ने अपने सिद्धान्त को समझाने के लिए परिभाषित शब्दों एवं मान्यताओं का सहारा लिया, जो अधोलिखित है–

परिभाषिक शब्द

- **सर्वत्र सुलभ पदार्थ**– ऐसे पदार्थ जो सभी स्थानों पर सुगमता से प्राप्त हो जाते है तथा जिनके लिए सभी जगह एक ही मूल्य चुकाना पड़ता है। इन पदार्थ को सर्वत्र सुलभ पदार्थ कहते है। जैसे– मिट्टी, जल, वायु इत्यादि।
- **स्थानीय पदार्थ**– वे पदार्थ जो किसी क्षेत्र वि"ोष या किसी स्थान में ही प्राप्त होते है, हर जगह नहीं स्थानीय पदार्थ कहलाते है।
- **शुद्ध पदार्थ**– कुछ कच्ची सामाग्री ऐसी होती है जिनका वजन वस्तु के निमार्ण में घटता नहीं है, शुद्ध पदार्थ कहलाते है। उदाहरण स्वरूप सूत से धागा बनाते समय कपड़े का वजन सूत के भार के बराबर होता है।
- **मिश्रित पदार्थ**–वे स्थानीय पदार्थ जिनका भार वस्तु उत्पादन प्रक्रिया में कम हो जाता है, मिश्रित पदार्थ कहलाता है। जैसे बाक्साइट से एल्युमिनियम बनाने की प्रक्रिया में उत्पादित वस्तु कच्ची सामाग्री के भार की अपेछा हल्की होती है।
- **पदार्थ सूचकांक**– पदार्थ सूचकांक ,उत्पादित वस्तु एवं कच्ची सामग्री के वजन अनुपात को कहते है। शुद्ध पदार्थ का पदार्थ सूचकांक 1 होता है।

- **स्थानीयकरण भार**— प्रति इकाई वस्तु उत्पादन के लिए कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तु दोनो मिलाकर जितने भार का परिवहन करना होता है उसे स्थानीयकरण भार कहते है। सर्वसुलभ पदार्थों का उपयोग करने वाले उद्योग का स्थानीयकरण भार 1 होता है क्योंकि केवल उत्पादित वस्तु का ही परिवहन करना पड़ता है। यदि शुद्ध पदार्थ से वस्तु निर्मित करने वाले उद्योग है तो उन्हें कच्ची सामाग्री और उत्पादित वस्तु दोनों का बराबर—बराबर भार परिवहन करना पड़ता है, इसलिए उसका स्थानीयकरण भार 2 होगा।
- **आइसोडापेन**— उस प्रदर्शित करने वाली रेखा को जो समान परिवहन लागत को दर्शाता है, आइसोडापेन कहते है।

9.3.1.1 वेबर के सिद्धान्त की मान्यताएं

वेबर ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में अधोलिखित मान्यताओं का सहारा लिया है—

1. जहाँ कारखाने की स्थापना करनी हो वह एक विलग स्वतंत्र इकाई हो और एक ही प्र"ाासनिक व्यवस्था के अधीन हो। यहाँ सर्वत्र समान जलवायु, संस्कृति, तकनीक आदि भौगोलिक द"ााओं में समानता पायी जाती है।
2. उद्योग की स्थानीयकरण का वि"लेषण एक समय में एक ही उत्पादन वस्तु के संदर्भ में किया जा रहा है। अतः एक ही प्रकार की परन्तु भिन्न गुणों वाली वस्तुएं है तो उसे भिन्न वस्तुएं मानी जायेंगी।
3. कच्ची सामाग्री के स्रोत तथा उसकी स्थिति का पूरा ज्ञान है।
4. बाजार के स्थान का भी पूरी तरह से ज्ञान हैं। बाजार एक दूसरे से पृथक बिन्दु रूप में ही है। अप्रत्यक्ष तौर पर बाजारों में वस्तुओं की आपूर्ति को लेकर पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति विद्यमान है। प्रत्येक उत्पादक को असीमित बाजार सुलभ है,कोई भी उत्पादक किसी स्थान पर उद्योग स्थापित करके बाजार में एकाधिकार प्राप्त नहीं कर सकता।
5. श्रम सभी जगह समान रूप से उपलब्धनहीं होते बल्कि कुछ नि"चत प्रदे"ाों में उपलब्ध होते हैं। कुछ स्थानों पर निर्धारित दर पर पर्याप्त संख्या में श्रमिक उपलब्ध होते है।
6. कच्चामाल या उत्पादित वस्तु का परिवहन व्यय केवल भार एवं दूरी के अनुपात में ही बढ़ता है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर वेबर ने बताया कि उद्योग की स्थापना कहाँ की जाय जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इनके अनुसार उद्योग की अवस्थिति को परिवहन लागत, श्रम लागत एवं समूहन अथवा एकत्रीकरण के लाभ निर्धारित करते है। वे सर्वप्रथम यह नि"चत करते हैं कि किसी प्रकार न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु निर्धारित हो, तत्प"चात श्रम तथा एकत्रीकरण द्वारा लाभ ध्यान दिया जाता है।

9.3.1.2 परिवहन लागत

वेबर ने उद्योग की स्थापना में परिवहन व्यय को प्रमुख स्थान दिया है। कच्चे माल एवं उत्पादित वस्तु का न्यूनतम परिवहन व्यय यह निर्धारित करता है कि उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के स्रोत पर हो या बाजार के निकट अथवा दोनों के मध्य किसी स्थान पर हो। न्यूनतम परिवहन व्यय का वि"लेषण दो द"ााओं के आधार पर किया गया हैः

प्रथम दशा— एक बाजार और एक कच्चा माल स्रोत

इस द"ाा में यदि मान लिया जाय कि उद्योग में एक ही कच्ची सामाग्री का उपयोग होता है जो स्रोत। A से प्राप्त होता है तथा उत्पादित वस्तु की खपत एक ही बाजार बिन्दु B पर होती है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना की सम्भावना चार स्थानों पर हो सकती है—

I. यदि कच्ची सामाग्री सर्वत्र सुलभ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु B पर होगा क्योंकि इससे कच्चे माल एवं उत्पादित वस्तु के परिवहन व्यय पर खर्च बहुत कम होगा ।

II. यदि कच्ची सामाग्री शुद्ध तथा स्थानीय है तो उद्योग बाजार या कच्ची सामाग्री अथवा उन दोनों के मध्य किसी बिन्दु पर स्थापित हो सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि किसी भी द"ाा में परिवहन लागत एक समान

होता है। इसको इस प्रकार से समझ सकते है, यदि कच्ची समाग्री के स्रोत पर उद्योग स्थापित होता है तो कच्ची सामाग्री पर परिवहन व्यय कम और उत्पादित वस्तु को बाजार में पहुँचाने पर परिवहन व्यय अधिक होगा। यदि उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर किया जाय तो कच्ची सामाग्री को बाजार तक लाने में परिवहन व्यय अधिक खर्च होगा और उत्पादित वस्तु पर कम तथा उद्योग को यदि बाजार एवं कच्ची सामाग्री के स्रोत के मध्य किसी बिन्दु पर स्थापित किया जाय तो दोनो का परिवहन व्यय बराबर होगा।

III. यदि कच्चा पदार्थ मिश्रित पदार्थ है तो उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के स्रोत पर होगी। ऐसा इसलिए क्योंकि मिश्रित पदार्थ में सम्मिलित अनाव"यक भार उत्पादन प्रक्रिया में कम हो जायेगा और कम भार वाली उत्पादित वस्तु का ही बाजार तक परिवहन खर्च पड़ेगा।

दूसरी दशा : एक बाजार और दो कच्ची सामाग्री का स्रोत

यदि किसी उद्योग में वस्तु के निर्माण में दो कच्ची सामाग्रियों का उपयोग होता है और उस वस्तु का बाजार एक स्थान पर स्थित हो तो ऐसी द"ाा में उद्योग के स्थापना की निम्न सम्भावना हो सकती है–

I. यदि दोनों कच्ची सामग्रियां सर्वत्र सुलभ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर होगा क्योंकि ऐसी द"ाा में परिवहन व्यय न्यूनतम होगा।

II. यदि कच्ची सामग्रियां शुद्ध पदार्थ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर ही होगी। ऐसी स्थिति में दोनों कच्चे माल चित्र 13.1 के अनुसार R1 और R2 स्रोत से बाजार भेज दी जायेगी तो कुल खर्च कम पड़ेगा। यदि एक कच्ची सामग्री को दूसरे कच्ची सामग्री तक ले जाया जाय तो उत्पादित सामग्री को बाजार भेजना पड़ेगा जो दोनों कच्ची सामग्रियों के कुल भार के बराबर होगा। इस तरह से एक कच्ची सामग्री को दूसरे कच्ची सामग्री के स्रोत तक ले जाने पर अतिरिक्त परिवहन व्यय खर्च करना पड़ेगा। यदि दूसरी कच्ची सामग्री का स्रोत पहली कच्ची सामग्री और बाजार बिन्दु के मध्य में स्थित हो तो भी उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर होगी क्योंकि कच्ची सामग्री को उतारने तथा उत्पादित वस्तु को लादने का अतिरिक्त खर्च वहन करना पड़ेगा।

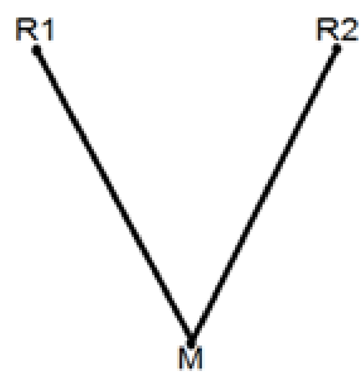

चित्र 9.1

III. उद्योग में प्रयुक्त कच्ची सामग्री यदि शुद्ध पदार्थ और सर्वत्र सुलभ पदार्थ है तो उद्योग की स्थापना बाजार बिन्दु पर होगा। ऐसी द"ाा में शुद्ध पदार्थ के लिए किसी भी बिन्दु उद्योग स्थापित हो परन्तु बाजार बिन्दु पर स्थापित होने पर सर्वत्र सुलभ पदार्थ के लिए अतिरिक्त परिवहन खर्च नहीं देना पड़ेगा।

IV. चित्र 9.2 के अनुसार यदि दोनों कच्ची सामग्रियां मिश्रित पदार्थ है तो उद्योग के स्थान निर्धारण का कार्य कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना के लिए वेबर महोदय ने स्थानीयकरण त्रिभुज का सहारा लिया। त्रिभुज के आधार के सिरों पर प्रथम कच्चे माल का स्रोंत। , दूसरे कच्चे माल का स्रोत B है और इसके शीर्ष बिन्दु पर बाजार बिन्दु Cको मान लिया जाए तो उद्योग की स्थापना निम्न आधार पर होगीः

यदि मान लिया जाय कि दोनों कच्ची सामाग्री से निर्मित वस्तु उत्पादन प्रक्रिया में 50–50 प्रति"ात कम हो जाती है और प्रत्येक की उद्योग में माँग 500 टन प्रतिवर्ष है तथा दोनों कच्ची सामग्रियों के स्रोत्र और बाजार बिन्दु एक दूसरे से 50–50 किमी की दूरी पर स्थित है। इस स्थिति में उद्योग किस स्थान पर स्थापित किया जाय कि परिवहन व्यय न्यूनतम हो, अधोलिखित गणना से जान सकते हैः

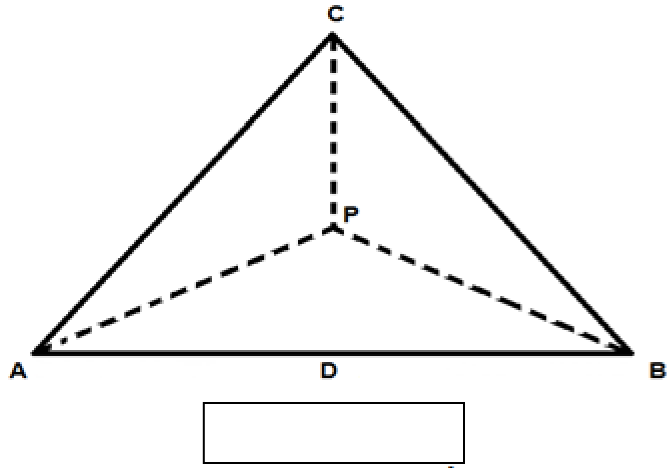

स्थानीयकरण का त्रिभुज

चित्र 9.2

- यदि उद्योग को बाजार बिन्दु C पर स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय होगा :

  A से बाजार बिन्दु C तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

  B से बाजार बिन्दु C तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

  दोनों कच्ची सामग्रियों को बाजार तक पहुँचानें का कुल परिवहन व्यय

  = 2,00,000 टन किमी.

- यदि दोनों कच्ची सामग्रियों के स्रोत में से। A या B पर उद्योग को स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय होगा :

  यदि मान लिया जाय उद्योग A बिन्दु पर स्थापित किया गया है तो

  A से Bतक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

  Aसे बाजार बिन्दु C तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

  = 1,00,000 टन किमी.

कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तु को बाजार तक पहुँचाने का कुल परिवहन व्यय

= 1,00,000 + 1,00,000 टन किमी.

= 2,00,000 टन किमी.

यदि उद्योग को C बिन्दु पर स्थापित किया जाय तो भी कुल परिवहन व्यय 2,00,000 टन किमी. होगा।

- उक्त तीनों स्थानों से हटकर यदि उद्योग को दोनों कच्ची सामग्रियों के स्रोत Aएवं B के मध्यवर्ती बिन्दु D पर स्थापित किया जाये तो परिवहन व्यय :

A से D तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

=50,000 टन किमी.

B से D तक परिवहन व्यय= 1,000 टन × 50 किमी.

=50,000 टन किमी.

उत्पादित वस्तुओं के 500 टन भार को D बिन्दु से बाजार बिन्दु C तक पहुँचानें का परिवहन व्यय = 500 टन × 815 किमी.

= 815,000 टन किमी.

कुल परिवहन व्यय(A+B+C) = 50,000 + 50,000+815,000

= 1,815,000 टन किमी.

- परन्तु यदि त्रिभुज के अन्दर इन तीनों बिन्दुओं के बीच P बिन्दु पर उद्योग को स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय और कम हो जायेगा। इसे इस प्रकार से समझ सकते हैः

- A से P तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

= 50,000 टन किमी.

B से P तक परिवहन व्यय = 1,000 टन × 50 किमी.

= 50,000 टन किमी.

उत्पादित वस्तुओं के 500 टन भार को P बिन्दु से बाजार बिन्दु C तक पहुँचानें का परिवहन व्यय = 500 टन × 151 किमी.

= 151,000 टन किमी.

कुल परिवहन व्यय = 50,000 + 50,000+151,000

= 1,151,000 टन किमी.

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट है कि उद्योग को A,B या C स्थान पर स्थापित करने पर परिवहन व्यय अधिक होगा, जबकि इसकी तुलना में D बिन्दु पर स्थापित करने पर परिवहन व्यय कम होगा। सबसे आद"ो स्थिति त्रिभुज के अन्दर P बिन्दु होगा जहाँ परिवहन व्यय सबसे कम होगा और समय की बचत होगी। यदि किसी एक कच्ची सामाग्री का भार अधिक है और उत्पादन प्रकिया में ह्रास कम होता है तो उद्योग की स्थापना का बिन्दु उसकी तरफ आकर्षित होगा।

9.3.1.3 श्रम की लागत :

परिवहन खर्च के साथ ही वेबर ने श्रम की लागत को भी उद्योग के स्थनीयकरण में महत्वपूर्ण माना है। उनका मानना है कि श्रम की लागत स्थान–स्थान पर अलग–अलग होता है तथा कुछ नि"चत स्थानों पर मिलता है।श्रम पर खर्च कम करने के लिए उद्योग की स्थापना उस बिन्दु से हटकर हो सकती है जो परिवहन की दृष्टि से सर्वोत्तम है, परन्तु उस बिन्दु से हटने पर परिवहन पर खर्च जितना बढ़ता है उससे अधिक या उतना श्रम के खर्च

में बचत हो। परिवहन व्यय की दृष्टि से सर्वोत्तम बिन्दु से हटने पर जिन–जिन बिन्दुओं पर परिवहन खर्च में इकाई वृद्धि होती है उसको मिलाने वाली रेखा को आइसोडापेन कहते है।

इसे हम चित्र 9.3 के माध्यम से समझ सकते है। चित्र में M बाजार बिन्दु है एवं N बिन्दु पर कच्ची सामाग्री उपलब्ध है।अब यदि मान लिया जाय कि प्रति इकाई उत्पादन के लिए दुगुने वजन की कच्ची सामग्री का उपयोग होता है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के स्रोत्र N बिन्दु पर होगी। चित्र में M बिन्दु को केन्द्र मान कर खींचे गये वृत्त खण्ड उत्पादित वस्तु के परिवहन व्यय को प्रदर्शित करता है तथाN बिन्दु को केन्द्र मानकर खींचे गये वृत्त खण्ड कच्ची सामाग्री का परिवहन व्यय बताते है। चूंकि कच्ची सामाग्री का परिवहन व्यय, उत्पादित वस्तु के परिवहन व्यय का दूना है इसलिए M बिन्दु से खींचे गये सकेन्द्रीय वृत्त N बिन्दु से दूने के अन्तर पर दिखाये गये है।

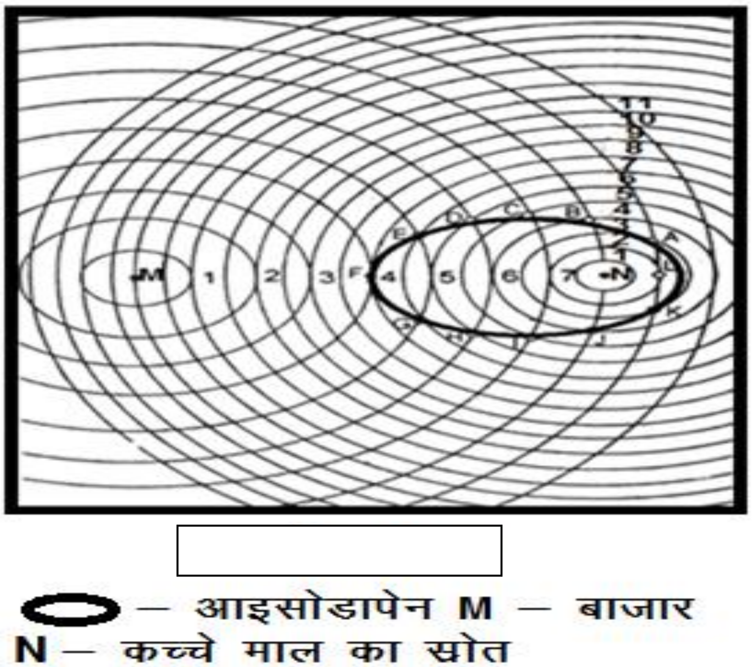

चित्र 9.3

अब यदि मान लेते है कि उद्योग को N बिन्दु पर न स्थापित करके B बिन्दु पर स्थापित करते है तो उत्पादित वस्तु का परिवहन व्यय 8 इकाई ही खर्च होगा, जितना N बिन्दु पर होता है, परन्तु कच्ची सामाग्री पर 4 इकाई का अतिरक्त खर्च आयेगा। इस प्रकार परिवहन खर्च कुल 12 इकाई होगा जो N बिन्दु की अपेछा 4 इकाई अधिक है। उसी प्रकार B के अलावा A,C,D,E,F,G,H,I,J,K,L, सभी ऐसे बिन्दु है जहाँ उद्योग स्थापित करने पर N बिन्दु की तुलना में 4 इकाई अतिरिक्त परिवहन खर्च होगा।अतः इन बिन्दुओं को मिलाकर खींची गयी रेखा आइसोडापेन है जिसका मान 4 इकाई है। यदि इन बिन्दुओं पर उद्योग को स्थापित करने पर श्रम में लगने वाले खर्च में कम से कम 4 इकाई की बचत होती है तो उद्योग को इनमें से किसी भी बिन्दु पर स्थापित किया जा सकता है। इसके बाहर उद्योग को स्थापित करने पर हानि उठानी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में 4 इकाई वाले मान को क्रान्तिक आइसोडापेन कहते है।

9.3.1.4 एकत्रीकरण का प्रभाव :

वेबर महोदय उद्योग को स्थापित करने में परिवहन व्यय तथा श्रम के प्रभाव की ही तरह एकत्रीकरण के प्रभाव को भी महत्व दिया है। एकत्रीकरण तीन प्रकार से होता है–

- उद्योग के विस्तार से, जिसके कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन जन्य लाभ प्राप्त हो सके।

- बड़ी संख्या में एक ही प्रकार के उद्योग एक स्थान पर स्थापित हो, जिससे सामान्य तकनीकी सुविधायें तथा उत्पादित वस्तु के लिए विक्रय संबंधी सुविधायें प्राप्त होती है।
- एक स्थान पर विभिन्न प्रकार के उद्योगों के स्थापित होने से सामूहिक रूप से सामान्य सुविधायें जैसे परिवहन के साधन आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते है।

वेबर के अनुसार यदि मान लिया जाय कि उद्योग के उत्पादन खर्च में श्रम का कोई प्रभाव नहीं है, और हम उद्योग को परिवहन खर्च की दृष्टि से सर्वोत्तम बिन्दु से एकत्रीकरण बिन्दु की ओर ले चलें तो जितना परिवहन खर्च बढ़ेगा यदि उतना लाभ एकत्रीकरण से होगा। अतः उद्योग की स्थापना परिवहन की दृष्टि से सर्वोत्तम बिन्दु से हट उतनी दूर हो सकी है जहाँ तक एकत्रीकरण से उत्पन्न लाभ परिवहन व्यय की दृष्टि से अधिक अथवा बराबर हो।

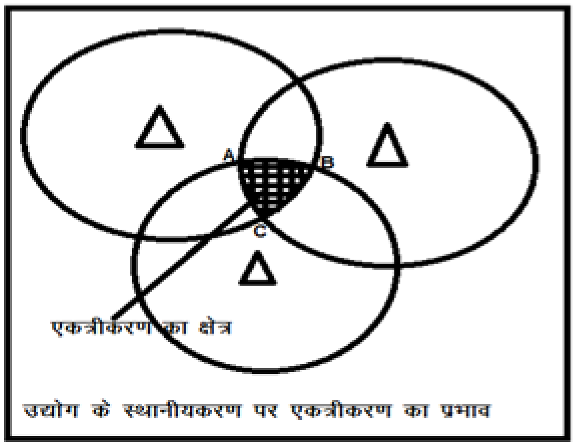

चित्र 9.4

चित्र 9.4 में तीन स्थानीयकरण त्रिभुज दिये हुए है। प्रत्येक ़त्रिभुज में एक ऐसा बिन्दु है जो परिवहन की दृष्टि से सर्वोत्तम है। इसे केन्द्र मानकर आइसोडापेन खींचे गये है जिनमें से प्रत्येक का मान 5 इकाई है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना आद"ा स्थिति से हटकर 5 मान वाले तीनों आइसोडापेन के मध्यवर्ती किसी भी बिन्दु पर स्थापित किया जा सकता है,परन्तु तब जबकि एकत्रीकरण से 5 इकाई या अधिक का लाभ प्राप्त हो। एकत्रीकरण में वृद्धि होने से होने वाले लाभ में भी वृद्धि हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर वेबर महोदय ने अधोलिखित निष्कर्ष निकाले है–

- उद्योग के स्थानीयकरण में परिवहन व्यय का सामान्य प्रभाव नहीं अपितु विभिन्न स्थानों के सापेक्षिक परिवहन व्यय का प्रभाव पड़ता है।
- उद्योग की स्थापना शुद्ध पदार्थ वाली कच्ची सामाग्री के स्रोत पर होना अनिवार्य नहीं होता है।
- उद्योग को ऐसे कच्ची सामाग्री के स्रोत्र आकर्षित करते है जो मिश्रित प्रकार के होते है। यदि उद्योग में एक से अधिक कच्ची सामाग्री का उपयोग होता है, तो उनमें से सबसे अधिक भार वाली कच्ची समाग्री की तरफ उद्योग स्थापित होगा।
- उद्योगों में प्रयुक्त कच्ची सामाग्रियों का पदार्थ सूचकांक कम है तो वे बाजार की तरफ आकर्षित होंगे और यदि अधिक है तो कच्ची सामाग्री की तरफ।
- स्थनीयकरण त्रिभुज के भीतर उद्योग की स्थापना कच्ची सामाग्री के सापेक्षिक भार पर निर्भर करती है। यदि सापेक्षिक भार अधिक है तो उद्योग कच्ची सामाग्री के स्रोत पर स्थापित होगा। उद्योग में प्रयुक्त सभी कच्ची सामग्रियों का भार यदि कम है तो उसकी स्थापना में श्रम का प्रभाव अधिक होगा।

9.3.2 वेबर के सिद्धान्त की आलोचना :

वेबर ने इस सिद्धान्त के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि कौन सा स्थान उद्योग की स्थापना की दृष्टि से उपयुक्त है जिससे अधिक लाभ प्राप्त हो सके। इनका सिद्धान्त ऐसी मान्यताओं के आधार पर प्रारम्भ होता है जो वास्तविक जगत में प्राप्त नहीं हैं। वेबर के सिद्धान्त की आलोचनायें इस प्रकार से हैः

- वेबर ने उद्योग की स्थापना में परिवहन लागत पर आव"यकता से अधिक ध्यान दिया है। उत्पादन प्रक्रिया एवं वस्तुओं के माँग पक्ष पर ध्यान नहीं दिया है।
- इस सिद्धान्त का सम्पूर्ण विवेचन बाजार केन्द्र तथा कच्ची सामग्री को नि"चत बिन्दु मानकर हुआ है।परन्तु कच्ची सामग्री का क्षेत्र व्यापक होता है और मांग के अनुसार कृषिगत और वन्य आधारित कच्ची सामग्री क्षेत्र का विस्तार होता है।
- परिवहन व्यय में वृद्धि कच्ची सामग्री के भार और दूरी के अनुपात में माना है, जबकि वास्तविक रूप में परिवहन खर्च बढ़ती दूरी के अनुपात में घटता है।
- वेबर न्यूनतम लागत बिन्दु को ही अधिकतम लाभ का बिन्दु मानते है परन्तु वास्तविक रूप में ऐसा नहीं पाया जाता है।

9.3.3 वेबर के सिद्धान्त में परिष्कार :

वेबर महोदय के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण परिष्कार 1948 में हूवर महोदय ने अपनी पुस्तक ' लोके"ान आफ इकोनॉमिक एक्टिविटी' में किया। इन्होंने परिवहन लागत को अधिक तर्क संगत बनानें का प्रयास किया तथा उत्पादन लागत पर भी ध्यान दिया। हूवर महोदय के अनुसार किसी उद्योग में आने वाली लागत तीन प्रकार की होती हैः

1. कच्चे माल को इकट्ठा करने वाली लागत।
2. उत्पादन प्रक्रिया संबंधी लागत।
3. उत्पादित सामग्री को बाजार में पहुँचाने की लागत।

उपर्युक्त तीनों लागत में से प्रथम और तृतीय लागत परिवहन पर आने वाली खर्च में सम्मिलित होती है। इस प्रकार से किसी उद्योग में तैयार वस्तु पर दो प्रकार का खर्च आता है। प्रथम परिवहन खर्च और दूसरा उत्पादन प्रक्रिया में लगने वाला खर्च। अतः उक्त दोनों लागतें जहाँ कम होगी वही स्थान उद्योग की स्थापना की दृष्टि से उत्तम होगा। इसका विवेचन उन्होंने निम्न प्रकार से किया है–

9.3.3.1 परिवहन लागत का प्रभाव :

हूवर महोदय के अनुसार किसी उद्योग को ऐसे स्थान पर स्थापित करना श्रेयष्कर होगा जहाँ परिवहन पर खर्च न्यूनतम हो। यह दो प्रकार से हो सकता है– प्रथम कच्चे माल को एकत्र करने में लगने वाला न्यूनतम परिवहन व्यय, दूसरा उत्पादित वस्तु को बाजार तक पहुँचाने का न्यूनतम परिवहन व्यय। कच्ची सामग्री पर लगने वाला परिवहन व्यय तब न्यूनतम होगा जब उद्योग की स्थापना कच्ची सामग्री के स्रोत के जितना ही निकट होगा। उत्पादित वस्तु को बाजार तक पहुँचाने का परिवहन व्यय भी जहाँ से न्यूनतम हो।इन दोनों परस्पर विरोधी कारको के बीच उद्योग को संतुलन स्थापित करना होगा तभी आद"ा स्थान पर उद्योग को स्थापित किया जा सकेगा। यह संतुलन कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तु की विभिन्न गुणों के अनुसार विभिन्न द"ााओं में विभिन्न स्थलों पर स्थापित होता है। उन्होंने दो द"ााओं के आधार पर अपने सिद्धान्त की व्याख्या की हैः

एक कच्ची सामग्री एवं एक उत्पादित वस्तु की दशा –

यदि मान लिया जाय कि उद्योग में एक ही कच्ची सामग्री का उपयोग होता है जो किसी एक ही नि"चत स्रोत से प्राप्त है तथा उससे एक ही वस्तु का उत्पादन होता है जिसका बाजार एक स्थान वि"ोष पर केन्द्रित है, तब न्यूनतम परिवहन लागत किस स्थान पर होगा इसे अधोलिखित विवेचन से समझ सकते हैः

इसे हम चित्र 9.5 से समझ सकते है जिसमें कच्चे माल के स्रोत और बाजार बिन्दु को मिलाने वाली सीधी परिवहन मार्ग है। कच्चे माल को एकत्रित करने का परिवहन व्यय A वक्ररेखा तथा उत्पादित सामग्री को बाजार तक पहुँचाने का परिवहन व्यय B वक्र रेखा तथा C वक्र रेखा दोनों का कुल परिवहन व्यय प्रद"ति कर रही है। इनके अनुसार

परिवहन व्यय प्रति किमी0 या मील की दर से लगातार नहीं बढ़ता अपितु कई चरणों में बढ़ता है। इसीलिए चित्र में परिवहन व्यय की रेखा वक्र के रूप में नहीं बल्कि चरणबद्ध दिखाई गयी है। उदाहरण के लिए 1–5, 6–5, 1–20, 21–50 किमी0 के चरणों में प्रति इकाई वजन की दर से परिवहन का भाड़ा बढ़ता है। इसे हम ऐसे समझ सकतें है कि एक चरण के अन्तर्गत समान भाड़ा लगता है जैसे 1–5 के चरण में जितना भाड़ा 1 किमी0 की दूरी तय करने पर लगता है उतना ही 5 किमी0 की दूरी तय करने में भी लगता है।किसी वस्तु वि"ोष को अधिक दूर भेजने पर नजदीक की तुलना में परिवहन खर्च कम लगता है। उदाहरण के लिए किसी वस्तु को 50 किमी भेजने में जितना भाड़े की दर होती है, उसकी तुलना में 500 किमी0 भेजने पर भाड़े की दर कम होती है। इसी कारण से A,B वक्र रेखायें कई चरणों में उठती हुई प्रद"िंत हो रही है।

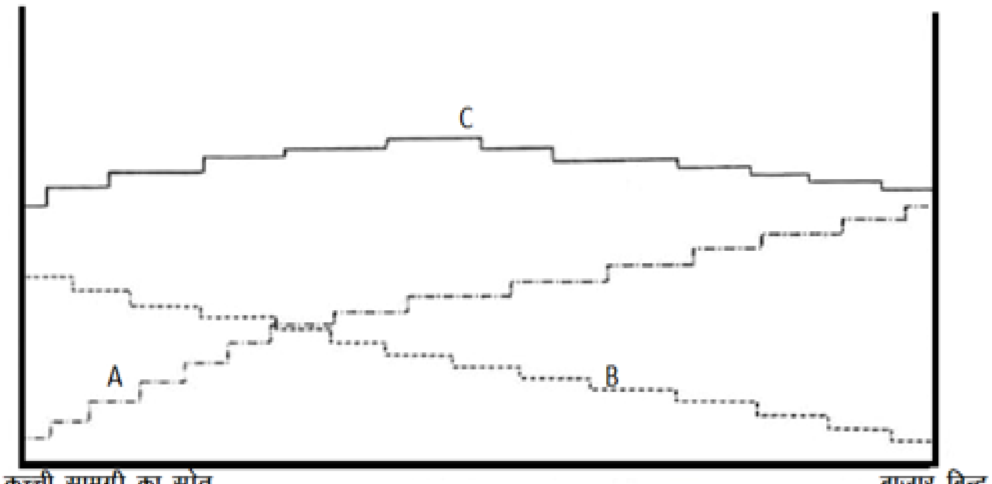

एक कच्ची सामग्री एवं एक बाजार बिन्दु की दशा में उद्योग का स्थानीयकरण

चित्र 9.5

A वक्र रेखा कच्ची सामग्री के स्रोत से बाजार बिन्दु तक जैसे–जैसे बढ़ रहा है उसकी उँचाई बढ़ रही है अर्थात उच्च परिवहन दर को प्रद"िंत कर रही है। ऐसे ही B वक्र रेखा बाजार बिन्दु पर निम्नतम और दूरी के साथ कच्ची सामग्री के स्रोत की तरफ चरणबद्ध के रूप में क्रम"ाः बढ़ रही है।दोनो वक्र रेखाओं से स्पष्ट हो रहा है कि कच्ची सामग्री का परिवहन खर्च उत्पादित वस्तु की अपेछा अधिक है।वक्र रेखा C कच्ची सामग्री के स्रोत तथा बाजार बिन्दु के बीच कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तुओं का कुल परिवहन व्यय के सम्भव बिन्दुओं को द"ाा रही है। इस वक्र रेखा की न्यूनतम उँचाई कच्ची सामग्री के स्रोत पर है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना कच्ची सामग्री के स्रोत पर लाभप्रद होगी। परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि उत्पादित वस्तु पर परिवहन व्यय अधिक और कच्ची सामग्री पर कम लग रहा है तो न्यूनतम परिवहन लागत का बिन्दु बाजार केन्द्र पर होगा और उद्योग की स्थापना भी इसी बिन्दु पर होगी। उद्योग की स्थापना दोनो बिन्दुओं के मध्य किसी बिन्दु पर नही होगी क्योंकि वक्र रेखा Cउन्नतोदर है। अतः स्पष्ट है कि किसी उद्योग में एक कच्ची सामग्री तथा उससे उत्पादित एक ही सामग्री की द"ाा में परिवहन लागत की दृष्टि से उद्योग की स्थापना या तो बाजार बिन्दु पर होगी अथवा कच्ची सामग्री के स्रोत पर।

इसका एक अपवाद भी है। यदि परिवहन माध्यम एक छोर से दूसरे छोर तक समान नहीं है अर्थात बीच में किसी स्थान पर साधन बदलना पड़ता है तो ऐसी स्थिति में किस स्थान पर परिवहन लागत न्यूनतम होगा। क्योंकि दो माध्यमों का परिवहन दर भिन्न–भिन्न होता है। उदाहरण के लिए जब कच्ची सामग्री या उत्पादित वस्तु को रेल, सड़क या जल परिवहन के द्वारा ले जाया जाता है तो दो परिवहन साधनों के मिलन बिन्दु पर समान को उतारना और लादना पड़ता है। इस कारण से परिवहन व्यय के अलावा उतारने–लादनें का अतिरिक्त खर्च को भी वहन करना पड़ता है, जिससे लागत बढ़ जाती है। ऐसी द"ाा में यदि इस स्थान पर उद्योग की स्थापना की जाय तो अतिरिक्त खर्च से बचा जा सकता है।

दो या दो से अधिक कच्ची सामग्री एवं उत्पादित वस्तु की दशा – यदि किसी उद्योग में दो या दो से अधिक कच्ची सामग्री का उपयोग होता है तो उद्योग की स्थापना कहाँ की जाय इसका निर्धारण कठिन हो जाता

है। ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना पर परिवहन मार्गों की संरचना एवं प्रतिरूप, परिवहन मार्गों के किनारे पड़ने वाले कच्ची सामग्री के स्रोत, परिवहन मार्गों के मिलन बिन्दु एवं बाजार की क्रमिक भौगोलिक स्थिति आदि पर निर्भर करती है। इसे हम अधोलिखित उदाहरण से समझ सकते है–

चित्र 9.6 में एक कल्पित परिवहन जाल को द”ार्या गया है जिसके किनारे विभिन्न बाजार बिन्दु स्थित है। मान लिया कि किसी उद्योग में उत्पादन हेतु दो कच्ची सामग्री लोहा एवं कोयला का उपयोग होता है। लोहा। बिन्दु पर और कोयला B बिन्दु पर उपलब्ध है। यदि मान लिया जाय कि लोहा, कोयला एवं उत्पादित सामग्री का प्रति किमी0 परिवहन व्यय 2:5:4 के अनुपात में है, तो इनका आकर्षण भी उद्योग की तरफ इसी अनुपात में होगा। ऐसी स्थिति में उद्योग के स्थापना का कोई एक सर्वोत्तम स्थान नहीं होगा। अतः कच्ची सामग्री की परिवहन मार्ग के किनारे एवं बाजार की क्रमिक स्थिति के अनुसार कई स्थान उपयुक्त होंगे–

‘A’ बिन्दु पर उद्योग की स्थापना – ऐसे बाजार बिन्दुओं के लिए जोA बिन्दु जहाँ पर लोहा का स्रोत उपलब्ध है, उसके आगे तथा शाखा मार्ग पर स्थित है। इनके लिए A बिन्दु पर उद्योग को स्थापित करने पर परिवहन व्यय न्यूनतम पड़ेगा। यदि उद्योग की स्थापना। A तथा B के मध्य किसी स्थान पर किया जाय तो लोहा और उत्पादित वस्तु पर भी कुछ दूरी तक ढ़ोने पर परिवहन खर्च लगेगा जबकि A बिन्दु पर उद्योग को स्थापित करने पर केवल उत्पादित वस्तु का परिवहन व्यय लगेगा।

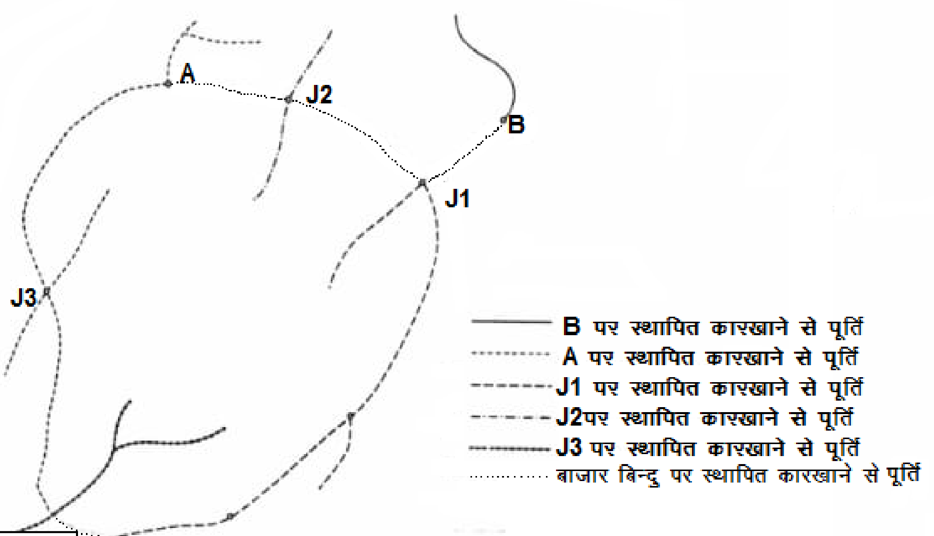

चित्र 9.6 **एक से अधिक कच्ची सामग्री स्रोत, उत्पादित वस्तु तथा बाजार बिन्दु की दशा में उद्योग का स्थानीयकरण (हुवर के अनुसार)**

‘B’ बिन्दु पर उद्योग की स्थापना – B बिन्दु से जाने वाले शाखा मार्ग पर स्थित बाजारों के लिए यदि B बिन्दु पर उद्योग को स्थापित किया जाय तो परिवहन व्यय न्यूनतम होगा। यदि Bबिन्दु से J_1 की ओर उद्योग को स्थापित किया जाय तो कुछ दूर तक कोयला और उत्पादित सामग्री दोनों का परिवहन खर्च देना पड़ेगा।

जंक्शन बिन्दुओं J_1 ,J_2 व J_3 पर उद्योग की स्थापना – चित्र मेंJ_1 ,J_2 व J_3 जंक”ान बिन्दुओं में से किसी पर भी उद्योग की स्थापना हो सकती है। इन स्थानों में से शाखा मार्गों पर स्थित बाजारों तक सामग्री भेजनें पर न्यूनतम परिवहन भाड़ा लगेगा। इन स्थानों के अलावा किसी अन्य जगह पर उद्योग की स्थापना करने पर किसी न किसी सामग्री पर अतिरिक्त परिवहन व्यय होगा।

9.3.3.2 बाजार बिन्दु पर उद्योग की स्थापना –

चित्र में। तथा B बिन्दुओं के बीच पड़ने वाले बाजार बिन्दु पर उद्योग को स्थापित करना लाभदायक होगा। इसलिए कि यहाँ पर दोनों कच्ची सामग्रियाँ विपरीत दि”ााओं से आकर मिलती है, जिसके कारण परिवहन व्यय

न्यूनतम होगा और उत्पादित सामग्री पर कोई परिवहन व्यय नहीं होगा। यदि बाजार के अतिरिक्त अन्य स्थान पर उद्योग को स्थापित किया जाय तो कच्ची सामग्री और उत्पादित वस्तु दोनों पर परिवहन व्यय देना पड़ेगा। बाजार केन्द्र पर उद्योग स्थापित करने पर केवल कच्ची सामग्री का ही परिवहन व्यय खर्च करना पड़ेगा।A तथा B बिन्दुओं के बीच जितने भी बाजार केन्द्र है, वहाँ परिवहन लागत की दृष्टि से उद्योग को स्थापित करना लाभप्रद होगा।

9.3.3.3 कच्ची सामग्री या वस्तु का प्रतिस्थापन

उपरोक्त वि"लेषण में कच्ची सामग्रियाँ और उत्पादित वस्तु के परिवहन दरों का एक निर्धारित अनुपात है। परन्तु किसी उद्योग में उत्पादन प्रक्रिया में आव"यक फेरबदल करके मँहगी कच्ची सामग्री का कम तथा सस्ती सामग्री का अधिक उपयोग करना संभव है। अतः कच्ची सामग्रियाँ का अनुपात निर्धारित नहीं है और उनमें सापेक्षिक लागत के अनुसार उसकी मात्रा में कम–ज्यादा किया जा सकता है। इसी प्रकार से किसी उद्योग में यदि एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होता है तो उनके अनुपात में परिवर्तन करके अधिक लाभदायक वस्तु का अधिक उत्पादन तथा कम लाभदायक वाली वस्तु कम उत्पादन किया जा सकता है।उद्योग में इस प्रकार के प्रतिस्थापन का प्रभाव यह होता है कि कच्ची सामग्रियों में प्रतिस्थान की संभावना होने पर उद्योग मध्यवर्ती बिन्दुओं की अपेछा कच्ची सामग्री की स्रोत के तरफ आकर्षित होता है। जबकि उत्पादित वस्तुओं में प्रतिस्थापन की संभावना होने पर उद्योग मध्यवर्ती बिन्दुओ की अपेछा बाजार बिन्दु की तरफ आकर्षित होगा।

9.3.3.4 उत्पादन प्रक्रिया लागत तथा उद्योग का स्थानीयकरण –

अभी तक उक्त विवेचन में उद्योग के स्थानीयकरण में स्थान निर्धारण में परिवहन लागत को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। परन्तु बहुत से ऐसे उद्योग है जिनमें उत्पादन प्रक्रिया लागत का ज्यादा महत्व होता है, जबकि उसकी तुलना में परिवहन लागत नगण्य होता है। जैसे इंजीनियरिंग उद्योग, घड़ियों एवं हीरा तरा"ाने का काम करने वाले उद्योगों में न्यूनतम उत्पादन प्रक्रिया वाले स्थान पर इनकी स्थापना होगी क्योंकि ऐसे उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया पर खर्च बहुत अधिक आता है। उत्पादन प्रक्रिया लागत की तुलना में परिवहन व्यय बहुत कम होता है इसलिए इसका महत्व नगण्य होता है।

उत्पादन निर्माण प्रक्रिया में श्रम,पूँजी,भूमि, विविध प्रकार के कर आदि तत्व लागत की दर को प्रभावित करते हैं। ऐसे स्थान जहाँउत्पादन लागत प्रक्रिया न्यूनतम हो वहाँ पर उद्योग की स्थापना होती है। उत्पादन लागत के घटक तत्व जहाँ कम से कम मूल्य पर उपलब्ध हो वहीं पर न्यूनतम लागत आती है और घटक तत्वों की प्रति इकाई मूल्य में प्रादे"ाक भिन्नता भी मिलती है। कीमत की प्रादे"ाक भिन्नता घटक तत्वों की गति"ीलता पर निर्भर करता है। जैसे श्रम में पूर्ण रूप से गति"ीलता पायी जाती है एक जगह, दूसरे जगह की अपेछा अधिक मजदूरी मिलने पर श्रमिक अधिक मजदूरी वाले जगह पर चले जायेगें। इसका परिणाम यह होगा कि वहाँ अधिक श्रमिक मिलने से मजदूरी कम हो जायेगी और पहली जगह श्रमिक के अभाव में मजदूरी अधिक हो जायेगी। परन्तु विविध सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कारणों से श्रमिक कम मजदूरी के कारण भी श्रमिक अपने घरों के नजदीक रहना चाहते है। इसी प्रकार से पूँजी और कर में भी प्रादे"ाक भिन्नता बनी रहती है। अतः उत्पादन प्रक्रिया लागत के विभिन्न घटकों में प्रादे"ाक भिन्नता बनी रहती है। ऐसे में अधिक उत्पादन प्रक्रिया लागत वाले उद्योगों के लिए न्यूनतम उत्पादन प्रक्रिया लागत वाले स्थान का चुनने की जरूरत होगी।

उत्पादन प्रक्रिया लागत के विभिन्न घटकों की प्रादे"ाक भिन्नता को इनकी मात्रा के अनुपात को घटा या बढ़ा कर अनुकूल बनाया जा सकता है। जो उत्पादन घटक अधिक महँगा अथवा दुर्लभ हो उसकी मात्रा कम तथा जो सस्ता एवं सुलभ हो उसकी मात्रा बढ़ाकर उपयोग किया जा सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में विभिन्न उत्पादन घटकों की आद"ा स्थिति वह है कि प्रत्येक उत्पादन घटक का सीमान्त उत्पादन उसकी कीमत के अनुपात में बराबर हो। इसे हम अधोलिखित समीकरण से समझ सकते है–

A का सीमान्त उत्पादन/A की कीमत = B का सीमान्त उत्पादन/B की कीमत यदि किसी उद्योग में वास्तविक स्थिति उक्त समीकरण के अनुसार संतुलित नहीं है तथा जिस घटक का सीमांत उत्पादन उसकी कीमत से अधिक है, तब तक बढ़ाना लाभकर होगा जब तक कि उसके मूल्य में संतुलन स्थापित न हो जाय। परन्तु वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति कम पायी जाती है। अतः उत्पादन प्रक्रिया लागत को कम करने के लिए उद्योग की स्थापना उस स्थान पर करनी पड़ती है जहाँ सबसे महत्वपूर्ण लागत तत्व उपस्थित है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हूवर महोदय ने वेबर के सिद्धान्त में परिमार्जन किया तथा उद्योग की स्थापना में परिवहन लागत को अधिक वास्तविक रूप में अपनाया और साथ ही उत्पादन प्रक्रिया लागत को भी महत्व दिया। उन्होनें उद्योग के स्थानीयकरण में उत्पादन लागत को संयुक्त करके इस सिद्धान्त को वास्तविकता के अधिक निकट लाने का प्रयास किया है। उत्पादन लागत को कम करने के लिए कम लागत वाले घटकों के प्रयोग पर बल दिया है। उत्पादन के कारकों को गति”ील बताया है तथा पूर्ण प्रतियोगिता की द”ाा में सिद्धान्त की व्याख्या की है।

9.3.4 हूवर के सिद्धान्त की आलोचना –

हूवर के सिद्धान्त की अधोलिखित आलोचना की जाती है–

- हूवर ने अपने सिद्धान्त में मांग पक्ष की क्षेत्रीय विभिन्नता पर ध्यान नहीं दिया जबकि यह उद्योग की अवस्थिति को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारण है।
- हूवर ने उद्योग के स्थानीयकरण के वि”लेषण में माना कि उत्पादन के विभिन्न घटकों में प्रादे”िाक स्तर पर पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है। यह विचार वास्तविकता से काफी दूर है क्योंकि यथार्थ रूप में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति नहीं पायी जाती है।
- उद्योग में उत्पादित वस्तु के मांग में भिन्नता पाये जाने के कारण यह आव”यक नहीं है कि न्यूनतम लागत वाला स्थान अधिकतम लाभ का भी स्थान हो, क्योंकि अधिकतम लाभ के मांग की प्रकृति संबंधी कारकों का भी प्रभाव पाया जाता है।
- विद्वानों का मानना है कि किसी उद्योग के स्थापना की सर्वोत्तम अवस्थिति वह होती है जहाँ उद्योग स्थापित होने से अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है।

9.4 बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त :

वेबर एवं हूवर के सिद्धान्त से भिन्न फेटर ने 1924 एवं होटेलिंग ने 1929 में बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।इन्होंने उद्योग के स्थानीयकरण में मुख्य कारक बाजार प्रतिस्पर्धा को माना है। उद्योग की स्थापना ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जहाँ से बाजार क्षेत्र के अधिकां”ा भाग पर उद्योग का एकाधिकार स्थापित हो सके। होटलिंग ने इस सिद्धान्त की व्याख्या के लिए एक उदाहरण समुद्र तट पर आइसक्रीम विक्रेताओं की ली है। यदि किसी भी दर पर क्रेता निर्धारित अवधि में वस्तु वि”ाेष की नि”िचत इकाई खरीदने को तत्पर है, जैसे कि समुद्र तट पर धूप का सेवन करने वाले औसतन प्रति घण्टे एक आइसक्रीम खरीदते है।

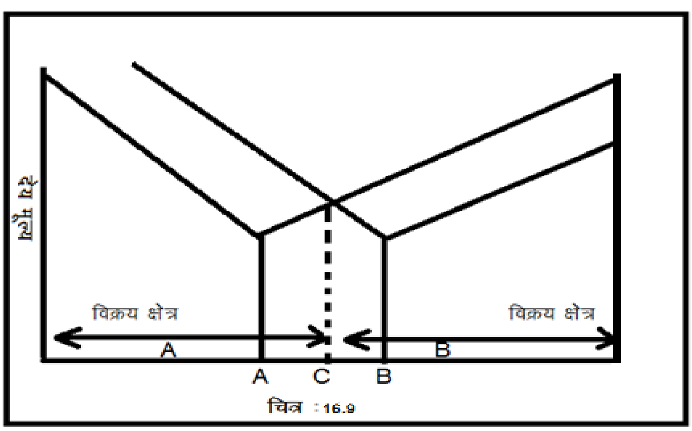

चित्र : 16.9

ऐसे में सर्वप्रथम चित्र 9.7 के अनुसार एक विक्रेता। बाजार केन्द्र में स्थापित होगा जहाँ से वह पूरे बाजार में आसानी से वस्तु को बेच सकेगा। परन्तु यदि दूसरा विक्रेता B भी प्रकट होता है तो वह बाजार के आधे भाग पर आधिपत्य करना चाहेगा और इसके लिए वह भी बाजार केन्द्र में Aसे सटे स्थापित होगा ताकि बाजार के एक ओर अर्द्धभाग पर अधिकार कर सके।बाजार में यदि तीसरा विक्रेताC उपस्थित होता है तो उसे बाजार के केन्द्र में A और B के मध्य में स्थापित होना पड़ेगा। परन्तु उसे बाजार का कोई भी भाग उपलब्ध नहीं होगा। यदिA और Bबाजार के चतुर्थां”ा में स्थापित है तो तीसरे विक्रेताC को भी बाजार पर्याप्त अं”ा उपलब्ध हो जायेगा। होटलिंग ने सभी

उत्पादकों की उत्पादन लागत तथा वितरण हेतु परिवहन दर समान मानकर वि”लेषण किया है। अतः स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त द्वारा उद्योग की स्थापना के लिए उस स्थान के चयन को बल दिया जहाँ से विस्तृत बाजार पर आधिपत्य हो सके।

9.5 समन्वित सिद्धान्त–

ग्रीनहट ने 1956 में अपनी पुस्तक 'Plant Location in Theory and Practice' में न्यूनतम लागत सिद्धान्त तथा स्थानीय अन्योन्याश्रित सिद्धान्तों का समन्वयन का प्रयास किया। किसी उद्योग के स्थानीयकरण में किसी एक कारक वि”ोष का निर्णायक महत्व होता है तथा गौण कारक महत्वपूर्ण कारक द्वारा इंगित कई वैकल्पिक स्थलों के चुनाव में मद्दगार होते है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ग्रीनहट महोदय ने उद्योगों के स्थानीयकरण में अधोलिखित सात महत्वपूर्ण कारकों को शामिल किया है–

1. स्थानीयकरण के लागत तत्व।
2. स्थानीयकरण के मांग सम्बन्धी तत्व।
3. लागत कम करने वाले तत्व।
4. मांग अर्थात आय में वृद्धि करने वाले तत्व।
5. लागत को कम करने वाले व्यक्तिपरक तत्व।
6. आय में वृद्धि करने वाले व्यक्तिपरक तत्व।
7. अत्यंत व्यक्तिपरक तत्व।

उक्त प्रथम कारक स्थानीयकरण के लागत में परिवहन तथा उत्पादन प्रक्रिया लागत तत्व सम्मिलित है। ग्रीनहट परिवहन लागत को अधिक महत्व देते है तथा इसे अन्य लागतों से विलग रखते है। उत्पादन प्रक्रिया लागत के अन्तर्गत श्रम, पूंजी आदि शामिल है। दूसरे कारक मांग सम्बन्धी तत्वों के अन्तर्गत उद्योगों के स्थानीयकरण में प्रतिस्पर्धागत व्यवस्थाओं एवं कीमत निर्माण संबंधी कारक आते हैं। लागत कम करने वाले तत्वों के अन्तर्गत एकत्रीकरण जैसे कारक आते हैं जिनसे लागत में बचत की सम्भावना बढ़ती है। विक्रय बढ़ाने में सहायक तत्व चौथे कारक में आतें है। व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा लागत कम करने तथा विक्रय बढ़ाने में जो मदद मिलती है, वो भी उद्योग के स्थानीयकरण में महत्वपूर्ण है। उद्योग के लिए लागत कम करने में मनोवैज्ञानिक संतुष्टि प्रदान करने वाले तत्व भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से उद्योग के लिए लागत को न्यूनतम करने और विक्रय को अधिकतम करने वाले की अपेक्षा कुल अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले तत्वों का अधिक महत्व है।

ग्रीनहट महोदय ने आइजार्ड के आर्थिक कार्यों के स्थानीयकरण का सिद्धान्त , वान थूइनेन के कृषिगत उत्पादन सम्बन्धी सिद्धान्त तथा लॉ”ा के 'ाट्भुजाकार बाजार मॉडल का समन्वय करके प्रस्तुत किया है। आइजार्ड ने अपने सिद्धान्त में औद्योगिक स्थापना के लिए ऐसे बिन्दु की कल्पना करते हैं जहाँ सस्तें श्रमिक, बाजार सुविधा और कम से कम चूक की सम्भावना हो। इसी प्रकार का विचार स्मिथ का भी है जिन्होंने अपनी पुस्तक औद्योगिक स्थानीयकरण (1981) में प्रतिपादित किया है। अपने सिद्धान्त के निरूपण में इन्होंने क्षेत्रीय लागत तथा आय को आधार बनाया और प्रतिपादन किया कि स्थान चयन में कुल लागत और कुल आय की क्षेत्रीय विभिन्नताओं से एक अभीष्ट बिन्दु निर्धारित होता है, जहाँ अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने उद्योग स्थानीयकरण के सिद्धान्तों का अध्ययन किया। हमने पढ़ा कि कि वेबर महोदय ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या परिभाषित शब्दों एवं मान्यताओं के आधार पर की है। उद्योगों की स्थापना में सर्वाधिक महत्व न्यूनतम परिवहन लागत को दिया। जिन उद्योगों में दो कच्ची सामग्रियां प्रयुक्त होती हैं और दोनों मिश्रित पदार्थ हैं तो उनके स्थान चयन के लिए स्थानीयकरण त्रिभुज का सहारा लिया।वेबर महोदय ने यह भी माना है कि उद्योग उस स्थान पर भी स्थापित हो सकता है जहां परिवहन पर खर्च जितना बढता है, उतना कम खर्च श्रम एवं एकत्रीकरण पड़ता है।

हूवर महोदय ने वेबर के सिद्धान्त में परिष्कार कर परिवहन लागत को अधिक वास्तविक रूप में अपनाया। उन्होनें बताया कि उद्योग वहां स्थापित होगा जहां परिवहन लागत एवं उत्पादन प्रक्रिया लागत न्यूनतम होगा। फेटर एवं होटलिंग ने उद्योग की स्थापना के लिए बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार उद्योग को उस स्थान पर स्थापित करना लाभप्रद होगा जहां से अधिक विस्तृत बाजार पर आधिपत्य हो सके।ग्रीनहट ने समन्वित सिद्धान्त में इस तथ्य पर बल दिया कि उद्योग की स्थापना में कई तत्वों जैसे स्थानीयकरण के लागत तत्व, मांग तत्व, लागत कम करने वाले तत्व आदि का महत्व होता है। इनका यह भी मानना है कि सभी कारकों में किसी एक का वि"ोष महत्व होता है जबकि अन्य गौण कारक प्रमुख कारक द्वारा स्थान चयन में सहायक का काम करते हैं।

9.7 बोध प्रश्नः

- वेबर के उद्योग स्थानीयकरण सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
- उद्योग स्थानीयकरण में श्रम एवं एकत्रीकरण के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
- हूवर के उद्योग अवस्थिति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
- बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
- निम्नलिखित पर संक्षेप में लिखिए
  1. आइसोडापेन
  2. स्थानीयकरण भार
  3. सुलभ पदार्थ
  4. मिश्रित पदार्थ

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- सिंह, जगदी"ा, एवं सिंह, के.एन.(205) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रका"ान, गोरखपुर।
- मौर्य, एस. डी. (2022), आर्थिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिके"ान्स, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, वी.के. एवं राव, बी.पी. (2002), आर्थिक भूगोल, वसुन्धरा प्रका"ान, गोरखपुर।
- गौतम, अलका, (2019) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
- अलेक्जेंडर, जे.डब्लू. (19159) इकोनॉमिक ज्योग्राफी, प्रेंटिस हाल,
- लांगमैन, जी.सी. एण्ड मार्गन, जी.सी. (1982) हयूमन एण्ड इकोनॉमिक ज्योग्राफी,आक्सफोर्ड प्रेस.

इकाई 10

कृषि के स्थानीयकरण के सिद्धान्त–वानथ्यूनेन का सिद्धान्त, कृषि अवस्थित के आधुनिक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 वान–थ्यूनेन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

10.2.1 कृषि स्थानीयकरण का वान–थ्यूनेन का सिद्धान्त

10.2.2 विद्वान वान–थ्यूनेन की मान्यताएँ

10.2.3 वान–थ्यूनेन का कृषि स्थानीयकरण का पेटियाँ

10.2.4 वान–थ्यूनेन की कृषि भूमि उपयोग पद्धति

10.2.5 वान–थ्यूनेन के सिद्धान्त में संशोधन

10.2.6 वान–थ्यूनेन के सिद्धान्त की आलोचना

10.2.7 वान–थ्यूनेन के सिद्धान्त की प्रासंगिकता

10.3 कृषि अवस्थिति के आधुनिक सिद्धान्त

10.3.1 अनुकूलतन भौतिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त

10.3.2 अनुकूलतन आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त

10.3.3 आलोचना

10.4 सारांश

10.5 बोध प्रश्न

10.6 शब्दावली

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.8 बोध प्रश्न के उत्तर

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 प्रस्तावना –

मानव अर्थव्यवस्था एवं जीवन में कृषि मूल है, कृषि पर जीवन निर्भर है। मानव जीवन–यापन हेतु विभिन्न परिस्थितियों, अवस्थाओं से गुजरता रहा। कभी आखेट किया, कभी पशुपालन, कभी वन्य वस्तु संग्रह किया और धीरे–धीरे कृषि प्रविधियों को अपनाने लगा और वर्तमान समय में कृषि भरण–पोषण का एकमात्र साधन बनी और इस पर आधारित अनेक व्यवसाय, उद्योग–धन्धे, क्रियाकलाप वर्तमान सभ्यता के आधार बन गये। कृषि लगभग 8000 ई०पू० से प्रारम्भ हुई, जब पौधों और पशुओं के पालने एवं उगाने का कार्य प्रारम्भ किया। एक लम्बे दौर में कभी पशुपालन प्रमुख था, कभी कृषि प्रमुख हो गयी। कृषि का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा। वर्तमान समय में

आधुनिक विकसित औद्योगिक, वाणिज्यिक रूप में स्पष्ट दृष्टिगत होती है। बढ़ती जनसंख्या, भरण– पोषण हेतु मानव ने जंगलों को काटा और भूमि को कृषि कार्य में परिवर्तित किया। धीरे–धीरे कृषि का विस्तार हुआ। मैदानी क्षेत्रों के अलावा पहाड़ों और पठारों में भी कृषि का विस्तार होता गया। मानव अधिक से अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने के लिए तत्पर रहा, जिससे कृषि क्षेत्र में शोध एवं अध्ययन का महत्व बढ़ा। कृषि भूमि उपयोग में यह महत्वपूर्ण बिन्दु होता है कि हम उस निश्चित इकाई क्षेत्र में किन विधियों, किन फसलों को अपनाकर अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकें तथा कम लागत में अधिकतम लाभ कमा सकें। इसी सन्दर्भ में कृषि वैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जिसमें विद्वान जे०एच० वानथ्यूनेन, विद्वान डन, हुबर, लॉश, इजार्ड, एलान्सो, हीरवर्थ, मैकार्टी, लिण्डमैन, आर०बी० मण्डल, जे० न्युमैन, मार्गेन्स्टिन आदि विद्वानों ने अपने विचार दिये।

10.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कृषि भूमि उपयोग का अर्थ समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक लाभ, उत्पादन लागत, विक्रय–मूल्य, परिवहन लागत, कैसे अन्तर्सम्बन्धित हैं, को समझ सकेंगे।
- फसल उत्पादन और लाभ के तत्वों की विशद् व्याख्या कर सकेंगे।
- बाजार से बढ़ती दूरी के साथ लाभ पर पड़ने वाले तत्व परिवहन व्यय कैसे कार्य करती है, की समझ विकसित होगी।
- फसल उत्पादन के सन्दर्भ में इस फसल से या किस कृषि क्रिया से अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, का वर्णन कर सकेंगे।
- कृषि उत्पादन कार्य में बाजार की भूमिका की समझ कृषक के मस्तिष्क में विकसित होगी।

10.2 वान–थ्यूनेन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

जॉन हेनरिच वानथ्यूनेन (24 जून, 1783 – 22 सितम्बर, 1850) जर्मनी के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे। संक्षेप में इनको वान–थ्यूनेन के नाम से जाना जाता था। उत्तरी जर्मनी के मैकलेनवर्ग में एक कृषि फार्म के व्यवस्थापक (मैनेजर) थे। इन्होंने अपने दीर्घकाल के अनुभव एवं आर्थिक विश्लेषण के आधार पर कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित एक सिद्धान्त की विवेचना किया, जो वान–थ्यूनेन के सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सिद्धान्त इन्होंने 1826 ई० में दिया, ये सुयोग्य कृषि अर्थशास्त्री थे, इन्होंने अपने सिद्धान्त में अर्थशास्त्र एवं कृषि अर्थशास्त्र दोनों पक्षों को शामिल किया।

10.2.1 कृषि स्थानीयकरण का वानथ्यूनेन का सिद्धान्त –

विद्वान वानथ्यूनेन ने अपने दीर्घकालीन अनुभव और ज्ञान के आधार पर सन 1826 में कृषि भूमि उपयोग से सम्बन्धित कृषि अवस्थित या कृषि स्थानीयकरण से सम्बन्धित सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसमें इन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि किस भू–भाग में कौन सी फसल अथवा कौन सी कृषि क्रिया पद्धति अपनायी जाये, जिससे कृषक को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। विद्वान वानथ्यूनेन ने अपने सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में कृषि उत्पादन के समस्त आगत के साथ–साथ बाजार तक उत्पाद को ले जाने तक खर्च होने वाले परिवहन व्यय को अधिक महत्व देते हुए अपने सिद्धान्त की व्याख्या किया। कृषक को होने वाला लाभ विक्रय मूल्य में उत्पादन लागत और परिवहन मूल्य को निकाल देने से निर्धारित होता है। इनके सिद्धान्त में अर्थशास्त्र, लगान का सिद्धान्त का महत्व अधिक है। वान थ्यूनेन का सिद्धान्त ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार के भूमि उपयोग के लिए लागू होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी कृषक का लाभ तीन विचलकों पर आधारित होता है, जो निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है –

$$P = V - (E + T)$$

जहाँ

P = कृषक का लाभ (Profit)

V = वस्तु का विक्रय मूल्य (Selling Price)

E = उत्पादन की लागत (Expense)

T = परिवहन (Transport) लागत के द्योतक हैं।

वानथ्यूनेन की मान्यता है कि किसी भी भू–क्षेत्र पर उन्हीं फसलों का उत्पादन किया जाता है, जिसमें अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। इसका परिकलन निम्न सूत्र से किया जाता है–

$$L = Y(P-C) - YD(F)$$

जहाँ

L = अवस्थापनात्मक भूकर Location rent

Y = प्रति इकाई भूमि की उपज (प्रति वर्ग किमी0 टन में) (The Crop Yield)

P = उपज का बाजार मूल्य (Market Price of the crop)

C = उपज की उत्पादन लागत (Production Expenses)

D = बाजार की दूरी (Distance of Central Market)

F = परिवहन लागत (Transport Cost)

विद्वान वानथ्यूनेन के अनुसार नगर से दूरी बढ़ने के अनुसार शस्य स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगत होता है, क्योंकि दूरी बढ़ने के साथ उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ में कमी होती जाती है और भूमि उपयोग में परिवर्तन पाया जाता है, जो चित्र सं०–10.1 से स्पष्ट है। वानथ्यूनेन द्वारा प्रस्तुत सूत्र के अनुसार नगर से बाहर की ओर दूरी बढ़ती जाती है, परिवहन लागत बढ़ता है, उसी अनुपात में लाभ घटने लगता है, जहाँ कहीं भी कृषक को उत्पादित होने वाली फसल से लाभ समाप्त हो जाता है, वहीं उस फसल की बाहरी सीमा निर्धारित हो जायेगी। इससे स्पष्ट होता है कि आन्तरिक उक्त पेटियों की सीमायें अधिक लाभ प्रदान करती हैं और कम लाभ देने वाली बाजार से बढ़ती दूरी के अनुसार निर्धारित होती जाती हैं। इस तथ्य का प्रभाव उनकी कृषि पेटियों पर स्पष्ट दिखायी देता है। इसे निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है – चित्र 10.1 में स्पष्ट है कि जैसे–जैसे नगर से दूरी बढ़ती जाती है, फसल का परिवहन व्यय बढ़ता जाता है, जिससे बचत कम होती है। चित्र में नगर से दूरी, उत्पादन लागत, प्रति इकाई उपज मूल्य, आर्थिक लगान (बचत), बाजार मूल्य प्रदर्शित किया गया है। नगर से बढ़ती दूरी के अनुसार प

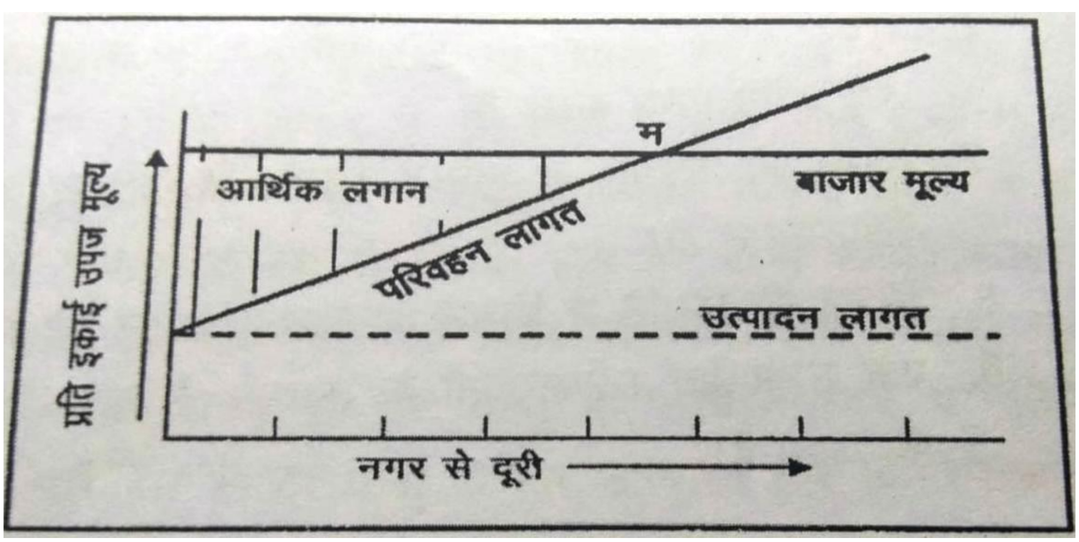

चित्र संख्या–10.1 नगर से दूरी एवं प्रति इकाई उपज मूल्य

बिन्दु पर बचत शून्य हो जाती है। इस कारण यहाँ फसल का उत्पादन लाभदायक नहीं होता है और इस भूमि को सीमान्त भूमि के नाम से जानते हैं। जैसे– मान लिया जाये, सब्जी उत्पादन का विवरण इस प्रकार है, प्रतिहेक्टेयर उत्पादन 1500 किलोग्राम है, बाजार का भाव 5 रुपया प्रति किलोग्राम है और उत्पादन व्यय 2 रुपया प्रति किलोग्राम है, परिवहन व्यय 0.5 रुपया प्रति किलोग्राम है, यदि सब्जी की खेती बाजार में की जाती है तो परिवहन शून्य होगा और कृषक को लाभ 1500 (5.00 – 2.00) – 1500 (0.5×0) = 4500 रुपया प्रति हेक्टेयर का लाभ किसान को होगा। यह लाभ अधिकतम है और यदि इसी सब्जी का उत्पादन इसी मानक के अनुसार 5 किलोमीटर दूर किया जाता है तो लाभ इस सूत्र के अनुसार घटकर रुपया 5,1550/– प्रति हेक्टेयर प्राप्त होगा। 50 किलोमीटर की दूरी पर यह लाभ शून्य हो जायेगा। किसान अब आगे सब्जी का कृषि कार्य नहीं सम्पादित करेगा। इसे एक दूसरे उदाहरण और तालिका से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या–10.1

विभिन्न फसलों के उत्पादन से प्राप्त लाभ की गणना

नगर से इकाई दूरी	बाजार मूल्य	उत्पादन लागत	परिवहन व्यय	लाभ
		लकड़ी		
0.5	200	130	5	50
1.0	200	130	20	40
1.5	200	130	50	50
2.0	200	130	40	20
2.5	200	130	50	5
5.0	200	130	60	0
		अन्न		
0.5	80	50	5	215
1.0	80	50	6	24
1.5	80	50	9	12
2.0	80	50	12	18
2.5	80	50	15	15
5.0	80	50	18	12
5.5	80	50	12	9
4.0	80	50	24	6
4.5	80	50	215	5
5.0	80	50	50	0

स्रोत – Anddreas Grotewold, Economic Geography (1959)

विद्वान वानथ्यूनेन ने बताया कि कोई वस्तु केन्द्रीय नगर से जितना अधिक दूरी पर उत्पादित होगी, उतना ही अधिक परिवहन व्यय लगेगा और उतना ही अनुपात में आर्थिक लाभ घटता जायेगा। इसे तालिका 10.1 के आंकड़े से समझा जा सकता है। लकड़ी का उत्पादन नगर के 0.5 की दूरी पर करने पर लाभ 50 रुपये का होता है और तीन इकाई दूरी पर उत्पादन करने पर यह आर्थिक लाभ शून्य हो जाता है। इस तरह अन्न का उत्पादन एक इकाई पर करने पर कृषक को 215 रुपये का आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। पाँच इकाई दूरी पर अन्न उत्पादन से शून्य रुपये का लाभ होता है। दो इकाई दूरी पर उत्पादन से लकड़ी द्वारा 20 रुपये का एवं अन्न द्वारा 18 रुपये का लाभ होता है, लेकिन 2.5 इकाई दूरी पर लकड़ी द्वारा प्राप्त लाभ 5 है, जबकि अन्न द्वारा प्राप्त आर्थिक लाभ इसी दूरी पर 15 है, इसलिए कृषक दो इकाई तक लकड़ी का उत्पादन करेगा, दो इकाई के बाद आर्थिक लाभ

अधिक होने से अन्न का उत्पादन करेगा। जिन वस्तुओं की उत्पादकता प्रति इकाई क्षेत्र कम है, वे नगर से दूर तक उगाई जा सकती है।

विद्वान वानथ्यूनेन के आर्थिक लाभ तथा दूरी के सम्बन्ध को दिखाने के लिए चित्र 10.2 में प्रयास किया गया है। इस आरेख में आर्थिक लगान को दिखाने वाली रेखा सीधी लम्बवत् है और दाहिनी ओर गिरती हुई दिखायी जाती है। परिवहन की दर अलग–अलग होने के कारण रेखाओं की ढाल प्रवणता भी भिन्न भिन्न है। चित्र 10.2 में सब्जी, दूध, मांस एवं पशु, बाजार प्रभाव नगण्य क्षेत्र को आर्थिक लाभ व बाजार से दूरी के परिप्रेक्ष्य में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में सब्जी का उत्पादन 4.5 मील तक दूध का उत्पादन, 5 मील तक मांस और पशु का उत्पादन, 25 मील तक बाजार प्रभाव नगण्य वाला क्षेत्र 40 मील तक विस्तृत है। इन दूरियों तक इन फसलों की खेती से कुछ न कुछ आर्थिक लगान प्राप्त होगा, लेकिन फसल और भूमि उपयोग का निर्धारण तुलनात्मक लाभ पर निर्भर करता है, जो चित्र से स्पष्ट है कि सब्जी का उत्पादन 1.15 मील की दूरी तक होगा, उसके बाद दूध का उत्पादन होगा, क्योंकि 1.15 मील के बाद दूध से होने वाला आर्थिक लाभ सब्जी के लाभ से अधिक है। दूध का उत्पादन 5 मील तक होगा, उसके बाद मांस और पशु का उत्पादन होगा, क्योंकि उससे प्राप्त होने वाला आर्थिक लाभ दूध से प्राप्त आर्थिक लगान या लाभ से अधिक होगा। मांस और पशु का उत्पादन 19 मील तक किया जा सकेगा। इसके बाद बाजार प्रभाव नगण्य होने से उसका विस्तार होता जायेगा। इस तरह बाजार को केन्द्र मानते हुए इन दूरियों की त्रिज्या के आधार पर वृत्त बनाये जाते हैं, तो बाजार के चारों ओर संकेन्द्रीय वृत्त खण्ड निर्मित होंगे, जो फसलों के उत्पादन क्षेत्र को प्रदर्शित करेगा। इसी प्रक्रिया एवं गणना विधि से विद्वान वानथ्यूनेन ने कृषि स्थानीयकरण के सिद्धान्त को मॉडल के रूप में व्यक्त किया है।

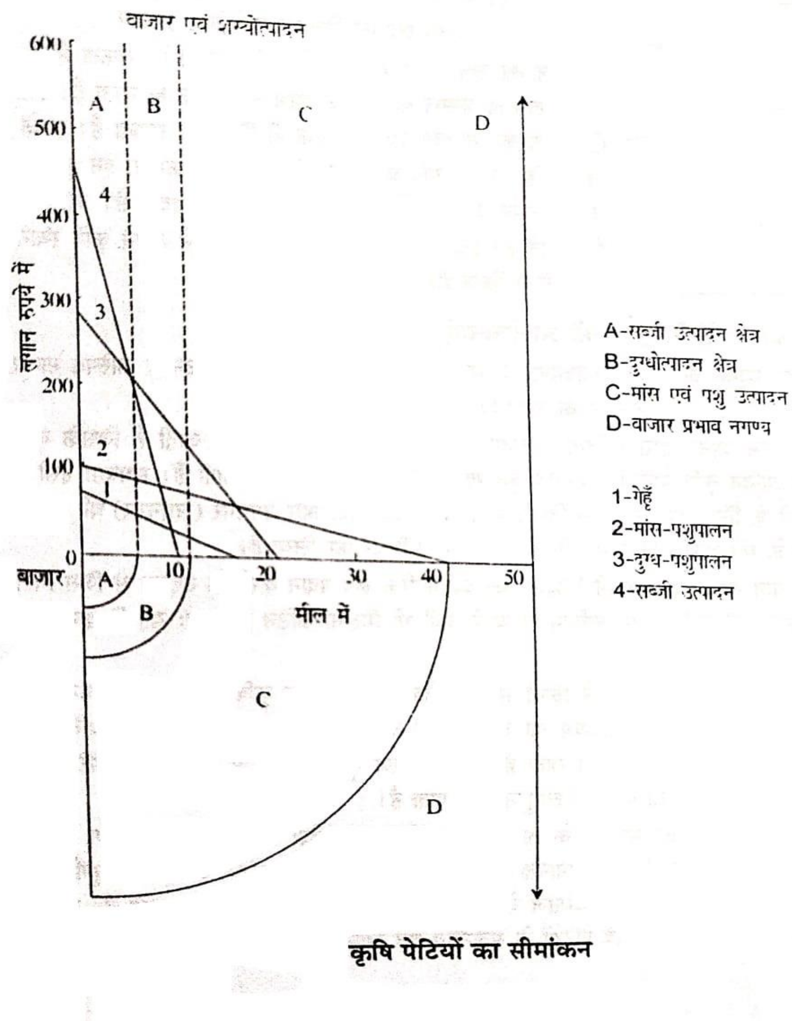

चित्र संख्या–10.2 बाजार दूरी एवं आर्थिक लगान अथवा कृषि पेटियों का सीमांकन

10.2.2 विद्वान वानथ्यूनेन की मान्यताएँ –

अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए विद्वान वानथ्यूनेन ने अनेक मान्यताएँ निर्धारित किया है, जो इनके सिद्धान्त की व्याख्या के पहले समझना आवश्यक होता है। प्रस्तुत मान्यताएँ अग्रांकित हैं –

1. इन्होंने जिस कृषि क्षेत्र की कल्पना की है, वह एकाकी प्रदेश (आइसोलेटेड स्टेट) के रूप में पाया गया, इसमें एकमात्र नगर है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह अस्वाभाविक एवं काल्पनिक है, लेकिन फिर भी अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए इन्होंने ऐसी मान्यता को स्वीकारा।
2. प्राकृतिक रूप से कृषि क्षेत्र में एक समान मृदा उर्वरता, एक समान फसलों की उत्पादन क्षमता, एक समान उत्पादन लागत, एक समान परिवहन व्यय की कल्पना किया। यह परिकल्पना भौगोलिक दृष्टि से असहज है। क्षेत्रीय विभिन्नता की संकल्पना के विपरीत है।
3. एकाकी प्रदेश में स्थित एकाकी नगर ही उत्पादन और उपभोग दोनों का स्रोत माना गया है। यह भी वास्तविकता से परे है।
4. इनके अनुसार भार एवं दूरी के अनुपात में परिवहन व्यय बढ़ता है। यह भी उस विशेष सन्दर्भों में ही सही होता है।
5. उस एकाकी प्रदेश में स्थित एक नगर के चारों ओर ग्रामीण अधिवासीय क्षेत्रों में कृषक अधिकतम लाभ के उद्देश्य से बाजार की माँग के अनुसार कृषि क्षेत्र में फसल उगाता है।
6. नगर कृषि क्षेत्रों के अधि"ोष उत्पादन (Surplus Production) का एकमात्र बाजार है और कृषि क्षेत्र नगर को वस्तुओं की आपूर्ति का एकमात्र स्रोत है।
7. नगर के बाजार में किसी वि"ोष फसल के लिए सभी किसान समान मूल्य पाते हैं।
8. यह कृषि क्षेत्र एक समर्द"ाक सतह है (Uniform plain) जिसमें भूभाग, स्थलाकृति और जलवायु में समरूपता है।
9. कृषक विवेक"ील है जो एक आर्थिक मानव जैसा व्यवहार करते हैं और अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए खेती में संलग्न है।
10. कृषकों को बाजार की जरूरतों का पूर्ण ज्ञान है।
11. नगर, कृषि भूमि के केन्द्र में स्थित है और इसके आस–पास कोई भी प्रतिचुम्बक (बाजार) नहीं है।
12. यातायात का मात्र एक ही रूप है, घोड़ा गाड़ी एवं नाव। परिवहन लागत एक नि"चत दर से बढ़ती है।

10.2.3 वानथ्यूनेन का कृषि स्थानीयकरण का पेटियाँ –

अधिवास / नगर / गांव से जैसे–जैसे कृषि उत्पादन क्षेत्र की दूरी बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे शस्य स्वरूप में विभेद दिखायी पड़ने लगता है, इसी प्रकार बाजार से दूरी बढ़ने के साथ–साथ उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ में कमी होती जाती है और भूमि उपयोग में भी परिवर्तन दिखायी देने लगता है।

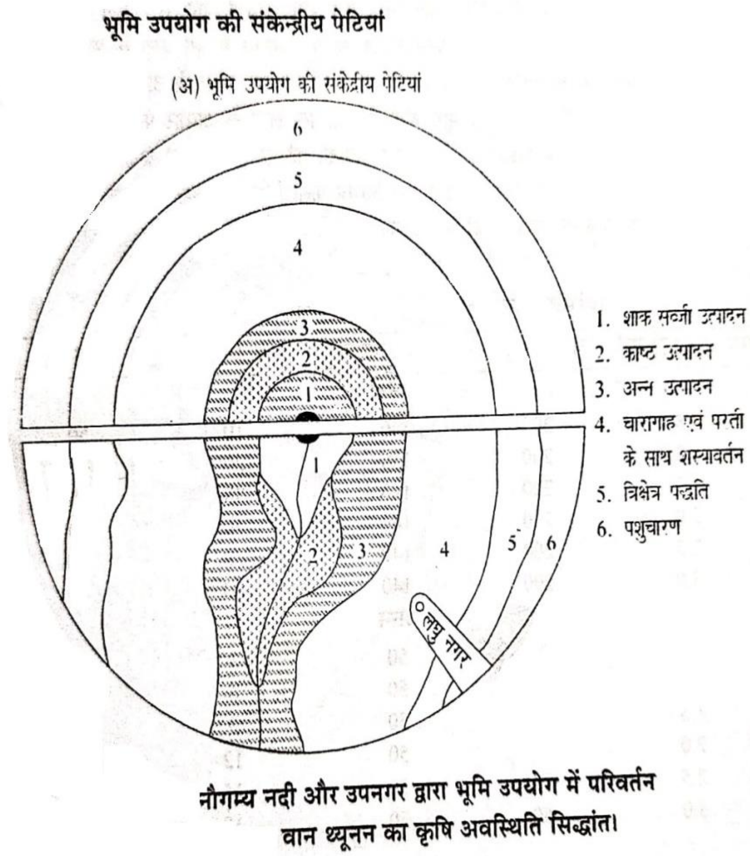

चित्र संख्या–10.3 कृषि अवथिति एवं कृषि पेटियाँ

चित्र संख्या–10.3 से स्पष्ट है कि इन्होंने कुल 6 पेटियों का उल्लेख किया –

1– **केन्द्रीय नगर**

2– **प्रथम पेटी** – यह नगर के सबसे निकट क्षेत्र है जिसमें बाजार के लिये सब्जी, दूध, डेयरी पदार्थों का उत्पादन होता है। ये उत्पादन शीघ्र नष्ट होने वाले होते हैं, इन पर परिवहन व्यय अधिक होता है। यह पेटी नगर की आव"यकतानुसार बाहर की ओर विकसित होती है। माँग के अनुसार इसका पेटी का व्यास बढ़ जाता है।

5– **द्वितीय पेटी** – वानथ्यूनेन के समय जलाऊँ लकड़ी का बहुत महत्व था, इसलिए नगर के बाद दूसरी पेटी में ईंधन और इमारती लकड़ी का उत्पादन होता था। वर्तमान में इसकी उपयोगिता नहीं रह गयी है, क्योंकि गैस सिलेण्डर, एलपीजी पाइप लाइन एवं कोयले आदि का ईधन के रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

4– **तृतीय पेटी** – इस पेटी में अनाज उत्पादन होता है, इसमें सघन कृषि होती है, कहीं भी परती भूमि नहीं छोड़ी जाती। इस पेटी के साथ नदी की सहलग्नता स्वीकारा था, क्योंकि इकाई की आवश्यकता थी। वर्तमान में सिंचाई के लिए नदी के अलावा अन्य साधन उपलब्ध हैं।

5– **नाव्य नदी** – इस नदी का प्रवाह–पथ।

6– **चतुर्थ पेटी** – इस पेटी में भी अनाज उत्पादन होता है किन्तु इसमें परती व चारण भूमि भी छोड़ी जाती है। इस पेटी में सिंचाई के जल की कम आवश्यकता होती है।

15– **पांचवी पेटी** – यहाँ भी अनाज की खेती होती है, परती भूमि का प्रति"ात अधिक (55 प्रति"ात) होता है और तीन खेत प्रणाली प्रचलित होती है। इसके अन्तर्गत एक तिहाई भाग में खेती, दूसरे में परती, तीसरे एक तिहाई भाग में पशुपालन कार्य सम्पादित होता है। पेटी के बाह्यवर्ती क्षेत्र में चारागाह पाया जाता है।

8– **छठीं पेटी** – इस पेटी में प"ाुपालन कार्य होता है। दूध से पनीर प्राप्त होता है और मांस के लिए प"ाुओं को पैदल नगर तक भेजा जाता है। यह पेटी दूरस्थ भाग में होती है।

विद्वान वान–थ्युनेन ने अपनी 6 कृषि पेटियों को उपर्युक्त चित्र10.3 में स्पष्ट दर्शाया है। चित्र से स्पष्ट है कि केन्द्रीय नगर के चारों तरफ कृषि वृत्ताकार रूप में फैली हुई हैं। नाव्य नदी के कारण पेटियों के वृत्ताकार स्वरूप में थोड़ा सा परिवर्तन परिलक्षित होता है। इनका सिद्धान्त विचारपरक है और अनावश्यक, अवास्तविक मान्यताओं पर निर्भर है।

10.2.4 वानथ्यूनेन की कृषि भूमि उपयोग पद्धति –

वानथ्यूनेन के कृषि भूमि उपयोग पद्धति की प्रस्तुत सारणी से स्पष्ट है कि वृत्त खण्ड 0 में नगरीय औद्योगिक भूमि उपयोग का प्रकार है। यहाँ पर औद्योगिक वस्तुएँ विपणन की मुख्य वस्तुएँ हैं, उत्पादन पद्धति प्रदेश का व्यापारिक नगर है। वृत्तखण्ड–1 में जो नगर से 0.1 से 0.6 की सापेक्षिक दूरी पर है, यहाँ भूमि उपयोग गहन कृषि के रूप में हो रहा है। विपणन की मुख्य वस्तु साग–सब्जी एवं दूध है, उत्पादन पद्धति अति गहन है, जिसमें खाद आदि का प्रयोग किया जा रहा है। वृत्तखण्ड–2 की केन्द्रीय नगर से सापेक्षिक दूरी 0.6 से 5.5 है, यहाँ पर भूमि वन के रूप में उपयोग की जा रही है, यहाँ पर विपणन की मुख्य वस्तु ईधन व इमारती लकड़ी है, उत्पादन पद्धति सुव्यवस्थित, वानिकी है। वृत्तखण्ड–3, जो केन्द्रीय नगर से 5.6 से 4.6 सापेक्षिक दूरी पर है, इसका भूमि उपयोग विस्तृत कृषि भूमि के रूप में विपणन की वस्तु राई और आलू है। 6 वर्षीय फसल चक्र राई दो बार, आलू एक बार, बेंच एक और क्लोवर एक, जौ एक बार पैदा किया जाता है। वृत्तखण्ड–4, जो केन्द्रीय नगर से 4.15 से 54 सापेक्षिक दूरी पर है, इसका भूमि उपयोग विस्तृत कृषि का है, विपणन की प्रमुख वस्तु राई है, सात वर्षीय फसल चक्र अपनाया जाता है। इस फसल चक्र में चारागाह–5 राई–1, जौ–ओट एक, परती आदि अपनाया जाता है। वृत्तखण्ड–5 में केन्द्रीय नगर से सापेक्षिक दूरी 54 से 44 के बीच है, इसका भूमि उपयोग विस्तृत कृषि का है और विपणन की वस्तु राई और पशु उत्पाद से सम्बन्धित है, यहाँ उत्पादन पद्धति 5 खेत प्रणाली अपनायी गयी है, जिसमें राई, चारागाह और परती शामिल हैं। वृत्तखण्ड 6, जो केन्द्रीय नगर से 45 से 50 इकाई सापेक्षिक दूरी पर है, में भूमि का उपयोग पशुपालन के रूप में किया जाता है। यहाँ का विपणन की मुख्य वस्तु पशु उत्पाद से सम्बन्धित है। उत्पादन पद्धति पशुपालन और कुछ भाग राई से सम्बन्धित है। वृत्तखण्ड–15 केन्द्रीय नगर से 50 इकाई सापेक्षिक दूरी पर है। भूमि बंजर के रूप में पायी जाती है। यहाँ पर किसी भी प्रकार की कृषि सम्भव नहीं है, इसलिए विपणन की कोई वस्तु उपलब्ध नहीं है और न ही कोई उत्पादन पद्धति है।

10.2.5 वान–थ्यूनेन के सिद्धान्त में संशोधन –

विद्वान वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की मान्यतायें अवास्तविक, अव्यवहारिक होने के कारण समय के अनुसार अप्रासंगिक होने लगी। इसलिए इनके सिद्धान्त में समय–समय पर संशोधन विद्वानों ने किया, क्योंकि विश्व के सभी भागों में मैकलेनवर्ग ने स्थित फार्महाउस जैसी भौगोलिक परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं हैं। मृदा की उर्वरता भूमि की समतलता भौगोलिक वातावरण की समानता, परिवहन लागत, उत्पादन लागत, बाजार मूल्य, किसान की रुचि, उसकी मनोदशा व्यवहारिक पक्ष पूरे विश्व में मैकलेनवर्ग जैसी नहीं थी। अतः यह सिद्धान्त धीरे–धीरे परिवर्तित होता चला गया। विद्वान डन, हुबर, इजार्ड, मारबुल, लाश, हीरवर्थ, एलान्सो ने इस सिद्धान्त को पुनर्विश्लेषित किया, नवीन विचारों द्वारा संशोधित किया और पुनः प्रतिपादित करने का प्रयास किया, जिससे विद्वान वानथ्यूनेन के मौलिक सिद्धान्त का स्वरूप धीरे–धीरे पूर्णतः परिवर्तित होता चला गया।

10.2.6 वान–थ्यूनेन के सिद्धान्त की आलोचना –

वानथ्यूनेन के सिद्धान्त एक निश्चित समय, निश्चित क्षेत्र पर ही उपयुक्त था, क्योंकि उनकी मान्यतायें सर्वत्र अवास्तविक हैं। अतः इनकी आलोचनायें विद्वान डन, लाश, मारबुल, गैरिसन, चिसोल्म ने किया।

1. इनका सिद्धान्त प्राचीन समय के नगरों के लिए ही उपयुक्त है। वर्तमान काल में परिस्थितियाँ बदल चुकी है। घोड़ा गाड़ी का स्थान तीव्रगामी परिवहन साधनों, जैसे– रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, वायुयान, पाइ लाइन परिवहन ने ले लिया है।
2. अब न तो दूरी के अनुपात में समान रूप में परिवहन व्यय बढ़ता है।
3. ईंधन के रूप में लकड़ी का स्थान कोयले एवं गैस ने ले लिया है।

4. व्यावहारिक रूप में संकेन्द्रीय पेटियाँ समान रूप से सर्वत्र नहीं मिलती है।

5. थ्यूनेन के आर्थिक लगान के विचार को अनेक आधुनिक विद्वानों ने मान्यता दी है और अपने लेखों में शामिल किया है।

6. लॉ"ा ने लगान पर उत्पादन मूल्य, कीमत तथा पैदावार जैसे अन्य परिवर्तन की खोज की और अवस्थिति सम्भावनाओं को निि"चत करने का प्रयत्न किया तथा बताया कि शहर से दूर कृषि क्षमता में हमेंशा ह्रास होता है, जो काल्पनिक है।

7. हाल एवं चि"ोल्म तथा डन थ्यूनेन के इस विचार की आलोचना की कि शहर से दूर कृषि क्षमता में ह्रास होता है।

8. गैरिसन और मार्बुल ने सिद्धान्त में प्रयुक्त समीकरण को अपूर्ण बताया है।

10.2.7 वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की प्रासंगिकता –

विद्वान वानथ्यूनेन का कृषि भूमि उपयोग सिद्धान्त जिन मान्यताओं पर आधारित है, वे सारी मान्यताएं उस समय भी सर्वत्र नहीं थी, इसलिए उनकी मान्यतायें अवास्तविक थीं एवं उनकी क्रमबद्ध पेटियाँ विश्व के अन्य क्षेत्रों में अवास्तविक अप्रासंगिक थीं, इन्होंने अपने सिद्धान्त में तकनीकी विकास और भूमि उपयोग के स्वरूप में आने वाले परिवर्तन को शामिल नहीं किया था। आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्था में सिद्धान्त तथ्यहीन हो गया। इनकी पेटियां यूरुग्वे ने अपवाद स्वरूप देखने को मिलती हैं। मोण्टेविडियो नगर के पास कुछ पेटियां मिलती हैं। इसी तरह उपनिवेशी मैक्सिको में कृषि मेखलायें सिद्धान्त के अनुसार पायी गयीं। वर्तमान में परिवहन द्रुतगामी होने, कृषि में यन्त्रीकरण, फसल संयोजन, फसल सन्तुलन, हरित क्रान्ति, शोधा अनुसंधान, जलवायु परिवर्तन, अन्य भौगोलिक कारणों से वानथ्यूनेन से समय से आज तक पर्यावरणीय दशाओं में अनेक परिवर्तन हुआ है। भारत जैसे सघन बसे क्षेत्र में जीवन–निर्वाहन कृषि होने से इनकी पेटियां सन्दर्भहीन हो गयीं। एक नगर, एक बाजार, एक तरह की भौगोलिक परिस्थितियां और उनके कृषि फार्म जैसी व्यवस्था धरातल पर अन्यत्र असम्भव है। इसलिए यह सिद्धान्त वर्तमान समय में अप्रासंगिक तो है, लेकिन आने वाले विद्वानों के लिए एक नयी विचार प्रस्तुत करता है।

10.3 कृषि अवस्थिति के आधुनिक सिद्धान्त –

कृषि अवस्थिति (कृषि भूमि उपयोग) का आधुनिक सिद्धान्त वास्तविक जगत् में व्याप्त चरों पर आधारित है। आधुनिक सिद्धान्तों में प्राकृतिक वातावरण तथा भूमि संसाधन की क्षेत्रीय विभिन्नताओं को अधिक महत्व दिया गया है इसके अनुसार विभिन्न फसलों के उत्पादन के लिये अनुकूलतम प्राकृतिक और आर्थिक क्षेत्रों को सीमांकित किया जा सकता है। इस आधुनिक सिद्धान्त में दो प्रमुख आधुनिक सिद्धान्त सम्मिलित हैं –

10.3.1 अनुकूलतम भौतिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त –(Theory of Physical Limits and Optimum Canditions)

प्रत्येक फसल के उत्पादन के लिये कुछ वि"ोष प्राकृतिक द"ााओं की आव"यकता होती है जैसे– अनुकूल तापमान, वर्षा, आर्द्रता, मृदा के पोषक तत्व इनकी उपलब्धता के आधार पर ही किसी वि"ोष फसल का सीमांकन किया जाता है। एक ऐसा क्षेत्र जहाँ इन सभी अनुकूल द"ााओं का आद"ा सम्मिश्र पाया जाता है और उत्पादन की सम्भावना अधिक होती है, इस क्षेत्र को अनुकूलतम प्राकृतिक द"ााओं वाला क्षेत्र (Optimum Area) कहते हैं। प्रायः ऐसी द"ााएँ सर्वत्र नहीं पायी जाती और परिस्थितियाँ भी बदलती रहती है। विभिन्न प्रकार की भूमि अलग–अलग फसलों के उत्पादन के लिए अनुकूल होती है। सबसे पहले यह देखा जाता है कि कौन–सा भूखण्ड किस फसल के उत्पादन के लिए सर्वाधिक अनुकूल होगा। प्रत्येक फसल के लिए निर्धारित प्राकृतिक सीमाओं के अन्तर्गत अनुकूलतम् दशाओं का सीमांकन किया जाता है। अनुकूलतम प्राकृतिक दशाओं का क्षेत्र को चित्र 10.4 में स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है। किसी फसल के उत्पादन के प्राकृतिक सीमाएँ, अनुकूलतम दशायें बदलती रहती हैं। जिससे विभिन्न फसलों के उत्पादन की प्राकृतिक सीमाओं एवं अनुकूलतम द"ााओं में भी परिवर्तन होता रहता है। जैसे–अब गेहूँ की कम समय में तैयार होने वाली किस्मों के आविष्कार से गेहूँ अधिक ठण्डे प्रदे"ाों में भी उगाया जाता है। यू. एस.ए. की कपास पेटी कपास उत्पादन हेतु प्राकृतिक सीमायें एवं अनुकूलतम द"ाायें स्पष्टतः देखने को मिलती है।

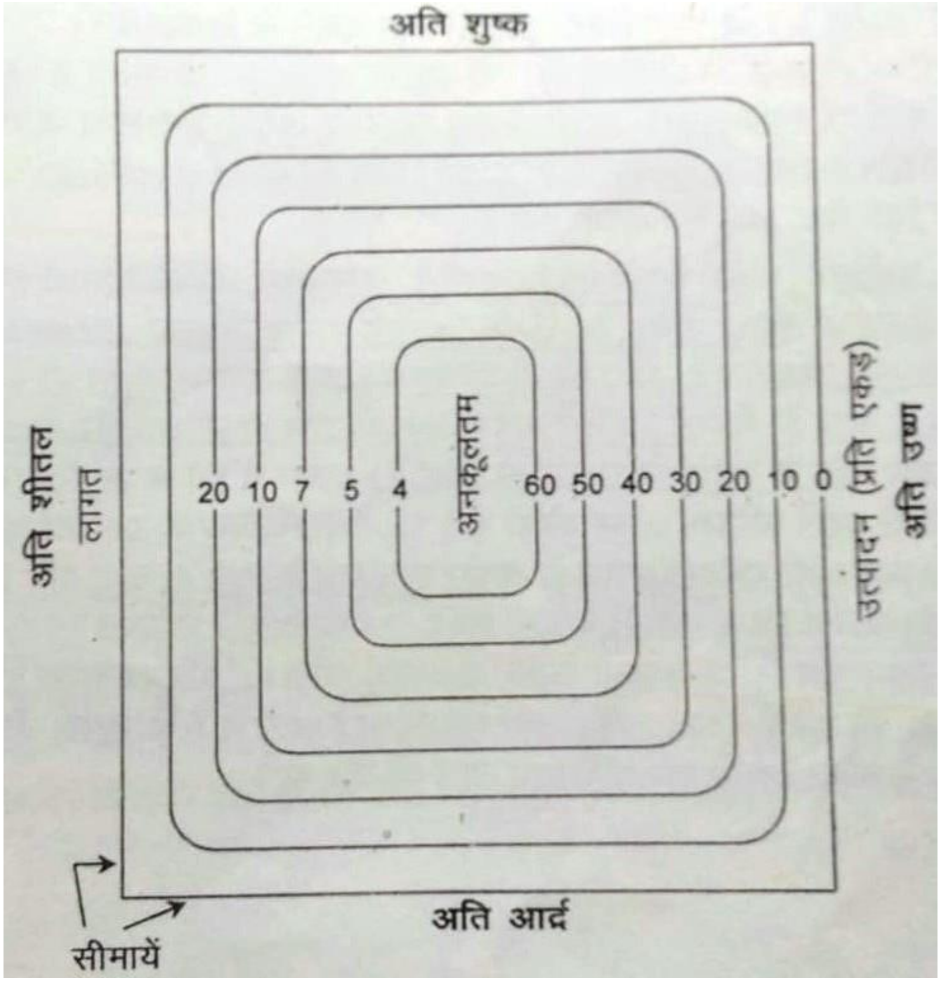

चित्र संख्या–10.4 प्राकृतिक सीमांयें एवं अनुकूलतम दशाओं का सिद्धांत

10.3.2 अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त–(Theory of Optimum Economic Conditions and Limits)

आर्थिक द"ााओं से तात्पर्य उन स्थिति से है, जिनसे किसी क्षेत्र की उत्पादकता, भौतिक कारकों के संयोग से निर्धारित होती है। परिवहन व्यवस्था बाजार, मांग और सरकारी नीति ऐसे प्रमुख आर्थिक कारक हैं, जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि की उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। भौतिक कारकों की अपेक्षा आर्थिक कारक अधिक परिवर्तन"ाील होता है।

एक काल अवधि में किसी क्षेत्र में इनकी स्थितियाँ अनुकूल होती है, जिससे वहाँ कृषि उत्पादकता अधिकतम होती है, जिस क्षेत्र में ऐसी अनुकूल द"ाायें उपलब्ध होती हैं, उन्हें 'अनुकूलतम आर्थिक द"ााओं का क्षेत्र' कहा जाता है। इस क्षेत्र से दूरी बढ़ने पर आर्थिक द"ााओं की अनुकूलता कम होती जाती है और उत्पादन लागत बढ़ता जाता है जिससे कई मेखलायें बन जाती है।

सर्वप्रथम मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग (1966) ने अनुकूलतम आर्थिक द"ााओं की सीमा कहाँ तक और कैसे निर्धारित होगी' का अध्ययन किया और अनुकूलतम आर्थिक द"ााओं और सीमाओं का नियम प्रस्तुत किया, इनके सिद्धान्त का आधार डेविड रिकार्डो का आर्थिक लगान का सिद्धान्त था। इस सिद्धान्त को 10.5 से स्पष्ट समझा जा सकता है।

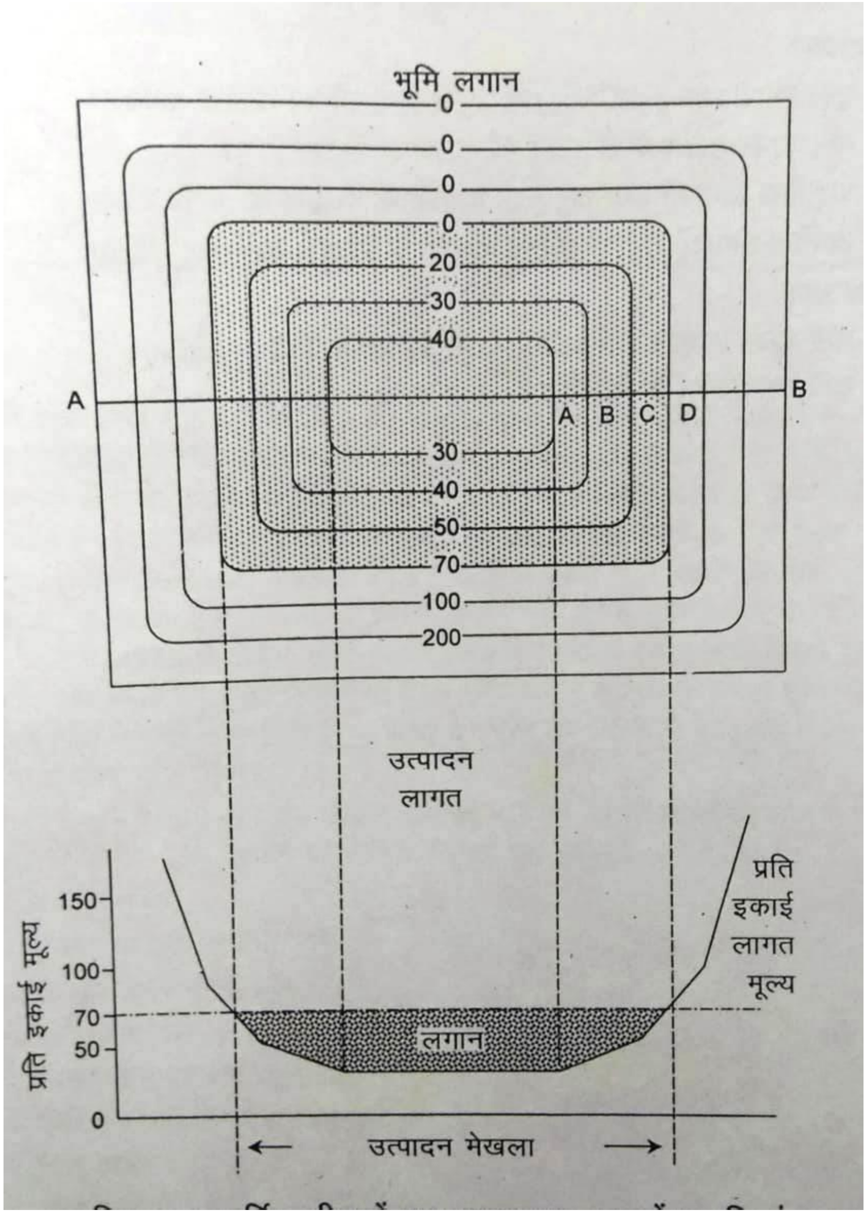

चित्र संख्या–10.5 आर्थिक सीमाओं एवं अनुकूलतम दशाओं का सिद्धांत

मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या दुग्ध उत्पादन, कृषकों की उत्पादन लागत और भूमि लगान से किया। यदि अन्य भौतिक द"ाायें समान हों तो परिवहन लागत द्वारा ही निर्धारित होगा कि बाजार में कृषक द्वारा दूध की आपूर्ति सीधे तौर पर या उसका रूपान्तरण (पनीर, आईसक्रीम, मक्खन, दही आदि) करके विक्रय किया जायेगा। इसके लिए मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग ने बाजार से बढ़ती दूरी के अनुसार परिवहन लागत के आधार पर क्षेत्र को 4 भागों में A, B, C, D में बाँटा और बताया कि बाजार के लिए दुग्ध आपूर्ति A और B मेखला वाले किसान करेंगे C मेखला के किसान दूध के किसी भी रूप में आपूर्ति जबकि D मेखला के दूरी बाजार से अधिक होने के कारण दूध से रूपान्तरित वस्तुओं की आपूर्ति बाजार D मेखला के दूरी बाजार से अधिक होने के कारण दूध से रूपान्तरित वस्तुओं की आपूर्ति बाजार की होगी क्योंकि दूध के बने उत्पादन के खराब होने की सम्भावना कम होगी और लाभ भी अधिक होगा। हालांकि इसमें उत्पादन लागत अधिक आती है परन्तु परिवहन व्यय बहुत कम पड़ता है और काल अवधि अधिक होती है।

मैकार्टी एवं लिण्डबर्ग ने अपने सिद्धान्त में समस्त आर्थिक कारकों से उत्पन्न द"ााओं से कम बल्कि इसके एक अवयव परिवहन को आधार माना।

10.3.3 आलोचना –

वर्तमान तकनीकी विकास युग में मात्र परिवहन व्यवस्था ही कृषि के इस प्रकार के प्रतिरूप को जन्म देगी, इसकी सम्भावना बहुत कम है।

10.4 सारांश –

कृषि अवस्थित सिद्धान्त अथवा मॉडल मान्यताएं, कृषि भूमि उपयोग की विषमताओं, विविधताओं, जटिलताओं को समझने, वर्णन करने में अत्यन्त उपयोगी है। विद्वानों ने अनेक प्रकार के मॉडल सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर उनमें विभिन्न वर्गों में रखा, जिसमें प्रस्तुत इकाई में कृषि अवस्थित सिद्धान्त एवं आधुनिक कृषि अवस्थित सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया गया। वानथ्यूनेन का सिद्धान्त, मैकार्टी एवं लिण्डवर्ग का सिद्धान्त अत्यन्त रुचिपूर्ण है और आज भी कृषि भूगोलवेत्ताओं के बीच परिचर्चा का विषय बना रहता है। यह मॉडल नियोजकों के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करेगा और लोगों को नये मॉडल पर चिन्तन मनन के लिए प्रेरित करेगा।

10.5 बोध प्रश्न –

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए –

1. वानथ्यूनेन का सिद्धान्त किस वर्ष प्रतिपादित हुआ – क. 1825, ख. 1826, ग. 18215, घ. 1828.
2. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त में द्वितीय कृषि पेटी में क्या शामिल है – क. जलाऊँ लकड़ी, ख. दूध उत्पादन, ग. सब्जी उत्पादन, घ. उपरोक्त में कोई नहीं।
3. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त के आलोचक निम्न में कौन नहीं थे– क. डन, ख. लाश, ग. इजार्ड, घ. डब्ल्यू०एम० डेविस।
4. उत्पादन की लागत को किस वर्णाक्षर से इंगित किया गया है– क. A., ख. V., ग. E., घ. T.
5. अनुकूलतम आर्थिक दशाओं एवं सीमाओं का सिद्धान्त दिया है– क. डन, ख. लाश, ग. इजार्ड, घ. मैकार्टी एवं लिण्डवर्ग।

10.6 शब्दावली –

1. **उत्पादन लागत** – वस्तु के उत्पादन में खर्च होने वाला व्यय, जिसमें फसल का पारिश्रमिक, लागत, मिट्टी तैयार होने में लगने वाला खर्च व अन्य निराई, गुड़ाई शामिल होता है।
2. **आर्थिक लगान** – किसी भूमि से उत्पादित फसल के विक्रय मूल्य से उत्पादन लागत और परिवहन दोनों के सम्मिलित योगों को घटाने से जो परिणाम आता है, उसे आर्थिक लगान या आर्थिक लाभ कहते हैं।
3. **समांगी प्रदेश** – ऐसा भूभाग, जहाँ पर समस्त भौतिक व मानवीय परिस्थितियाँ एक समान हों।
4. **परिवहन लागत** – उत्पादित वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में मालभाड़ा के रूप में किया जाने वाला खर्च, जिसमें माल को उतारने, लादने का भी व्यय शामिल होता है।

बोध प्रश्न के उत्तर –

1. ख, 2. क, 5. घ, 4. ग, 5. घ।

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न –

1. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उसकी प्रासंगिकता बताइये।
3. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त के प्रमुख कृषि पेटियों का उल्लेख कीजिए।
4. वानथ्यूनेन के सिद्धान्त की मान्यताओं का वर्णन कीजिए।

5. कृषि अवस्थित के आधुनिक सिद्धान्त का सविस्तार वर्णन कीजिए।
6. कृषि आधुनिक सिद्धान्त के प्राकृतिक सीमाओं तथा अनुकूलतम् दशाओं का सिद्धान्त कैसे है, सिद्ध कीजिए।
7. मैकार्टी एवं लिंण्डवर्ग के मॉडल की व्याख्या कीजिए।
8. आधुनिकीकरण के सिद्धान्त आर्थिक सीमाओं तथा अनुकूलतम दशाओं का सिद्धान्त का परीक्षण कीजिए।

10.9 सन्दर्भ सूची

1. कुमार, प्रमीला एवं श्रीकमल शर्मा : कृषि भूगोल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2006.
2. तिवारी आर०सी० तथा बी०एन० सिंह कृषि भूगोल प्रयाग पुस्तक सदन इलाहाबाद।
3. Hussain Majid, Agricultural Geography, Inter India Publications, New Delhi, 1919.
4. Singh, J.and S.S. Dhillon, agricultural Geography. Tatas Mc Graw Hill Pub. New Delhi, 1988.
5. Chishilm, M (19515) Regional variations in road transport cost of milk collection from framers in England and Wales, farm Economist,5pp 50-58.
6. Chisholm, M. (1962) Rural Settlement and landuse: An Essay in Location.London, Hutchinson Library.
7. Chisholm, M. (1966) Geography and Economics. London. Hutchinsn Library publication.
8. Dunn,E.S. (1954) The Location of Agricultural Production. Gainesville : University of Florida.
9. Found. W.C. (19151)A Theoretical Approach to Rural Landuse Patterns. London: Edware Arnold.
10. Garrison,W.L. and D.F. Marble (19515) The Spatial Structure of Agricultural activities,ann. Ass. Am. Geog.52, pp 290-2915.
11. Haggett,p. et. al(191515) Locational analysis in Humna Geography. London: Edward Arnold.
12. Thunen, J.H. von (1826) Der Isolierate Staut in Beziehung and Landwirtschaft and Nationalkonomie, pt,1 Rostock.Collected edition, pt.I,ll and III ,18156, Berlin.
13. Thoman, R.S. and P.B. Corban.(1962-19154) The Geography of Economick Activity. 5rd ed. With p.B. Corbin New York: McGraw Hill Books Co.
14. Van, Valkenburg.S. and (1952) Europe. Europe. New York: john Willy.

इकाई–11

फ्रीडमैन का केंद्र परिधि मॉडल, पैराक्स एवं बाउडविले का विकास ध्रुव सिद्धात

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 फ्रीडमैन का केंद्र परिधि मॉडल

11.4 पूर्व औद्योगिक अवस्था

11.5 आलोचनात्मक मूल्यांकन

11.6 पेरोक्स एवं बॉउडेविले का विकास ध्रुव सिद्धात

11.7 विकास ध्रुव का अर्थ

11.8 विकास ध्रुव सिद्धात

11.9 औद्योगिक समूहन और संपर्क धारणाओं पर आधारित

11.10 विकास ध्रुव सिद्धाँत में बाउडेविले द्वारा संशोधन

11.11 आलोचनात्मक मूल्याँकन

11.12 निष्कर्ष

11.13 शब्द सूची

11.14 परीक्षापयोगी प्रश्न

11.15 अभ्यास प्रश्न

11.16 संदर्भ ग्रन्थ

11.1 प्रस्तावना :–

आर्थिक एवं प्रादेशिक विकास सम्बन्धी तथ्यों को समझने के लिए इकाई –11 में फ्रीडमैन का केन्द्र परिधि मॉडल पेरोक्स एवं बाउडविले का अध्ययन कर तथ्यों का विश्लेषण करने का अवसर प्राप्त होगा।

11.2 उद्देश्य :–

इकाई–11 के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. फ्रीडमैन के केन्द्र परिधि मॉडल के अध्ययन के माध्यम से परिधीय क्षेत्रों की केन्द्रीय क्षेत्र के ऊपर निर्भरता के बारे में समझ सकेंगे।
2. पेरोक्स एवं बाउडेविले के सिद्धान्त के माध्यम से आप यह समझ पायेंगे कि विकास एक समय पर प्रत्येक जगह उत्पन्न नहीं होता, इसकी उत्पत्ति ऐसे बिन्दु पर या ध्रुव पर होगी है। जहां विभिन्नता पूर्ण गहनता पायी जाती है।
3. केन्द्र परिधि मॉडल व विकास ध्रुव सिंद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन कर विश्लेषण करते हुए आर्थिक एवं प्रादेशिक विकास सम्बन्धी तथ्यों को समझने का अवसर प्राप्त होगा।

11.3 फ्रीडमैन का केंद्र परिधि मॉडल (Friedman's Core Periphery Model) :–

अमेरिका के अर्थशास्त्री जॉन फ्रीडमैन ने 1966 में केन्द्र परिधि मॉडल प्रस्तुत किया। यह मॉडल :–

1. मानवीय क्रिया के क्षेत्रीय संगठन से सम्बन्धित मॉडल।
2. अर्थ व्यवस्था एवं समाज की शक्ति के समान वितरण पर आधारित यह सिद्धान्त प्रादेशिक विकास के लिए मार्ग और विधि प्रदान करता है।
3. इसका प्रयोग आर्थिक विकास के क्षेत्रीय प्रतिरूप का सामान्यीकरण करने के लिए विधितंत्र या उपागम की तरह किया गया।

फ्रीडमैन का मानना था आर्थिक एवं सामाजिक शक्ति प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास और उच्च उत्पादन की क्षमता का केन्द्र (कोर) पर मिलता है जो कि एक नगर केन्द्र के रूप में विकसित होता है। जब कि परिधि मुख्यतः कम विकसित अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र के रूप में पायी जाती है।

इस प्रकार केन्द्र नगरीय क्षेत्र का और परिधि उसके चारों ओर के ग्रामीण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है।

केन्द्र के क्षेत्र में उद्योग, सरकार, सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व्यक्तियों, वित्तीय शक्ति व शिक्षा की विकसित पद्धति आदि का संक्रेन्द्रण होता है। इसके विपरीत परिधि के अन्तर्गत ग्रामीण भूदृश्य, कृषि, वन, खनन, वनो उद्योग जैसी प्राथमिक क्रियाएं और कमजोर आर्थिक शक्ति, अकुशल श्रमिक, अल्पतम मजदूरी आदि शमिल होते हैं।

केन्द्र व परिधि दोनों की स्थिति अलग–अलग होने के कारण केन्द्र का क्षेत्र ज्यादा विकसित दिखाई देता है और सामान्यतः जनसंख्या का प्रवास परिधि से केन्द्र की ओर सुविधा प्राप्ति हेतु होता है। इस प्रकार केन्द्र प्रभावशाली होता है और परिधि उस पर निर्भर करती है। केन्द्र और परिधि के बीच जो निर्भरता है वह आपसी विनिमय के द्वारा निर्मित होती है।

केन्द्र पर आर्थिक शक्ति प्रौद्योगिकीय प्रगति तथा उत्पादन करने व उत्पादकों के निर्माण हेतु उद्योगों का आपसी विनिमय का केन्द्रीयकरण हो जाता है। उत्पादनकर्ता नवाचारों का केन्द्र से परिधि की ओर निर्गत केन्द्र से परिधि को वस्तुओं तथा सेवाओं किसी भी रूप में अतिरेख मूल्य के प्रवाह को बनाकर रखने में सहयोग प्रदान करता है।

इस प्रकार केन्द्र में जब उत्पादन में वृद्धि होती है तो दक्ष एंव प्रभावी श्रम के स्थानांतरित होने के साथ–साथ मजदूरी में वृद्धि उत्पन्न होती है।

इसी तरह परिधीय क्षेत्र में अकुशल व गैर संगठित श्रम की अधिकता होने की वजह से निम्न मजदूरी की स्थिति हमेशा बनी रहती है

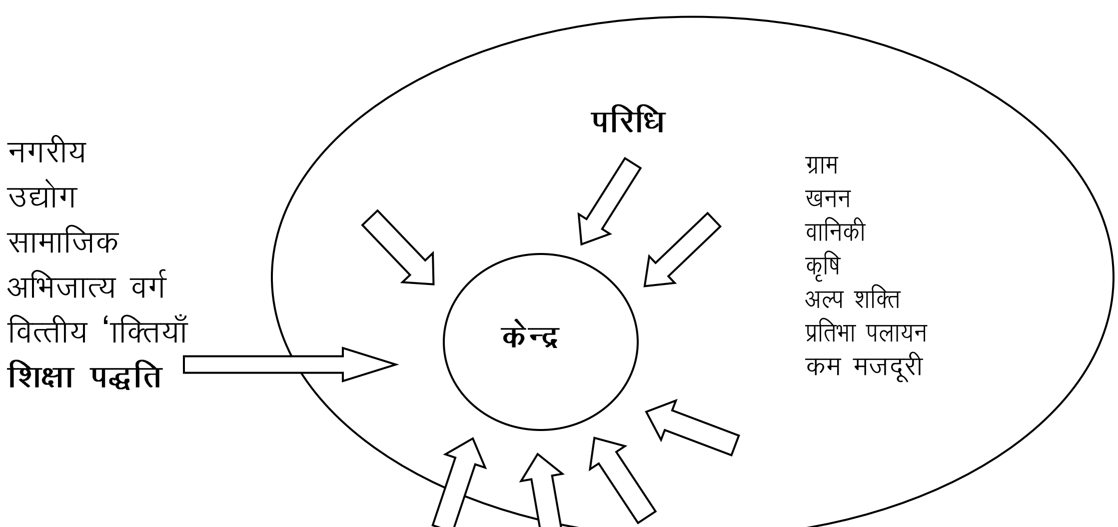

चित्र – 11.1 परिधि से केन्द्र की ओर जनसंख्या का प्रवास
(जॉन फ्रीडमैन के अनुसार)

यदि मजदूरी के स्तर को केन्द्र और परिधि के मध्य जिन उत्पादों का विनिमय आपस में किया जाता है और उनके सापेक्षित मूल्यों के रूप में दिखाया जाता है, तो यदि केन्द्र में मजदूरी बहुत अधिक है, तो परिधि में हमेशा भुगतान संतुलन की समस्या उत्पन्न करेगी, क्योंकि ज्यादा मजदूरी का भुगतान संतुलन बिगाड़ देगा या फिर जिन वस्तुओं का आयात की लागत में यदि वृद्धि होगी तो वह भी संतुलन बिगाड़ देगी। इसलिए केन्द्र व परिधि में संतुलन स्थापित करने हेतु फिर परिधि से निर्यात बढ़ाने हेतु यह स्थिति प्रेरित करेगी।

स्थिति चाहे पहले वाली हो अर्थात् केन्द्र में उच्चतर मजदूरी वाली या दूसरी वाली जिसमें केन्द्र से आयात की जाने वाली वस्तुओं की लागत में वृद्धि हो, दोनों ही स्थितियों में परिधि के स्वतंत्र विकास में कठिनाई होती है, या फिर वह समाप्त हो जाती है।

केन्द्र और परिधि में पाये जाने वाले असमान सम्बन्धों को कायम रखने के लिए केन्द्र के विकास के लिए जो भी आर्थिक व वाणिज्यिक नीतियां बनायी जाती है। उनको कार्य रूप में परिणित करने के लिए अर्थात् क्रियान्वयन के लिए खर्च परिधि क्षेत्र से प्राप्त होता रहे और जैसे–जैसे परिधि से केन्द्र की ओर प्रवास और पूँजी का प्रवाह यानि की पूँजी का केन्द्र की तरफ जाना होगा केन्द्र व परिधि के सम्बन्धों को सुदृढ़ किया जा सकता है।

फ्रीडमैन 1966 में वेनुजुएला (दक्षिणी अमेरिका) में प्रादेशिक विकास की जो नीति बनाई गयी उसका विश्लेषण करते हुए एक नगर तंत्र में विकास के लिए केन्द्र व परिधि को जिन–जिन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है उन अवस्थाओं की व्याख्या की गयी है। परम्परागत केन्द्र परिधि विकास मॉडल के द्वारा प्रदेश के नगर तंत्र को चार प्रमुख अवस्थाओं में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। ये अवस्थाएं प्रायः प्रादेशिक परिवहन तंत्र पर निर्भर होती है। उन्हीं के अनुसार विकसित होती है और उनका विकास परिवहन तंत्र के विकास के साथ–साथ होता है।

प्रारंभिक अवस्था में केन्द्र और परिधि के मध्य क्षेत्रीय असमानता बहुत अधिक दिखाई देती है जो अन्त में कम हो जाती है और फिर केन्द्र व परिधि के आपस में सम्बन्धित होने के कारण कार्यात्मक रूप से एकीकृत नगर तंत्र का प्रादुर्भाव होता है। नगर तंत्र विकास की प्रमुख चार अवस्थाएं निम्नांकित है :–

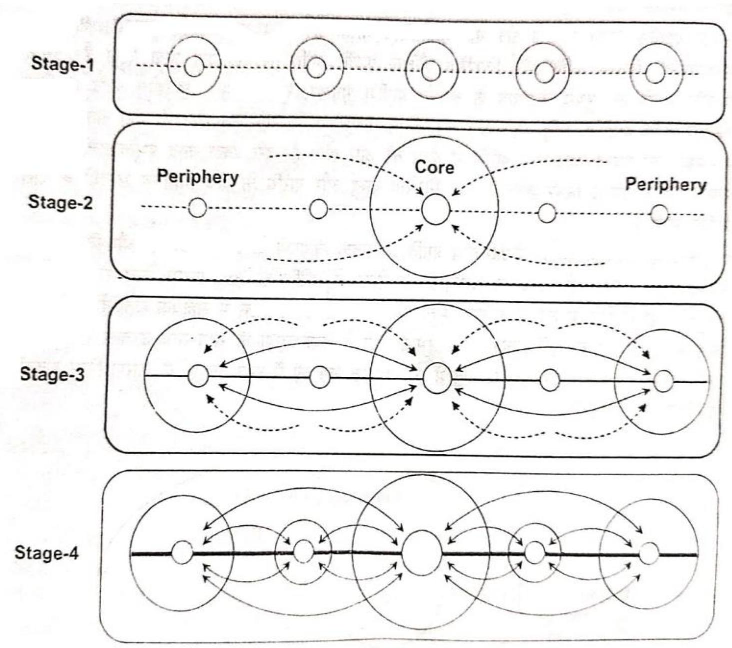

विकास की केन्द्र-परिधि अवस्थाएँ (जॉन फ्रीडमैन के अनुसार)।

चित्र 11.2 विकास की केन्द्र – परिधि अवस्थाएँ (जॉन फ्रीडमैन के अनुसार)

11.4.1 पूर्व औद्योगिक अवस्था :–

विकास की पूर्व औद्योगिक अवस्था में कृषि प्रधान अर्थात् कृषि पर आधारित समाज की प्रमुखता पायी जाती है जिसमें स्थानीय अर्थव्यवस्था पर आधारित लघुस्तरीय अधिवास संरचना पायी जाती है।

ग्रामीण अधिवासों की प्रमुखता के साथ ही प्रकीर्ण अर्थात बिखरे हुये अधिवासों की बहुतायत पायी जाती है। इनमें किये जाने वाले कार्य अर्थात् क्रियायें असंगठित तथा बिखरी हुई प्रकृति की होती है और इसमें गति बहुत ही कम अर्थात् न्यून होने के कारण उनमें बहुत कम भिन्नता देखने को मिलती है। कृषकों के समाज वाली इस अवस्था में उद्योगों का विकास बहुत कम होता है अथवा उद्योग नहीं पाये जाते हैं, उनका अभाव होता है।

2. संक्रमण अवस्था :–

विकास की इस अवस्था में अर्थ व्यवस्था का केन्द्र केन्द्रीय नगर (Core city) में होता है क्योंकि इस केन्द्र पर पूँजी का संचय या निवेश तथा औद्योगिक विकास की शुरूआत होती है। नगरीय केन्द्र पर पूँजी तथा उद्योगों के केन्द्रीयकरण के विशिष्ट कारण के वि"ाय में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सा कारण केन्द्रीयकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह बहुत स्पष्ट नहीं होता और विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों में अलग–अलग हो सकता है। इसी प्रदेश में नगर केन्द्र के रूप में सुगम स्थिति निर्मित हो सकती है और यह नगरीय तंत्र के विकास में मुख्य विकास केन्द्र की भूमिका निभाने में समर्थ होती है। संक्रमण अवस्था में नगरीय केन्द्र पर छोटी–छोटी औद्योगिक इकाईयों की स्थापना होती जाती है और व्यापार तथा जनसंख्या में वस्तुओं तथा सेवाओं की गतिशीलता में प्रथम अवस्था की अपेक्षा वृद्धि होती है, किन्तु इसका प्रतिरूप केन्द्र द्वारा निर्धारित और आधारित होता है। फिर कुल मिलाकर आंकलन किया जाये, तो गतिशीलता कम ही रहती है। इसमें संक्रमण अवस्था के अनेक उदाहरण मिलते है। जिनमें 18 वी शाताब्दी के उत्तरार्द्ध के ग्रेट ब्रिटेन की आरंभिक औद्योगिक दशा को इस अवस्था का सर्वाधिक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

3. औद्योगिक अवस्था :–

विकास की इस अवस्था में आर्थिक विकास की प्रक्रिया जो चलती रहती है तथा उसके प्रसरण अर्थात् फैलाव के माध्यम से अनेक अन्य विकास केन्द्र धीरे–धीरे उत्पन्न होते हैं। केन्द्रीय क्षेत्र में मुख्य रूप से श्रम और भूमि की लागत में वृद्धि होती है जिसके कारण उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण प्रारम्भ होता है। इस प्रकार फैलाव व प्रसरण के लिए नगर तंत्र के जो तत्व थे उनके मध्य होने वाली अंतर्क्रिया में वृद्धि और परिवहन की जो संरचना में उनमें होने वाली सुविधाओं में वृद्धि को जिम्मेदार माना जा सकता है।

4. उत्तर औद्योगिक अवस्था :–

यह विकास की अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते जिसमें सारा नगर तंत्र और क्षेत्र एक हो जाता है और पायी जाने वाले क्षेत्र सम्बन्धी असमानतायें भी जो कारक विकास के पहले की अवस्थाओं में क्षेत्रीय भिन्नता उत्पन्न करते थे, उसके लिए उत्तरदायी थे। अब समय के बदलाव के साथ वे नगर तंत्र के प्रमुख्य केन्द्रों के निर्माण में योगदान देने लगते हैं। इस प्रकार धीरे–धीरे वृहद व्यापारिक नगर के विकास के लिए परिस्थितियां अनुकूल होने लगती है। इस अवस्था को प्रौढ़ावस्था कहा जाता है, क्योंकि इस अवस्था में नगर अपने पृ"ठ प्रदेष के साथ पूर्ण विकसित रूप में मौजूद होता है।

औद्योगीकृत पाश्चात्य देशों के वृहद नगरीय तंत्र इस अवस्था के बेहतरीन उदाहरण हैं।

11.5 आलोचनात्मक मूल्यांकन :–

1. केन्द्र परिधि मॉडल प्रादेशिक समानता पर आधारित नहीं है, बल्कि यह अंतर्प्रादेशिक विभिन्नता तथा संघर्ष पर आधारित है जिसकी वजह से यह आर्थिक विकास की असमान प्रकृति पर बल देता है।
2. इस मॉडल में अनेक कमियां पायी जाती है जिनमें प्रमुख है कि सम्पूर्ण आर्थिक विकास को नगरीय विकास पर निर्भर माना गया है। परिधि क्षेत्र को निरंतर पिछले रूप में दिखाया गया है। समस्त सामाजिक शक्ति का केन्द्र भी नगर को माना गया है और ग्रामीण बेरोजगारी एवं निर्धनता में लगातार वृद्धि दिखाई गयी है।

3. केन्द्र पर आर्थिक तथा सामाजिक शक्ति प्रौद्योगिक प्रगति और उच्च उत्पादकता संकेन्द्रण उस पर आश्रित परिधि क्षेत्र के विकास में बाधा उत्पन्न करता है, जो फ्रीडमैन के सिद्धान्त पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।
4. विकास के केन्द्र परिधि मॉडल के अनुसार केन्द्र परिधि का शोषक होता है जिससे परिधि का विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा अत्यन्त मन्द गति से होता है।
5. यह मॉडल असमान केन्द्रीय विकास पर बल देता है जिससे की प्रादेषिक असमानता को बढ़ावा मिलता है।

11.6 पेरोक्स एवं बॉउडेविले का विकास ध्रुव सिद्धान्त (Growth Pole Theory of Perroux and Boudeville):–

आर्थिक एवं प्रादेशिक विकास सम्बन्धित ध्रुव सिद्धांत का प्रतिपादन प्रादेशिक अर्थशास्त्रीय फ्रैकोइस पेरोक्स (1903–1987) ने 1955 में किया था। इनका सिद्धान्त आर्थिक के तथ्यों तथा संरचना में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। उन्होंने इस तथ्य की व्याख्या करने का प्रयास किया था कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया किस प्रकार संतुलित विकास की स्थिर अवधारणा से अलग होती है। पेरोक्स द्वारा लिखित विकास घ्रुव सिद्धान्त अपने मौलिक रूप में अर्थशास्त्र की मासिक पत्रिका "इकोनॉमिक अपलीकी" में 1955 में प्रकाशित हुआ जिसके माध्यम से उन्होंने आर्थिक विकास ध्रुव का परिचय दिया। पेरोक्स के 'विकास ध्रुव सिद्धान्त' को एक दूसरे फ्रॉसीसी प्रादेशिक अर्थशास्त्री जे0आर0 बाउडेविले ने संशोधित किया और 1966 में 'विकास केन्द्र सिद्धान्त' के नाम से प्रकाशित करवाया।

11.7 विकास ध्रुव का अर्थ :–

विकास ध्रुव को पेरोक्स ने अपने तरीके से स्पष्ट किया है। उनका मानना था कि वे सभी केन्द्र जहाँ से अपकेन्द्रीय शक्तियों का उद्‌गम होता है और उनके प्रति अभिकेन्द्रीय शक्तियां आकर्षित होती हैं। उनकी तरफ उनका खिंचाव बढ़ता है। वह विकास ध्रुव कहलाता है।

ऐसा प्रत्येक केन्द्र आक"ाण एवं प्रत्याकर्षण का केन्द्र होने के कारण इसका अपना क्षेत्र होता है। जिसका अन्य सभी केन्द्रों के क्षेत्रों के साथ व्यवस्थित होता है अर्थात् आक"ाण एवं प्रत्याकर्षण के जो केन्द्र होते हैं उनका–उनका अपना क्षेत्र होता है और यह अन्य सभी केन्द्रों के साथ अपना सामंजस्य स्थापित करता है।

इस प्रकार विकास ध्रुव को नगरीय स्थिति माना जाता है जहां होने वाले आर्थिक क्रिया नगरीय परिधि के क्षेत्र में जहां तक उसका प्रभाव होता है। विकास तथा उच्चतर जीवन की गुणवत्ता को आगे बढ़ाता है। प्रदीप्त या प्रज्जवलित करता है। जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु प्रयासरत होता है।

विकास ध्रुव पर केन्द्रित होने वाली आर्थिक क्रियाओं के प्रभाव के परिणाम स्वरूप केन्द्र से बाहर एक प्रभाव क्षेत्र या सहायक क्षेत्र का विकास होता है, जो विकास ध्रुव से प्रभावित होता है।

विकास ध्रुव की तुलना एक ऐसी विशेष स्थिति से की जा सकती है, जहां अन्तर्संम्बंन्धित अर्थात् एक दूसरे से जुड़े हुए विभिन्न प्रकार के उद्योगों तथा आर्थिक संस्थाओं का भौगोलिक केन्द्रीयकरण होता है।

किसी नये क्षेत्र में विकास का आरम्भ विकास ध्रुव या विकास केन्द्र से होता है। इस केन्द्र पर किसी उद्योग विशेष अथवा उद्योगों के समूह तथा सामाजिक आर्थिक संस्थाओं का केन्द्रीयकरण होने से उसके चारों ओर स्थित क्षेत्र का भी विकास धीरे–धीरे होने लगता है।

पेरोक्स ने विकास ध्रुव को परिभाषित करते हुए अमूर्त या निराकार आर्थिक क्षेत्र अर्थात् ऐसा आर्थिक क्षेत्र जिसे हम देख नहीं सकते और जिसका कोई आकार नहीं इस रूप में प्रस्तुत किया है।

इसके अनुसार आर्थिक क्षेत्र तीन प्रकार के है :–

1. आर्थिक योजना
2. प्रभाव क्षेत्र
3. सजातीय समूह या समुच्चय

पेरोक्स का कहना है कि विकास एक समय पर प्रत्येक जगह नहीं होता। इसकी उत्पत्ति ऐसे बिन्दु या ध्रुव पर होती है जहाँ पर विविधता हो और भिन्नात्मक विविधता के साथ गहनता पायी जाये। वहां से इसका प्रसार अर्थात् फैलाव बाहर की ओर होता हैं और इसका प्रभाव विभिन्न रूपों में सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था पर होता है।

11.8 विकास ध्रुव का सिद्धान्त :–

पेरोक्स का विकास ध्रुव सिद्धान्त मूल रूप से उनकी "अमूर्त आर्थिक क्षेत्र" अर्थात् निराकार आर्थिक क्षेत्र की संकल्पना पर आधारित है। उनके अनुसार विकास ध्रुव की उत्पत्ति एवं उसके विकास के लिए प्रभावशाली पक्ष का होना अत्यन्त आवश्यक है। कोई बड़ी फर्म या बड़े उद्योग की अन्य फर्मों या उद्योगों के साथ उच्च श्रेणी की आन्तरिक क्रिया जब होती है, तो जो उस अंतर्क्रिया में प्रभाव रखती हैं उसे पेरोक्स ने 'उत्प्रेरक' की संज्ञा दी है। किसी 'उत्प्रेरक' फर्म या उद्योग के विकास की प्रक्रिया को ध्रुवीकरण के नाम से जाना जाता है।

11.9 औद्योगिक समूहन और संपर्क धारणाओं पर आधारित :–

पेरोक्स और साथ ही बाउडेबिले की भी विकास ध्रुव या विकास केन्द्र संकल्पना बाह्य बचत, औद्योगिक समूहन और सम्पर्क की धारणाओं पर आधारित है।

1. बाह्यबचत :–

बाह्यबचत का लाभ तब प्राप्त होता है अर्थात् फायदा तब पहुँचता है जब एक फर्म या उद्योग से उत्पन्न होने वाले उत्पाद में परिवर्तन या प्रभाव अन्य फर्म या उद्योग की लागत को प्रभावित करता है।

2. औद्योगिक समूहन :–

किसी स्थान विशेष पर जब परस्पर आपस में अन्तर्सम्बन्धित फर्मों तथा उद्योगों के क्षेत्रीय संक्रेन्द्रण को औद्योगिक समूहन कहा जाता है। आमतौर पर जो व्यवसाय समूह में स्थित होते हैं। अपेक्षाकृत उनका विकास काफी अच्छा होता है और उनकी उत्तर जीविता भी अधिक होती है। औद्योगिक समूह में स्थित फर्मों की भौतिक या स्थानिक निकटता सूचना प्रदान करने व ज्ञान व प्रौद्योगिकीय के आदान–प्रदान में सहायक होती है। किसी समूह में समान प्रकार के उद्योगों के एकत्रित रहने से विशिष्ट औद्योगिक उपकरण सेवाएं आदि सुगमता से मिल जाती है।

3. सम्पर्क :–

सम्पर्क प्रादेशिक अर्थव्यवस्था की मौलिक संकल्पना है। संपर्क को दो वर्गों में बाँटा गया है। अग्र सम्पर्क और पष्च सम्पर्क।

अग्र सम्पर्क का अर्थ है – एक–एक आधारभूत उद्योग स्थापित हो और उससे तैयार होने वाले माल (उत्पादों) को कच्चे माल के रूप में इस्मेताल करके नये उत्पादों का निर्माण करने वाले अन्य उद्योगों की स्थापना हो जाये,। आधारभूत उद्योगों से उत्पन्न उत्पादों को कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाकर नवीन उत्पाद उत्पन्न करने वाले उद्योग आधारभूत उद्योग पर आश्रित होते हैं। इसलिए उन्हें आश्रित उद्योग कहा जाता है।

उदाहरण के लिए यदि कहीं पर लौह इस्पात उद्योग के स्थापित होने और उत्पादित होने पर इस्पात का कच्चे माल के रूप में प्रयोग करने वाले कई प्रकार के इंजीनियरिंग उद्योग विकसित होने लगते हैं।

पश्च या पृष्ठ सम्पर्क के प्रभाव से सहायक या पूरक उद्योगों का विकास होता है जैसे कि यदि लौह इस्पात उद्योग स्थापित हुआ है तो ऐसे उद्योग साथ–साथ विकसित होने लगते हैं जिनके उत्पादों का प्रयोग कच्चे माल के रूप में होता है अथवा कुछ ऐसी सेवायें जो इस्पात उद्योग के लिए आवश्यक हैं, विकसित होने लगती है।

उदाहरण स्वरूप लोहा इस्पात के साथ स्थानीय लौह अयस्क, कोयला आदि के खनन कार्य तथा कच्चे माल के परिवहन में सहायक परिवहन उद्योग का भी विकास होता है।

यद्यपि पेरोक्स ने विकास ध्रुव की कल्पना एक अमूर्त आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक विकास के केन्द्र या नाभिक के रूप में की थी। उनके विषयों ने विशेषकर जैकस बाउडेविले ने इसकी व्याख्या भौगोलिक क्षेत्र में विकास केन्द्र के रूप में की है।

पेरोक्स द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद फ्रॉंस की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दशाओं से प्रभावित थे। जिस समय वे अपने विकास ध्रुव संकल्पना के लेखन कार्य में व्यस्त थे तब फ्रॉंस मार्षल योजना के अंतर्गत पुनर्निर्माण दौर से गुजर रहा था। उस समय नगरीय केन्द्र आर्थिक विकास के प्रारंभिक केन्द्र थे। जिनका विकास बाद में प्रौद्योगिकी तथा नवाचार पर आधारित उद्योगों पर निर्भर रहा जो मुख्य रूप से अपने चारों ओर स्थित प्राथमिक संसाधनों जैसे– लौह अयस्क, कोयला, कृषि उत्पादों आदि पर आधारित थे। नगरीय केन्द्र पर उद्योगों के केन्द्रीयकरण से बाहर स्थित भौगोलिक परिक्षेत्र की अर्थव्यस्था को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया जा रहा था।

पेरोक्स का विश्वास था कि विकास ध्रुव पर आर्थिक शक्तियों का जब केन्द्रीयकरण होता है तो उन क्षेत्रों का भी विकास संभव होता है जो वहाँ मूल उद्योगों की स्थापना व उनके विकास के लिए आवश्यक पदार्थों एवं संरचनात्मक संसाधनों की आपूर्ति करते हैं। ये सभी संसाधन आर्थिक रूप से शक्तिशाली क्षेत्रों के माध्यम से इस समूहन में फर्मों, उद्योगों तथा व्यवसायों के आर्थिक विकास में अपना सहयोग देते हैं। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि इस प्रकार के विकास की संभावनायें विकास ध्रुव की संकल्पना आर्थिक 'ाक्तियों के संकेद्रण अथवा ध्रुवीकरण को मान्यता प्रदान करती है, किंतु इसकी भौगोलिक या राजनीतिक सीमा क्या होगी, इसे निर्धारित नहीं किया गया है।

3. विकास ध्रुव पर मूल एवं सम्बद्ध उद्योगों का विकास –

विकास ध्रुव सिद्धान्त के अनुसार विकास ध्रुव पर सामान्यतः मूल उद्योग की स्थापना होती है जिनके प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ने वाले प्रभाव की वजह से उनके चारों ओर स्थापित उद्योगों का विकास होता है। मूल या आधारभूत उद्योग कई प्रकार के हो सकते है जैसे– इस्पात उद्योग, कृषि आधारित उद्योग, इलेक्ट्रानिक उद्योग, संचालित वाहन उद्योग और पेट्रोकेमिकल उद्योग आदि। मूल उद्योग के प्रत्यक्ष प्रभाव के अंतर्गत अर्थात् उसके प्रत्यक्ष प्रभाव में क्रेता एवं सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जो इसे आपूर्ति प्रदान करने वाले उद्योगों से प्राप्त होती हैं अथवा जो वस्तुओं एवं सेवाओं को अपने उपभोक्ताओं को प्रदान करता है।

अप्रत्यक्ष प्रभाव के अंतर्गत उन लोगों की वस्तुओं और सेवाओं की मांगो को सम्मिलित किया जाता है जो मूल अथवा सम्बद्ध उद्योगों से जुड़े होते हैं और फुटकर व्यापार जैसी आर्थिक क्रियाओं के विकास और विस्तार में सहायता प्रदान करते हैं।

मूल उद्योग के विकास एवं विस्तार के परिणाम स्वरूप उत्पादन, रोजगार, निवेष, नवीन प्रौद्योगिकीय के साथ ही नये–नये औद्योगिक क्षेत्रों का विस्तार होता है। विकास ध्रुव पर उद्योगों के केन्द्रीयकरण व एकत्रीकरण की वजह से लाभ के उपलब्ध होने के कारण उसके समीपवर्ती क्षेत्रों का प्रादेशिक विकास प्रायः असंतुलित रहता है। प्रादेशिक विकास की इस प्रक्रिया में परिवहन मार्गों का विस्तार व अच्छी व्यवस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। बाद की अवस्था में धीरे–धीरे गौण विकास ध्रुव की भी उत्पत्ति हो सकती है। विशेष रूप से तब जब गौण उद्योगिक क्षेत्र का अपने स्वयं के सम्बद्ध उद्योगों के साथ उदय होता है जिसमें प्रादेशिक आर्थिक विभिन्नता पायी जाती है।

चित्र संख्या – 11.3

चित्र 11.3 विकास ध्रुव का सीमावर्ती प्रवाह (जीन पॉल रोड्रिंग के अनुसार)

चित्र 11.3A प्रदर्शित करता है कि सर्वप्रथम किसी अकेले ध्रुव का विकास होता है और इसके आश्रित उद्योग केन्द्र या विकास ध्रुव के आस–पास केन्द्रित होने लगते हैं। विशेषकर रोजगार उपलब्ध होने के कारण बाहरी क्षेत्रों से इस समूह की ओर जनसंख्या का प्रवास हाने लगता है और इस तरह से विकास ध्रुव के समीप औद्योगिक इकाइयों तथा जनसंख्या का समूहन होता है।

चित्र 11.3 B से विदित होता है कि प्रथम या मूल विकास ध्रुव कहा जाता है। गौण विकास ध्रुव के समान होने लगता है।

11.10 विकास ध्रुव सिद्धान्त में बाउडेविले द्वारा संशोधन :–

पेरोक्स ने एक अमूर्त या अदृश्य आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक विकास के नाभिक (केन्द्र) के रूप में विकास ध्रुव की संकल्पना प्रस्तुत किया था। अन्य फ्रॉंसीसी प्रादेशिक अर्थषास्त्री जे0आर0 बाउडेविले ने इसकी व्याख्या औद्योगिक क्षेत्र में विकास केन्द्र के रूप में प्रस्तुत किया। पेरोक्स की अमूर्त संकल्पना को प्रादेषिक प्रकृति तथा विशिष्ट भौगोलिक विषय वस्तु प्रदान करने का श्रेय बाउडेविले को जाता है।

बाउडेविले के कारण ही विकास ध्रुव सिद्धान्त का विशिष्ट औद्योगिक एवं प्रादेशिक महत्व प्राप्त हुआ। इन्होंने अपने 'विकास केन्द्र सिद्धान्त' को 1966 में प्रस्तुत किया। इन्होंने 'विकास ध्रुव' के स्थान पर विकास केन्द्र शब्दावली का प्रयोग किया है। इन्होने अपने सिद्धान्त का आधार भौगोलिक क्षेत्र को बनाया और प्रादेषिक विकास केन्द्र को परिभाषित किया – "यह एक नगरीय क्षेत्र में स्थित वर्तमान उद्योगों का एक सेट होता है जो इसके सम्पूर्ण प्रभाव क्षेत्र में आर्थिक विकास को पुनः प्रेरित करता है।

प्रदेश में वह स्थान जहाँ ये प्रमुख उद्योग स्थापित होते हैं वह इस प्रदेश का पुंज या ध्रुव बन जाता है और इस प्रकार एकत्रीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

बाह्य बचतों तथा एकत्रीकरण के लाभ को आधार बनाते हुये बाउडेविले का मानना है कि विकास केन्द्र को उत्पन्न करने वाले उद्योगों को जो सेट है वह क्षेत्रीय रूप से एकत्र हो सकता है। उन्होनें इस भिन्नतापूर्ण या असंतुलित प्रादेशिक विकास की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो इस प्रकार की क्षेत्रीय योजना से उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार बाउडेविले ने 'विकास ध्रुव' शब्दावली जिसका प्रयोग विभिन्न रूप में आर्थिक क्रियाओं के पूंजीभूत होने के अर्थ में किया जाता है के स्थान पर 'विकास केन्द्र' शब्दावली का प्रयोग कर इसे औद्योगिक परिप्रेक्ष्य में वास्तविकता के करीब लाने का प्रयास किया है और इसकी स्थानिक विशेषताओं तथा विकास प्रक्रिया का तार्किक वर्णन किया है।

11.11 आलोचनात्मक मूल्यांकन :–

1. पेरोक्स के विकास ध्रुव सिद्धान्त का प्रयोग जब विकासशील देशों में करने का प्रयास किया गया तो यह अधिकतर मामलों में अव्यवहारिक सिद्ध हुआ, क्योंकि किसी पिछड़े क्षेत्र में विकास ध्रुव का चयन करके उसके द्वारा संपूर्ण क्षेत्र में विकास को नहीं भरा जा सकता है जबकि अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत प्रादेशिक उपागम ग्रामीण व नगरीय दोनों के आर्थिक विकास में अधिक उपर्युक्त सिद्ध हो सकते हैं।
2. प्रादेशिक विकास पर विकास ध्रुव के प्रभाव के अनेक उदाहरण औद्योगीकृत–नगरीकृत विकसित देशों जैसे सं0रा0अ0, फ्रॉंस, जर्मनी, रूस आदि में पाये जा सकते हैं, किन्तु आर्थिक दृष्टि से पिछडें तथा कृषि प्रधान क्षेत्रों का समुचित आर्थिक विकास ध्रुव के माध्यम से नहीं किया जा सकता।

3. विकास ध्रुव के प्रभाव का ज्वलंत उदाहरण कैलिफोर्निया (सं0रा0 अमेरिका) की सिलिकान घाटी है जहां सूचना प्रौद्योगिकी का विकास 1990 के दशक में अत्यन्त तीव्रता से हुआ। जिसका आर्थिक उत्प्रेरक कैलिफोर्निया तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसके प्रभाव को एशिया के कई देशों में रोजगार में वृद्धि तथा सामाजिक विकास के रूप में की गयी।

4. नये दशकों में आर्थिक अन्तर्क्रिया के अन्तर्गत बृहत प्रदेश सम्मिलित होते हैं, जो मण्डल के अनुसार बन जाते हैं।

5. पेरोक्स के विकास ध्रुव सिद्धान्त के आधार पर अनेक महत्वपूर्ण विकास मॉडल तैयार किये गये हैं जिनका प्रयोग विकासशील विश्व के विभिन्न भागों में विकास की योजना तैयार करने हेतु किया गया है। विकास ध्रुव सिद्धान्त के आधार पर ही फ्रीडमैन ने केन्द्र परिधि सिद्धान्त का हर्शमान ने 'रिसाव सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया है।

11.12 निष्कर्ष :–

पेरोक्स के विकास ध्रुव सिद्धान्त का जो मुख्य विचार है वह इस तथ्य पर आधारित है कि किसी प्रदेष का आर्थिक विकास सभी जगह एक जैसे नहीं होता, बल्कि विकास की शुरूआत एक विशिष्ट बिन्दु या केन्द्र से होता है और वहीं से इसका प्रसार बाहय क्षेत्रों के लिए होता है। पेरोक्स ने विकास ध्रुव की कल्पना अमूर्त या अदृश्य जो कि दिखाई नहीं देता, ऐसे आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत की थी। बाद के व"ाों में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री बाउडेविले सहित अन्य आर्थिक भूगोलवेताओं ने इस सिद्धान्त का प्रयोग अमूर्त आर्थिक क्षेत्र पर ही नहीं बल्कि उसके स्थान पर मूर्त या दृश्य भौगोलिक क्षेत्र के ऊपर किया। आर्थिक विकास के सन्दर्भ में भौगोलिक क्षेत्र के विचार को ऐसे अनेक भूगोलवेताओं और प्रदेश के लिए नियोजन करने वाले विद्वानों ने बहुत ही तत्परता से अपनाया जो प्रादेशिक स्तर पर आर्थिक विकास हो, इस बात में रूचि रखते थे।

प्रादेशिक विकास की योजना हेतु विकास ध्रुव या विकास केन्द्र की संकल्पना को आधार मानकर कुछ उचित अर्थात् जो उपयुक्त लगे उन केन्द्रों की पहचान करके वहां किसी एक या अधिक आधारभूत उद्योगों की स्थापना करना तथा उसके साथ स्थानीय एवं प्रादेशिक अवसंरचना के विकास की सलाह दी जाती है।

अमेरिकीय नियोजन कर्ता एवं अर्थशास्त्री जे0फ्रीडमैन ने विकास ध्रुव की संकल्पना को अलग तरह से प्रयोग करते हुए 1966 में अपने 'केन्द्र परिधि मॉडल' का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने केन्द्र को ऐसे विकास केन्द्र के रूप में स्वीकार किया जहाँ उद्योग सहित सभी महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाओं का संकेन्द्रण दिखाई देता है और बाह्य क्षेत्र या परिधि क्षेत्र को केन्द्र पर संकेन्द्रित आर्थिक क्रियाओं पर आश्रित होना पड़ता है। इस प्रकार विकास ध्रुव की संकल्पना का उपयोग करते हुए अनेक नगर नियोजन प्रादेशिक नियोजन व आर्थिक भूगोलविद ने प्रादेशिक नियोजन के उद्देश्य से अलग–अलग मॉडल प्रस्तुत किए हैं।

11.13 शब्द सूची :–

(1) अपकेन्द्रीय शक्तियाँ (Centrifugal Forces)

(2) अभिकेन्द्रीय शक्तियाँ (Centriretal Forces)

(3) विकास ध्रुव (Growth Pole)

(4) विकास केन्द्र (Growth Center)

(5) उत्प्रेरक (Propulsive)

(6) ध्रुवीकरण (Polarization)

(7) केन्द्र परिधि (Core-Periphery)

(8) सेवा केन्द्र (Service Center)

11.14 परीक्षोपयोगी प्रश्न :–

(1) अमेरिकी अर्थशास्त्री जॉन फ्रीडमैन ने केन्द्र परिधि मॉडल प्रस्तुत किया।

(1) 1945 (2) 1955

(3) 1966 (4) 1981

(2) केन्द्र परिधि मॉडल में प्रौद्योगिक प्रगति और उच्च उत्पादकता का उच्च संकेन्द्रण पाया जाता है–

(1) परिधि (2) केन्द्र

(3) व्यास (4) त्रिज्या

(3) फ्रीडमैन ने 1966 में प्रादेशिक नीति का विश्लेषण करते हुए एक नगर तंत्र में विकास की केन्द्र परिधि अवस्थाओं की व्याख्या की है–

(1) सं0रा0अमेरिका (उ0 अमेरिका) (2) सिडनी

(3) कनाडा (उ0 अमेरिका) (4) वेनेजुएला (द0 अमेरिका)

(4) फ्रैंकोइस पेरोक्स अर्थशास्त्री थे–

(1) अमेरिकन (2) रसियन

(3) फ्राँसीसी (4) जापानी

(5) पेरोक्स ने विकास संबंधी विकास ध्रुव सिद्धांत का प्रतिपादन किया–

(1) 1966 (2) 1955

(3) 1976 (4) 1946

(6) जे0आर0 वाउडेविले ने विकास ध्रुव सिद्धान्त को संशोधित कर विकास केन्द्र सिद्धांत के नाम से प्रकाशित किया।

(1) 1976 (2) 1966

(3) 1954 (4) 1946

(7) अग्र सम्पर्क के प्रभाव से विकास होता है–

(1) मूल उद्योगों (2) आश्रित उद्योगों

(3) स्वतंत्र उद्योगों (4) आधारित उद्योगों

(8) पेरोक्स ने विकास ध्रुव को संज्ञा दी है–

(1) मूर्त या साकार क्षेत्र की (2) पारदर्शी या वृहद क्षेत्र की

(3) अमूर्त या निराकार क्षेत्र की (4) अपारदर्शी या लघु क्षेत्र

11.15 अभ्यास प्रश्न :–

(1) विकास ध्रुव का क्या अर्थ है?

(2) उत्प्रेरक किसे कहते है?

(3) औद्योगिक समूहन किसे कहते है?

(4) नगर तंत्र विकास की चार अवस्थायें कौन–कौन सी है?

(5) अपकेन्द्रीय व अभिकेन्द्रीय 'ाक्ति में क्या अंतर होता है?

11.16 महत्वपूर्ण पुस्तकें / सन्दर्भ :–

1. डॉ0 एस0 डी0 मौर्य – प्रादेशिक नियोजन एवं विकास प्रवालिका पब्लिकेषन, प्रयागराज
2. आर्थिक भूगोल – डॉ0 बी0सी0 जाट पंचषील प्रकाषन जयपुर
3. Resarch Gate – https://www. Researchgate.net. Jan 2017 (पी0डी0एफ0) विकास ध्रुव का विकास सिद्धान्त और वास्तविकता
4. Slide share – Slideshare.net. 3 Aug 2022 What is growth pole Theory.
5. Unique Geography Notes – https://www. Geographynotespdf.com. 7 Aug 2022 विकास केन्द्र और विकास ध्रुव

इकाई 12
नगरीय आंतरिक संरचना के सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

12.0. प्रस्तावना

12.1. उद्‌दे”य

12.2. नगरीय आकारिकी को प्रभावित करने वाले कारक

12.2.1. प्राकृतिक कारक

12.2.2. सांस्कृतिक कारक

12.3. नगरीय आकरिकीय के प्रकार

12.4. नगरीय आकारिकी के विकास की अवस्थायें

12.5. नगरीय आकारिकीय : एतिहासिक विकास

12.5.1. पूर्व औद्योगिक नगर

12.5.2. औपनिवे"िाक नगर

12.5.3. औद्योगिक नगर

12.5.4. समाजवादी नगर

12.5.5. नगर विकास के 'िट् मार्ग

12.6 नगरीय संरचना सिद्धान्त

12.6.1. सकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त

12.6.2. खण्ड सिद्धान्त

12.6.3. बहुनाभिक सिद्धान्त

12.7. नगरीय भूमि उपयोग

12.8. नगरीय भूमि के प्रकार

12.9. भारतीय नगरों की आकारिकी

12.10. सारां"ा

12.11. स्वमूल्यांकन प्र"न एवं आद"ा उत्तर

12.12. सन्दर्भ सूची

12.13. अभ्यास प्र"न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

12.0 प्रस्तावना :–

अंग्रेजी भाषा का 'Morphology' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'Morphe' = form अर्थात् आकार और 'Logos' = Discourse अर्थात् विवरण से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'A Discourse on form' आकार के बारे में विवरण। नगरीय आकारिकी के अन्तर्गत अन्तः नगरीय तंत्र में भीतरी स्थानों के कार्यात्मक कार्यों के विभिन्नता का अध्ययन किया जाता है। डिकिन्सन महोदय ने कहा है कि नगरीय आकारिकी का सम्बन्ध उसके बसाव क्षेत्र के नियोजन एवं

विन्यास से होता है जिसका आकलन उसके उद्भव, विकास एवं कार्यों के आधार पर किया जाता है। मर्फी के अनुसार आकारिकीय का अध्ययन वर्तमान नगर के प्रतिरूप और उसके स्वरूप के विकास पर निर्भर करता है। स्मेल्स के अनुसार आकारिकी नगरीय क्षेत्रों की प्रकृति, उनके कार्य एवं स्वरूप, उनके सापेक्षिक विन्यास तथा उनके सामाजिक अन्योन्याश्रय का विवरण है जिसे एक नगरीय क्षेत्र के भौगोलिक वि"लेषण के रूप में जाना जाता है। संक्षेप में नगरीय आकारिकी के अन्तर्गत नगर के भौतिक विन्यास और इसकी आन्तरिक कार्यात्मक संरचना का अध्ययन किया जाता है।

12.1. उद्देश्य – :

यह अधिवास भूगोल की 12वीं इकाई है। इसमें आप यह समझेगें कि –

- नगर की कार्यात्मक आकरिकी में मानव द्वारा नगरीय क्षेत्र का प्रयोग कैसे किया जाता है।
- नगरों के आन्तरिक संरचना का प्रसरण भूमि उपयोग के आधार पर समझ सकेगें।
- नगरीय आकरिकी के विकास की वैचारिक विविधता को समझ सकेगें।
- नगरीय आकरिकी के विकास की वैचारिक विविधता को समझेगें।
- नगरीय संरचना के सिद्धान्तों के उपयोग को जान सकेगें।

नगर के भौतिक विन्यास का अभिप्राय नगरीय संचरना से है जिसमें सड़कों एवं गलियों के प्रतिरूप, इमारतों के समूह, अलग–अलग मकानों और उनके प्रकार्यो, उनके घनत्व एवं व्यवस्था आदि को सम्मिलित करते हैं जिसे नगर का 'आन्तरिक भूगोल' भी कहा जा सकता हैं। इसी तरह नगर की कार्यात्मक आकारिकी नगरीय क्षेत्र के मानव द्वारा किये गये कार्यों के अध्ययन का वि"लेषण करते हैं। नगर के आन्तरिक भौतिक स्वरूप को नगरीय भू–दृश्य भी कहा जाता है जो नगरीय आकारिकी का पर्यायवाची है।

12.2. नगरीय आकारिकी को प्रभावित करने वाले कारक :–

नगरीय आकारिकी को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते है –

12.2.1. प्राकृतिक कारक :–

इसमें बसाव स्थिति, बसाव स्थान आदि के आधार पर नगरीय आकारिकी का अध्ययन किया जाता है। जैसे, एक मैदानी भाग में स्थित नगर का विकास चारों ओर होता है जबकि तटीय क्षेत्र में स्थित नगर का विकास सागर की ओर बाधित रहता है। इन प्राकृतिक कारणों में उच्चावच, जलवायु, अपवाह प्रणाली, वनस्पति, मृदा प्रकार आदि को सम्मिलित करते हैं।

12.2.2. सांस्कृतिक कारक :–

इसमें नगर के निवासियों की धार्मिक मान्यताओं, रीति, रिवाजों, प्रौद्योगिक विकास, शैक्षणिक स्तर आदि को सम्मिलित करते हैं, जो नगर की आन्तरिक संरचना और विन्यास को विभिन्न तरीको से प्रभावित करते हैं। इसके अलावा यातायात और संचार तंत्र, औद्योगिक विकास तथा राजनीतिक–सामाजिक संगठन आदि का भी नगरीय आकारिकी में महत्वपूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है। अनेक प्राचीन नगरों का फैलाव किसी मन्दिर, मस्जिद, या दुर्ग के चातुर्दिक होता है। जैसे, मदुराई नगर मोनाक्षी मंदिर एवं तिरूपति बाला जी के मन्दिरों को ध्यान में रखकर बसाये गये हैं।

12.3. नगरीय आकारिकी के प्रकार :–

नियोजन के आधार पर नगरीय आकारिकी दो उपवर्गों में बॉटा जा सकता है–

1. **अनियमित आकारिकी** :– इसमें अधिकां"ातः गैर नियोजित नगरों की आकारिकी को अध्ययन किया जाता है। इनका विकास अनियमित, मिश्रित एवं मलिन बस्तियों एवं जीर्ण"ीर्ण इमारतों आदि के रूप में होता है।

2. **नियोजित आकारिकी** :– इसमें नगर का बसाव नि"िचत योजना के अन्तर्गत है। भूमि उपयोग में एकरूपता पाई जाती है। चण्डीगढ़, नई दिल्ली, भुवने"वर, वाशिंगटन, कैनबरा आदि नियोजित आकारिकी के अनुपम उदाहरण हैं

12.4 नगरीय आकारिकी के विकास की अवस्थायें :–

नगरीय आकारिकी के विकास की निम्न तीन अवस्थायें पाई जाती हैं –

1. **ऊति– उत्पत्ति)** – यह नगरीय आकारिकी के विकास की प्रारम्भिक अवस्था के रूप में जाना जाता है जिसमें उसके नाभिक की उत्पत्ति और विकास की क्रिया सम्पन्न होती है।
2. **प्रतिरूपोत्पत्ति** – इस अवस्था के अन्तर्गत नगरीय आकारिकी का स्वरूप उभकर सामने आ जाता हैं। इसमें नगर की गलियों, सड़कों आदि का विकास होता है तथा विभिन्न स्थानों पर नगरीय कार्यो के फैलाव से कई नाभिकों की उत्पत्ति होने लगती है।
5. **आकारोत्पत्ति -** इसमें नगरीय आकारिकी विकसित होकर अपने पूर्ण स्वरूप प्राप्त कर लेती है। नीचे नगरीय आकारिकी के विकास की इन तीनों अवस्थाओं को प्रदर्शित किया गया है।

1. नगर का नाभिक केन्द्र, 2. पुरानी सड़कों के सहारे नये उपनगरीय क्षेत्र, एवं 3. नव विकसित रिहाइ"ी क्षेत्र।

चार्ल्स सी0 कोल्बी ने माना है कि नगरीय आकारिकी मुख्यतः निम्न तीन शक्तियों प्रमुख शक्तियों के कारण होती है – (अ) केन्द्रोमुखी शॅाक्तियाँ, (ब) अपकेन्द्री शक्तियों एवं (स) स्थानिक विभेदीकरण शक्तियाँ। इसी प्रकार आर0ई0 डिकिन्सन ने नगरीय कार्यात्मक आकारिकी को प्रभावित करने में सात शक्तियों को उत्तरदायी माना है –

1. **केन्द्रीकरण** – केन्द्रोमुखी शक्ति के तनाव के कारण नगर में व्यापार आदि कार्यो और जनसंख्या बसाव से नगर के केन्द्रीय भाग में सर्वाधिक सकेन्द्रण पाया जाता है। यह नगर के उद्‌भव और विकास में कारगर साबित होती है।
2. **पुज्जीकरण** – नगर के आन्तरिक भाग में व्यापार, परिवहन, तथा उद्योग, प्र"ाासन एवं रिहाइ"ी आदि कार्यो की अधिकता के कारण इस प्रवृत्ति का परिणाम होता।
3. **विकेन्द्रीकरण** – नगर के केन्द्रीय भाग में स्थानों की कमी होती है, मूल्यों में वृद्धि के कारण बहुत से नगरीय क्षेत्र नगर के बाहरी भागों में विकसित होने लगते हैं। शान्त एवं स्वस्थ जीवन के लिए इन्हीं भागों में नए रिहाइ"ी मकान भी बनने लगते हैं। इससे उपनगरीय क्षेत्रों का विकास होने लगता है।
4. **आसान्द्रीकरण** – नगर के मध्यवर्ती भाग से बाह्‌य भाग की ओर कार्यो के स्थानान्तरण को असान्द्रीकरण कहा जाता है। इसको विकास में परिवहन साधनों की प्रमुख भूमिका होती है। यह अपकेन्द्रीय शक्तियों के कारण होता है।
5. **पुनेन्द्रींकरण** – नगर के बाहरी भाग में कार्यों का फिर से जमघट प्रारम्भ होने लगता है जिसे पुर्नकेन्द्रीकरण कहा जाता है। इन भागों में भी रिहाइ"ी मकानों के साथ औद्योगिक संस्थान, व्यापारिक केन्द्रों का जमाव प्रारम्भ होने लगता है।
6. **रिहाइशी पृथक्करण** – इसके तहत नगर में सामाजिक और आर्थिक असमानता के कारण विभिन्न वर्गों के अलग–अलग रिहाइ"ी का प्रादुर्भाव होने लगता है।
7. **प्रभाविता, हस्तक्षेप अनुक्रमण** – नगर के विकास के दौरान कालान्तर में इसके क्षेत्रीय भूमि उपयोग में परिवर्तन आने लागता है जिससे रिहाइ"ी क्षेत्र व्यापारिक और औद्योगिक कार्यो में बदलने लगता है।

12.5. नगरीय आकारिकी : ऐतिहासिक विकास :–

नगर कभी स्थिर नहीं होते हैं। उनके विकास की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है क्योंकि उनके विकास पर प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक–रानजीतिक तंत्र के परिवर्तनों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसमें उनकी संरचना

प्रतिरूप एवं संगठन भी प्रभावित होते है। अ"ोक के0 दत्त (2001) ने नगरीय संरचना के ऐतिहासिक विकास को निम्न 5 खण्डों में विभाजित किया है।

12.5.1. पूर्व औद्योगिक नगर :–

स्जोबर्ग (1960) ने पूर्व औद्योगिक नगरों की पाँच प्रमुख वि"ोषताओं का उल्लेख किया है।

1. उनके चारों तरफ सुरक्षात्मक दृष्टि दीवार एवं खाई बनी होती थी। नगर के भीतर भी विभिन्न समुदायों को अलग करने वाली दीवालें होती थी।
2. इन नगरों की गलियाँ बहुत सकरी एवं टेढ़ी–मेढ़ी होती थीं जिनसे होकर प"ाुओं और आदमियों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियाँ गुजरती थी।
3. नगर के केन्द्र में मुख्य बाजार के साथ सरकारी एवं धार्मिक इमारतें स्थित होती थी। नगर के सम्पन्न एवं सम्भ्रान्त लोग इसी क्षेत्र में निवास करते थे।
4. गरीब लोग नगर के बाह्य भाग में छोटे एक कमरे के झोपड़ीनुमा आवसों में रहते थे।
5. नगरीय भूमि उपयोग में श्रेणी पदस्थिति, नृजातीय एवं पे"ोवर वि"ोषताओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

1. दक्षिणी एशियाई नगर :–

यद्यपि स्जोबर्ग की पूर्व–औद्योगिक नगरों को उक्त वि"ोषतायें पूरे विश्व के लिए उपयोगी बताया हैं परन्तु ये यूरोप के अधिक प्रयोज्य हैं। ए"ायाई नगरों में सभी नगरीय क्षेत्रों, दीवाल एवं खाई नहीं मिलती है। इसी तरह भारत में अलावा नगर भूमि उपयोग पर जाति एवं धर्म का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता था।

अ"ोक दत्त ने दक्षिण ए"ाया के इन पारंपरिक नगरों का एक मॉडल प्रस्तुत किया है। नगर की प्रथम मेखला नगरीय केन्द्र के रूप में सड़कों के मिलन बिन्दु (चौक) पर स्थित होती थी जिसमें व्यापारिक क्रियाओं की प्रधानता थी। यहाँ की दुकानों में मानव की आव"कताओं से संबंधित खाद्य, वस्त्र एवं आवास संबंधी वस्तुओं की बिक्री होती थी। जल्द खराब वाली वस्तुओं का विक्रय खुले बाजार के रूप में नगर के विभिन्न क्षेत्रों में होता था। यहाँ होटल, सराय और धर्म"ााला, की व्यवस्था थी। सिनेमा हाल, बैंक, मदिरालय इत्यादि भी इस क्षेत्र में पाये जाते थे। इसके चतुर्दिक स्थित द्वितीय मेखला में सम्भांत एवं गरीब दोनों के आवास स्थित थे। इसके विपरीत तृतीय मेखला में मुख्यतः निम्न वर्गो के लोगों आवास पाए जाते थे। स्वतान्त्योत्तर काल में इन पारंपरिक नगरों का तेजी से विकास हुआ। कई नगरों में अर्द्ध नियोजित रूप में तृतीय मेखला के बावजूद सिविल लाइन जैसे क्षेत्रों का विकास किया गया जहाँ यूरोपीय आवासों के अतिरिक्त प्र"ाासनिक कार्यालयों, तहसील पुलिस स्टे"ान, स्कूलों, क्लब, पुस्तकालयों एवं क्रीडास्थलों का विकास किया गया। नव धनाढ्यों ने खुली और अधिक स्वास्थ्यकर क्षेत्र में आवासों का निर्माण किया। स्वतंत्रता के बाद चन्द्राकार रूप में पारंपरिक नगरों के आकार में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई जिसके तहत तृतीय मेखला से बाहर नियोजित और कम नियोजित क्षेत्रों में मध्यम और उच्च वर्ग के लोग अपने आवास का निर्माण किया।

2. चीनी पारम्परिक नगर :–

चीन के पारम्परिक नगरों में दीवाल होती थी एवं उनमें भूमि उपयोग एवं वर्ग विभेदी कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता था। सन् 1949 की साम्यवादी क्रान्ति के उपरान्त पारम्परिक नगर से बाहर औद्योगिक एवं आवासीय फैलाव हुआ जिनमें उच्च आवासीय एपार्टमेण्ट बनाये गये।

चीन के प्राचीन नगर आयताकार की तरह होते थे, और उनके चातुर्दिक ओर दीवाल बनी होती थी। इसके बीच में मानवीय जमघट होता था जिसकी एक तरफ सामान्य लोगों के आवास एवं दूसरी तरफ सम्भ्रान्त लोगों के आवास एवं सरकारी कार्यालय , मनोरंजन गृह हुआ करते थे। सड़कें चौड़ी और सीधी होती थी। डान (Don 1989) के अनुसार चीन का राजधानी नगर आयताकार रूप में 9 वर्गो से बना था और इसके चतुर्दिक चहारदीवारी थी। ये सड़कें चहारदीवारी के सहारे भीतर एवं बाहर चौड़ी थीं जिससे सवारी गाड़ियों का निरन्तर आवागमन होता रहे। चीन के नगरों की यह मुख्य वि"ोषता बीसवीं सदीं के आरम्भिक काल तक जारी रही। आज भी चीन के कई पुराने नगरों में ये वि"ोषतायें पाई जाती हैं। सन् 1949 की क्रान्ति के बाद चहारदीवारी नहीं रही परन्तु नगर की वि"ोषतायें

बराबर बनी रही। चहारदीवारी से बाहर ऊँचे आवासीय एपार्टमेण्ट बने। पुराने आवासीय क्षेत्र भूमिगत सीवर एवं पाइप द्वारा जलापूर्ति न होने के कारण मलिन क्षेत्रों में परिणत हो गये। लेकिन नगर–केन्द्र और बाजार की समीपता के कारण इनमें भीड़–भाड़ कम न हुई। इनमें से कई क्षेत्रों का पुनः निर्माण किया जा रहा है जिसमें स्वस्थ जीवन के लिए सभी सुविधाएँ विकसित की जा रही हैं। उद्योग इन नगरों में बहार की ओर गये हैं। चीन के पारंपरिक नगरों को एक सुनियोजित योजना के तहत बसाया गया था। इनमें औपनिवे"ाक काल के दौरान पा"चात् दे"ाों के विकास के रूप में प्रतिस्थापित किये गये हैं।

12.5.2. औपनिवेशिक नगर :–

औपनिवे"ाक नगरों की शुरूआत नये विश्व खोजों एवं अन्वेषण के उपरान्त तदुपरान्त स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन, फ्रांस एवं बेल्जियम द्वारा उपनिवे"ाकों के निर्माण के साथ हुई। इनके बसाव दो तरह के थे। जहाँ संयुक्त राज्य, कनाडा, लैटिन अमेरिका, आस्ट्रेलिया एवं दक्षिण अफ्रीका में इन्होंने मूल निवासियों की विस्थापित कर अपने दे"ा के नगरों की भाँति नए नगरों को बसाया वहीं दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व ए"ाया, अफ्रीका, मध्य पूर्व, लैटिन अमेरिका के कुछ दे"ाों एव कैरिबयाई द्वीपों में इन्होंने विभिन्न दे"ाों के पारम्परिक नगरों के समीप सिविल लाइन सरीखी अलग बस्तियों का निर्माण किया। **दक्षिण एशियाई औपनिवेशिक नगर** :– दक्षिण ए"ाया के उपनिवे"ाक नगरों के मुख्य उदाहरण के रूप में कोलकाता, चेन्नई, मुम्बई एवं कोलम्बों जैसे नगरों का उल्लेख किया जा सकता है। ये सभी नगर सागर पत्तन नगर हैं एवं इनमें मुख्य वि"ाषताएँ इस प्रकार पाई जाती हैं (दत्त, 1995)। इनका एक मॉडल में प्रस्तुत किया गया है। 1. अपने–अपने मातृ दे"ा में व्यापार एवं सैन्य बल के वृद्धि के लिए बन्दरगाह की सुविधाएँ प्रारम्भ की गयी जिनसे इन नगरों की शुरूआत हुई। 2. एक किले का निर्माण किया गया जिसके चारों ओर ने बाउण्ड्री बनाई गयी थी एवं जिसमें सैनिकों और अधिकारियों के आवास निर्मित थे। किले में आवासी भवनों के अलावा एक गिरिजाघर और कारखाने भी स्थित थे जहाँ से आयात निर्यात किया जाता था। 5. किले के चारों ओर एक खुला मैदान पाया जाता था जिसका उपयोग सैन्य अभ्यास के लिए किया जाता था। 4. किले के क्षेत्र से बाहर स्थित भीड़–भाड़, अस्वास्थ्यकर एवं अनियोजित बस्ती हुआ करती थी जिसे कोनेटिव या ब्लैक टाउन कहा जाता था। 5. किला और दे"ाी बस्ती के पास केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (CBD) का विकास हुआ जिसमें व्यापारियों के आवासों के अलावा मुख्य डाकघर, कार्यालय, उच्च न्यायालय, प्र"ाासनिक कार्यालय, रेल कार्यालय, गिरिजाघर, बैंक स्थित थे। यूरोपीय लोग इसी के नजदीक निवास करते थे। 6. यूरोपीय बस्ती दे"ाी बस्ती से पृथक सुनियोजित रूप में सुदृढ़ भवनों एवं चौड़ी सड़कों से युक्त थी जिसमें क्लब, गिरिजाघर, रेस कोर्स, क्रीड़ा स्थल, पानी एवं कब्रगाह की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। 7. यूरोप में बिजली, भूमिगत सीवेज, जल शोधन आदि की सुविधाओं के शुरू होने से इनका प्रयोग यूरोपीय बस्ती में भी हुआ जबकि दे"ाी बस्ती में केवल सम्पन्न वर्ग की ही इन सुविधाओं तक पहुँच थी। 8. यूरोपीय एवं दे"ा बस्तियों के मध्य ऐंग्लो इंडियन की कालोनी स्थित थी, जो इसाई थे परन्तु मूल निवासियों में शादी किए थे। ये न तो यूरोपीय एवं न ही दक्षिणी ए"ायाई लोगों के भाग माने जाते थे, 9. उपनिवे"ाक नगर में वृद्धि के साथ जमीन की कमी होने लगी जिससे सम्पन्न दे"ाी लोग एवं गोरे पुरानी बस्ती से उपनगर की ओर प्रसरण करने लगे। इसं नगर सुधारात्मक संघ का वि"ाष सहयोग रहा। 5. गोरों के बसाव के कारण प्रारंभ से ही नगर केन्द्र में घनत्व कम था क्योंकि वे बड़े मकानों में रहते थे। बाद में इस क्षेत्र पर CBD के विस्तार से घनत्व में और भी कमी आई। इसके विपरीत दे"ाी बस्ती वाले भागों में जनसंख्या घनत्व अधिक था। इस प्रकार इन उपनिवे"ाक नगरों के केन्द्र में घनत्व कम, तदुपरान्त अधिक एवं नगर के किनारे के भागों में घटता हुआ पाया जाता था।

12.5.3 औद्योगिक नगर :–

औद्योगिक नगर उस औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम हैं जिसकी शुरूआत ब्रिटेन से मानी जाती एवं जिसका विस्तार अठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में प"िचमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में हुआ। इनमें औद्योगिक स्थल नगर के क्रोड क्षेत्र अथवा बन्दरगाह एवं रेल स्टे"ान के नजदीक होते थे। परिणामस्वरूप जनसंख्या का घनत्व अधिक होता था। इनमें गरीब कामगर अनियोजित एवं अस्वास्थ्यकर बस्तियों में और सम्पन्न व्यापारी, उद्योगपति एवं व्यवसायी सुख–सुविधाओं के परिपूर्ण बड़े–बड़े घरों में रहते थे। इस प्रकार इन नगरों में आय की असमानता थी। जापान में औद्योगिक क्रान्ति के शुरू हो जाने के कारण वहाँ के नगरों में इसी प्रकार की वि"ाषता दिखाई पड़ती थी। ए"ाया के अन्य चार नगरों–सियोल, हांगकांग, सिंगापुर एवं टाइपेई – की संरचना पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इन औद्योगिक नगरों में बिजली, भूमिगत सीवर, रेल, बस, कार, टेलीफान, रेडियो, टेलीविजन, बैंक जैसे

नवाचारों की सबसे पहले शुरूआत हुई। बर्गेस (1925), हायट (1959), हैरिस एवं उलमैन (1945) ने इन औद्योगिक नगरों की आंतरिक संरचना के अध्ययन हेतु कई मॉडल प्रस्तुत किए हैं।

12.5.4. समाजवादी नगर :–

सन् 19115 ई0 में रूसी क्रान्ति के साथ विश्व में एक नवीन राजनीतिक व्यवस्था की शुरूआत मानी जाती है जिसका प्रभाव नगर की आन्तरिक संरचना पर भी पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप, चीन, उत्तरी कोरिया, वियतनाम, लाओस और क्यूबा साम्यवादी प्रभाव में आ गये। इन दे"ाों में समाजवादी विचारधारा के आधार पर नगरीय नियोजन को प्रारम्भ किया गया जिसके कारण केन्द्र में खुदरा व्यापार एवं व्यापार प्रबन्धन का प्रभाव कम होने लगा। इस क्षेत्र को एक नये केन्द्रीय सांस्कृतिक क्षेत्र के नाम से जाना गया क्योंकि सभी लोगों को आवासीय व्यवस्थां उपलब्ध कराना था। अतः नगर केन्द्र से ही बाहर की ओर फैले तथा ऊँचे–ऊँचे अपार्टमेंट बनाये जाने लगे। परन्तु चीन में नगर –केन्द्र की मौलिक संरचना वैसे की वैसी रही। यूरोप में भी नगर केन्द्र में प्र"ाासनिक कार्यों को महत्वपूर्ण माना गया एवं यहाँ की पुरानी इमारतों में प्रमुख सुविधाओं में सुधार कर इनका जीर्णोद्वार कराया गया। चीन की अपेक्षा पूर्वी यूरोप के इन सभी नगरों की अर्थव्यवस्था उच्च कोटि और आवासीय सुविधायें बहुत अच्छी थी परन्तु प"िचम यूरोप के प"चात औद्योगिक नगरों की समृद्धि की अपेक्षा ये काफी पीछे थे।

12.5.5. नगर विकास के षट् माग :–

नगरीय क्रियाओं पर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिससे नगर के बसाव प्रतिरूप एवं संरचना में अमूल चूल परिवर्तन होता रहा है। इसलिए यहाँ पर संबंधित नगर विकास के 'ाट् मार्गो का जिक्र किया जा रहा हैः– 1. पा"चात् विकास मार्ग 2. परा स्वातंन्त्र्य असाम्यवादी 5. परा स्वातंन्त्र्य साम्यवादी मार्ग 4. पूर्व यूरोपीय मार्ग 5. तेल–सम्पन्न मध्य पूर्व मार्ग 6. परास्वातंन्त्र्य उच्च विकास मार्ग

5.6. नगरीय संरचना के सिद्धान्त :–

इन सिद्धान्तों को नगरीय विकास के सिद्धान्त अथवा नगरीय भूमि उपयोग सिद्धान्त भी कहा जाता है। ये किसी आद"ा नगर के आन्तरिक विन्यास का सामान्यीकृत रूप प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में इनके द्वारा नगर के विभिन्न खण्डों की एक–दूसरे के संदर्भ में स्थिति की जानकारी मिलती है जिसमें भूमि के मूल्य आदि कारकों का स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। इससे नगर की प्रादेशिक संरचना का बोध होता है, जो परस्पर आसन्न नगरीय प्रदे"ाों या पेटियों से बनी होती है। यद्यपि प्रत्येक नगर की अनूठी संरचना होती है, परन्तु विभिन्न नगरों के अध्ययन से उनमें सामान्यीकृत मेखलाओं की पहचान की जा सकती है जैसे, व्यापारिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, रिहाइ"ाी क्षेत्र इत्यादि। यहाँ नगर की संरचना से सम्बन्धित तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा रहा है। 9.

12.6.1. संकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त :–

इसका प्रतिपादन अमेरिकी समाज"ाास्त्री बर्गेस ने 1925 (Proceedings of the American Sociological Scoiety में किया जिसके विस्तृत विवरण उनके द्वारा लिखे गये 'The Growth of the City, (1925) एवं 'Urban Areas' (1929) नामक लेखों में पाप्त किये गये। यह सिद्धान्त उनके अमेरिका के "िाकागो नगर के अध्ययन पर केन्द्रित था। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी नगर का केन्द्र से बहार की ओर फैलाव अरीय रूप में 5 संकेन्द्रीय वलयों के रूप में पाया जाता है। नगर के विकास के साथ–साथ ये पेटियाँ बाहर की ओर खिसकती जाती हैं। इस प्रकार केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र द्वितीय मेखला के क्षेत्र पर, द्वितीय तीसरी पर और पंचम नगर के समीप के ग्रामीण क्षेत्रों पर अतिक्रमण करती जाती है। बर्गेस के अनुसार प्रत्येक पेटी में एक वि"िाष्ट प्रकार का भूमि उपयोग पाया जाता है। इन पेटियों का विवरण निम्नवत है :–

1. **प्रथम पेटी– केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र** :– यह पेटी नगर के केन्द्र या मध्य में स्थित होती है, जिसमें व्यापारिक क्रियाओं, यातायात आदि का सर्वाधिक घनत्व पाया जाता है। दुकानें, व्यापारिक प्रतिष्ठान, कार्यालय, बैंक थियेटर, होटल आदि इसी पेटी में स्थित होते हें। जो नगर जितना ही बड़ा होता है उसका केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत होता है। इस भाग में भूमि का मूल्य सर्वाधिक होता है तथा स्थान के अभाव में यहाँ बहुमंजिली इमारतों की प्रधानता पाई जाती है। सड़कों और यातायात मार्गों के अभिसरण के कारण दिन में इस क्षेत्र में सर्वाधिक भीड़–भाड़, क्रय–विक्रय एवं कोलाहल देखा जाता है, परन्तु रात्रि के समय यह क्षेत्र शान्त एवं निर्जन सा दिखलाई पड़ता है। केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र को "िाकागो में 'Loop' न्यूयार्क में 'Uptown and down

town' तथा पिट्सवर्ग में 'Golden temple' कहते हैं। बर्गेस ने इसके दो उप भाग किये हैः– (अ) सबसे आन्तरिक भाग में स्थित फुटकर व्यापार क्षेत्र एवं (ब) थोक व्यापार क्षेत्र

2. **द्वितीय पेटी–संक्रमण क्षेत्र** :– यह केन्द्रीय व्यापार भाग के चतुर्दिक स्थित आवासीय ह्रास का क्षेत्र होता है, जिसमें हल्के उद्योगों एवं सी.बी.डी. के व्यापारिक प्रतिष्ठानों का अतिक्रमण का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस भाग में मकान छोटे–छोटे कमरों वाले एवं टूटे तथा फूटे अर्थात जीर्ण"ाीर्ण अवस्था में पाये जाते हैं। नगर की मलिन बस्तियाँ (Slums) इसी भाग में स्थित होती हैं जिससे यह क्षेत्र निर्धनता, अवक्रमण, अपराध एवं वे"यावृत्ति आदि से प्रभावित होता है। नगर के आस पास के ग्रामीण क्षेत्रों के लोग सबसे पहले इसी भाग में रहना पसन्द करते हैं।

3. **तृतीय पेटी–स्वतंत्र कर्मियों का आवासीय क्षेत्र**– इस पेटी में संक्रमण पेटी के चतुर्दिक नगर के उद्योगों/कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का आवासीय क्षेत्र मिलता है। यहाँ के मकान मुख्यतः पुराने एवं दो मंजिले होते हैं।, जिसमें नीचे के तल में मकान मालिक और ऊपर किरायेदार रहते हैं। यहाँ मुख्यतः द्वितीय पेटी में रहने वाले लोगों की दूसरी पीढ़ी के अधिकां"ा लोगों की प्रधानता पाई जाती है।

4. **चतुर्थ पेटी– श्रेश्ठतर आवासी क्षेत्र**– इस भाग में एक परिवार वाले तथा सुदृढ़ किस्म के आवास मिलते हैं, जिसमें मुख्यतः मध्यम वर्गीय लोग रहा करते हैं। इनमें लघु व्यापारिक प्रतिष्ठानों के मालिक, उद्यमी, कार्यालयों एवं दुकानों में कार्य करने वाले लोगों को सम्मिलित हैं। यहाँ के मकान, खुले आवासीय परिसर में होते हैं, जिनमें कहीं आवासीय होटल आदि भी पाये जाते हैं।

5. **पंचम पेटी–अभिगमक क्षेत्र**– यह नगर का सबसे बर्हिवती वाला क्षेत्र होता है जिसे नगरीय उपान्त भी कहा जाता है। यह नगर के सतत् निर्माण क्षेत्र से स्थान, हरित मेखला आदि द्वारा अलग किया जाता है। इसमें नगर के केन्द्रीय भाग में व्यापार क्षेत्र आदि भागों में कार्य करने वाले लोग शाम को लौटकर आते हैं, रात्रि विश्राम करते हैं। इसीलिए इसे शॅायनागार नगर भी कहते हैं। इसका सर्वाधिक विस्तार परिवहन मार्गो के सहारे देखा जाता है। यहाँ उच्च श्रेणी के आवासीय मकान भी मिलते हैं। यह नगर और ग्राम का मिलन क्षेत्र होता है जिसके सहारे नगर का प्रसरण होता रहता है।

आलोचना :–

बर्गेस के सिद्धान्त को तीव्र आलोचना भी हुई हैं। इसके एक प्रमुख आलोचक डैवी हैं जिन्होंने न्यू हैवेन (New Haven) के भूमि उपयोग के अध्ययन के दौरान इस सिद्धान्त को पूर्णतः प्रतिकूल पाया है। उनके अनुसार नगरों में सामान्यतया भूमि उपयोग प्रतिरूप देखे जाते हैं, जो बर्गेस के सिद्धान्त से नहीं मेल खाते हैं– (क) केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (C.B.D.) अनियमित आकार का प्रायः गोलाकार न होकर वर्गाकार या आयताकार रूप में अधिक पाया जाता है। (ख) व्यापारिक भूमि उपयोग नगर केन्द्र (CBD) से बाहर की ओर अरीय सड़कों के किनारे विस्तृत पाया जाता है जिसके उपकेन्द्र भी बन जाते हैं। (ग) उद्योग धन्धों की स्थिति यातायात मार्गो के सहारे पाई जाती है। (घ) औद्योगिक एवं यातायात क्षेत्रों के निकट निम्न श्रेणी के आवास पाये जाते हैं। (ड़) उच्च एवं मध्यम श्रेणी के आवास नगर के किसी भी भाग में पाये जा सकते हैं। इस प्रकार वाल्टर फायरे के अनुसार किसी नगर में आय वर्गो का वितरण, जो भूमि की कीमत द्वारा जाना जा सकता है, एक संकेन्द्रीय वलय क्षेत्र में एक समान नहीं मिलता है। प्रसिद्ध नगरीय भूगोलवेत्ता आर0ई0 डिकिन्सन ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए मत व्यक्त किया है कि पेरिस आदि नगरों में वृत्ताकार प्रतिरूप के बजाय तारा प्रतिरूप अधिक प्रभाव"ााली देखा जाता है। डिब्लिज महोदय ने वास्तविक परिस्थितियों से तुलना करने पर बर्गेस के सिद्धान्त में तीन कमियों का उल्लेख किया है। (अ) इसमें भारी उद्योगों की स्थिति का जिक्र नहीं किया गया हैं, जो वलय के रूप में न पाये जाकर परिवहन मार्गो के सहारे संकेन्द्रित होते हैं। (ब) कतिपय नगरीय सुविधाओं–रेल–सड़क वार्ड, बन्दरगाह सुविधायें, भारी उद्योगों एवं यहाँ तक कि तीव्र सांस्कृतिक विचारों से प्रभावित कुछ आवासीय क्षेत्रों में गति"ाीलता नहीं देखी जाती हैं, तथा (स) परिवहन मार्ग नगरों के संकेन्द्रीय संरचना में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत क्विन हैगेट प्रेड प्रभूति विद्वानों ने बर्गेस के मॉडल को उपयुक्त माना है।

12.6.2. खण्ड सिद्धान्त :–

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी विद्वान होमर हायट ने 1959 में 132 अमेरिकी नगरों की संरचना के अध्ययन के आधार पर किया यह सिद्धान्त हर्ड (R.M. Hurd) के अक्षीय वृद्धि (Axial Growth) की विचार धारा पर

आधारित है। हायट के अनुसार नगरीय भूमि उपयोग का प्रतिरूप मुख्यतः नगर केन्द्र से विकसित यातायात मार्गों के जाल पर निर्भर करता है जिससे नगरीय भूमि और किराया के खण्डीय प्रतिरूप का निर्माण होता है। इसी के कारण नगर की आकृति तारानुमा (Star shaped) बन जाती है। इस सिद्धान्त में समुचे नगर को एक वृत्त के रूप में मान लिया जाता है तथा उसके विभिन्न क्षेत्रों को खण्ड के नाम से सम्बोधित किया गया है। हायट के अनुसार समान प्रकार के भूमि उपयोग नगर–केन्द्र के नजदीक जन्म लेते हैं जो नगर के विकास के साथ–साथ बाहय सीमा की ओर उसी खण्ड की दि"ाा में प्रसारित होते जाते हैं। यह विकास आवागमन के मार्गो के सहारे नगर के केन्द्र से बाहर स्फान के रूप में होता है। हायट के अनुसार यदि नगर का कोई खण्ड निम्न किराये के आवासीय क्षेत्र के रूप में विकसित होता है तो नगरीय वृद्धि के दौरान खण्ड के विस्तार के साथ–साथ यह वि"ोषता काफी दूर तक फैलती जाती है। इसी प्रकार यदि एक उच्च किराये के क्षेत्र की स्थिति नगर के दूसरे खण्ड में पाई जाती हैं, तो उसका विस्तार या विकास भी उसी खण्ड में होगा तथा नये बेहतर आवासीय क्षेत्र बहारी भाग में विकसित होने लगेंगे। इस तरह ये क्षेत्र स्थिर न होकर परिवर्तन"ाील होते रहते हैं, जिससे उच्च श्रेणी के आवासीय क्षेत्र अपने स्वरूप को निरंतर सुधार करते हैं। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र नदी घाटियों में जलमार्गो या रेलमार्गों के सहारे पनपने लगते हैं। हायट का विचार है कि अमेरिकी नगर परिवहन मार्ग के सहारे विभिन्न दि"ााओं मे फैल कर धीरे–धीरे एक अष्टभुज का रूप धारण कर लेते हैं। हायट का सिद्धान्त मुख्यतः आवासीय भूमि–उपयोगों की ही व्याख्या करता है। यद्यपि इसमें यातायात के महत्व पर वि"ोष बल दिया गया है। इसके अनुसार नगर के आवासीय क्षेत्र का विकास तीन तरह से– लम्बवत्, खाली क्षेत्रों के अधिवासन एवं अपकेन्द्रीय विस्तार–सम्पन्न होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार नगर में पांच प्रकार के खण्ड मिलते हैं। 1. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र 2. थोक हल्के वस्तु निर्माण उद्योग 3. निम्न वर्गीय आवास–क्षेत्र 4. मध्य वर्गीय आवास–क्षेत्र 5. उच्च वर्गीय आवास–क्षेत्र। आलोचना :– बर्गेस की अपेक्षा हायट के सिद्धान्त को आलोचनाओं का कम सामना करना पड़ा। ऐसा सम्भवतः इसलिए कि हायट ने अपने सिद्धान्त में आवासीय क्षेत्र का अधिक अच्छा विवरण प्रस्तुत किया है तथा इसमें अधिक व्यावहारिक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। इस सिद्धान्त में नगरीय विकास में यातायात मार्गों के महत्व पर अधिक बल दिया गया है। हायट के आलोचकों में फायरे प्रमुख है जिन्होंने बोस्टन नगर के भूमि उपयोग के अध्ययन के आधार पर कुछ मूलभूत आपत्तियाँ उठाई है। इनके अनुसार खण्ड सिद्धान्त में खण्डों का प्रतिरूप धरातल, जलाग्रीय स्थिति आदि कारकों से बहुत अधिक प्रभावित होता है। इसी प्रकार इस सिद्धान्त में भूमि उपयोग के निर्धारण में सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारकों को समुचित महत्व नहीं दिया गया है।

12.6.3. बहु–नाभिक सिद्धान्तः–

इस सिद्धान्त के विकास का श्रेय हैरिस एवं उलमैन (1945) को जाता है। इसके अनुसार किसी बड़े नगर में भूमि उपयोग प्रतिरूप का विकास एकल केन्द्र के बजाय कई अलग–अलग नाभिकों या केन्द्रो के चारों ओर होता है। इन नाभिकों के चतुर्दिक भूमि उपयोगों के सकेन्द्रण से नगर की कोि"ाकीय संरचना का विकास होता है जिस पर संस्थिति एवं नगर की ऐतिहासिक स्वरूप का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। नगर में पृथक नाभिकों की उत्पत्ति एवं विकास में निम्नलिखित चार कारकों का उत्तरदायी होता है – 1. कुछ कार्यो हेतु वि"ाष्ट सुविधाओं की आव"कता पड़ती है, जैसे खुदरा बिक्री के क्षेत्र हेतु यातायात साधनों की अभिगम्यता, बंदरगाह के लिए उपयुक्त सागर तट तथा विनिर्माण उद्योगों के लिए परिवहन की सुविधा एवं भूमि का विस्तृत क्षेत्र आदि। 2. कुछ कार्यो के नगर में सम्पन्न होने से सामान्य सुविधाये स्वतः एकत्रित होने लगती हैं जैसे, औद्योगिक नगरों से जुड़े खुदरा बाजार क्षेत्र वित्तीय संस्थान, यातायात एवं संचार सुविधाायें। 5. कुछ असमान क्रियायें एक–दूसरे के प्रतिरोध में होती हैं जैसे, औद्योगिक क्षेत्र एवं उच्च श्रेणी के रिहासीय क्षेत्र एक साथ नहीं मिलते हैं। इसी तरह खुदरा बिक्री क्षेत्र में आवागमन एवं छोटी गाड़ियों का भारी जमघट पाया जाता है, जब कि थोक व्यापार वाले क्षेत्र में रेल–मार्ग,सड़क मार्ग सुविधाओं और सामानों को लादने और उतारने का कार्य किये जाते हैं। 4. नगर में कुछ कार्य उपयुक्त स्थानों का चुनाव नहीं हो पाता क्योंकि चयन ऊंचे किराया दर के कारण सम्भव नहीं कर पाते हैं जैसे, थोक व्यापार एवं माल संग्रहण के कार्य (जिनके लिए अधिक जगह की जरूरत होती है) अथवा निम्न आय वर्ग के आवासीय क्षेत्र।

1. **केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (C.B.D.)** –: यह क्षेत्र नगर के केन्द्र अर्थात मध्य में स्थित होता है तथा यातायात एवं परिवहन सुविधाओं से भलीभॉति अभिगम्य होता है। विषम वृद्धि के कारण अधिकां"ा बड़े क्षेत्र अमेरिकी नगरों में इसकी स्थिति परिधीय जैसी हो गयी है। झील एवं नदी किनारे स्थित नगरों में ऐसी स्थिति अकसर दिखाई पड़ती है। ि"ाकागों, सेण्टलुइस और साल्ट लेक सिटी इसके उदाहरण हैं। इस क्षेत्र में भूमि का मूल्य सर्वाधिक

होता है तथा यह फुटकर व्यापार का केन्द्र होता है। छोटे नगरों में वित्तीय संस्थायें और कार्यालय पाये जाते हैं जहाँ फुटकर व्यापार की दुकानें आपस में सटे होते है, परन्तु बड़े नगरों के सहारे मोटर गाड़ियाँ की कतार सी बन जाती है।

2. **थोक व्यापार और हल्का विर्निमाण उद्योग क्षेत्र** :— यह भाग भी नगर के केन्द्र के निकट होता है जहाँ रेल, सड़क एवं ट्रक मार्ग एक दूसरे के नज़दीक होते हैं। इसके उद्भव में यातायात अभिगम्यता, बड़े—बड़े मकानों के लिए उपर्युक्त स्थान की उपलब्धता, बाजार एवं श्रम की नजदीकता आदि के कारणों का महत्वपूर्ण प्रभाव है।

3. **भारी उद्योग क्षेत्र** :— यह क्षेत्र नगर के बाहर की सीमा पर स्थित होता है। भारी उद्योगों को अधिक भूमि तथा यातायात—परिवहन की मुख्य आव"यकता होती है, जो नगर के बाहरी भाग में अच्छी तरह से उपलब्ध है। इसी वजह से इनकी अवस्थिति नगर के बाहरी सीमावर्ती भागों में अधिक दिखाई पड़ती है। जैसे अमेरिका के ि"ाकागो नगर के दक्षिण—पि"चमी किनारे पर 5 किलोमीटर की मेखला में 50 से अधिक उद्योगों का केन्द्रकरण का रूप देखा जाता है।

4. **आवासीय क्षेत्र** :— सामान्यता उच्च श्रेणी के रिहा"ाीय आवासीय क्षेत्र नगर के उचित जल—प्रबंधन वं प्रदूषण रहित भागों में केन्द्र के समीप रेलमार्गो और कारखानों के निकट ऐसे क्षेत्र पाये जाते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग मध्य में आवासीय क्षेत्रों के रूप में निवास करते हैं।

5. **लघु नाभिक** :— इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक केन्द्र, पार्क, बाहरी, व्यापार केन्द्र, तथा छोटे औद्योगिक केन्द्र, विश्वविद्यालय आदि को सम्मिलित करते हैं जो अलग नाभिक के रूप में क्रिया करते हैं। जैसे पार्क एवं मनोरंजन के क्षेत्र उच्च स्तरीय आवासीय विकास को प्रेरित करते हैं। वा"िांगटन का रॉक क्रीक पार्क एवं लन्दन का हाइड पार्क इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। इसके विपरीत छोटे—छोटे संस्थान एवं बेकरी ऐसे हल्के निर्माण उद्योग नाभिक का रूप नहीं पाते जाते हैं।

6. **उपनगर एवं अनुषंगी नगर** :— उपनगर और अनुषंगी नगर भी उच्च श्रेणी के आवासीय क्षेत्रों हेतु केन्द्रक के रूप में कार्य करते हें। ऐसे उपनगर अधिकां"ा बड़े अकारकीय रूप के दिखाई पड़ते हैं। ऐसे उपनगर अधिकां"ा अमेरिकी के नगरों में दिखाई पड़ते हैं। अनुषंगी नगर उपनगरों से अलग दिखाई पड़ते हैं जो केन्द्रीय नगर से दूर स्थित होते हें तथा केन्द्रीय नगर से प्रतिदिन आवागमन बहुत कम हो पाता है। आर्थिक स्वरूप से ये केन्द्रीय नगर पर आश्रित रहते हैं। उदाहरणार्थ, गारी को शिकागों का उपनगर कहा जाता है, जबकि एलगिन और जोलियअट को अनुषंगी नगर के रूप में पाया जाता है।

आलोचना :—

अन्य सिद्धान्तों की ही भांति बहु नाभिक सिद्धान्त भी आधुनिक नगर की आन्तरिक संरचना की व्याख्या को पूर्ण रूप सही नहीं प्रतिपादित कर सका है। इसे बहुत साधारण तरीके से प्रयास किया है जो आज के बृहन्नगरों की संरचना की वास्तविकता से मेल नहीं खाता है। वर्तमान समय में तीव्र आवागमन और संचार के साधनों, कच्चा प्रौद्योगिकी, बृहत नगरों का फैलाव, नगरीय नियोजन, नगरीय प्रदूषण आदि का भी नगरीय भूमि उपयोग पर प्रभाव डाला है जिसका समुचित स्पष्टीकरण इन सिद्धान्तों में नहीं मिलता है। गैरीसन महोदय के अनुसार नगरीय विकास के पूर्व वर्णित प्रत्येक मॉडल में शीर्ष दो मॉडलों की विशेषताये कुछ—न—कुछ अं"ाों मे अव"य देखने को मिलती है। इसी आधार पर उन्होंने समेकित वृद्धि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया हैं।

नगरीय संरचना के वर्तमान मॉडलः—

नगरीय संरचना के वर्तमान मॉडलों में ब्रिटिश अर्थ"ाास्त्री कोलिन क्लार्क का योगदान महत्पवूर्ण है। इनके द्वारा प्रतिपादित ढलान वि"लेषण मॉडल वि"ाेष रूप से उल्लेखनीय माना जाता है। इसके आधार पर नगर के केन्द्र से उपान्त की तरफ जनसंख्या घनत्व, आर्थिक एवं सामाजिक वि"ाेषताओं में सामान्यः ह्रास अथवा वृद्धि के परिणाम दिखाई पड़ते हैं। उतार—चढ़ाव के इस परिवर्तन की मात्रा को ढलान (Gradient) कहते हैं। इसी प्रकार लावरी मॉडल में पिट्सवर्ग के अध्ययन के आधार पर नगरीय विकास में भूगोल की तीन मुख्य संकल्पनाओं का सहारा लिया गया है।

1. नगरों के भीतर जनसंख्या घनत्व में ढलान की संकल्पना जिसके आधार पर नगर केन्द्र से दूर हटने पर आवासीय घनत्व में गिरावट आती जाती है।

2. रैली का फुटकर व्यापार हेतु आकर्षण शक्ति का नियम (Law of Retail Gravitation), जिसके अनुसार नगर की सेवाओं के रोजगार का वितरण आवासीय जनसंख्या के अनुरूप होता है।

3. नगरों की आधारभूत–अनाधारभूत रोजगार की संकल्पना।

12.7 नगरीय भूमि उपयोगः–

नगरीय भूमि उपयोग में नगर भूमि के कार्यो के आधार पर विभाजित किया जाता है। इसमें नगर की भूमि का चौड़ाई लम्बवत् विस्तार का अध्ययन करते हैं। यह जानने का प्रयास का प्रयास होता है कि नगर की भूमि का कौन–से भाग पर और किस तरह कार्यो के लिए उपयोग किया जाता है। व्यावहारिक तौर पर यह कार्यात्मक आकारिकी का पर्यायवाची है, जिसमें तीन प्रकार के अध्ययन पर बल दिया जाता है– 1. नगरीय भूमि का कितना भाग किन–किन कार्यो में उपयोग किया जाता है। 2. उस पर स्थित इमारतें किन–किन कार्यो के उपयोग में लायी जाती है। तथा 3. नगर के भीतर भिन्न–भिन्न कार्यो में कितने व्यक्ति लगे हैं अर्थात् नगर में रहने वाले लोगों की व्यावसायिक संरचना किस प्रकार की है। इनकी निम्न मेंखला है –

1. **आन्तरिक या केन्द्रीय मेखलाः**– यह नगर का नाभिक क्षेत्र है, जिसे केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। यह सर्वाधिक नगरीकृत क्षेत्र है, जिसमें खुले स्थान , वस्तु न्यून स्तर पर पायी जाती है। यहाँ के क्षेत्र पर व्यापारिक क्रियाओं और परिवहन मार्गो का अधिकतम दबाव देखा जाता है, जिससे दिन में इस क्षेत्र अत्यधिक आवागमन , भीड़भाड़ और कोलहल पूर्ण वाला भाग बना रहता है तथा रात में दुकानों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों के बन्द होने पर शान्त क्षेत्र में बदल जाता है। यहाँ टेढ़ी मेढ़ी, तंग और लम्बी गलियाँ और बहुमंजिली इमारतें पायी जाती हैं। इस क्षेत्र में व्यापार का वाणिज्य के कार्य की वजह से महत्वपूर्ण भूमि उपयोग हैं, जिनका सर्वाधिक घनत्व नगर केन्द्र और उनकी मुख्य सड़कों के किनारे दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस पेटी में आवासीय भूमि उपयोग अभिजात और निम्न वर्गीय आवासों के रूप में भी दिखाई देता है।

2. **मध्यवर्ती मेखला** :– यह केन्द्रीय मेखला के चारों ओर स्थित अन्तर्वती क्षेत्र का उदाहरण है जिसका विकास पिछली दो शताब्दियों के दौरान हुआ है। इस क्षेत्र का मुख्य भूमि उपयोग आवासीय के रूप में होता है जिसमें निम्न आय वर्ग ओर मलिन बस्तियों की अधिकता होती है। इसमें खुले भागों की कमी पाई जाती है। इसे आवासीय क्षेत्र के नाम से भी जानते है। आवासों के अतिरिक्त इसमें कहीं–कहीं व्यापारिक, छोटे और पुराने औद्योगिक प्रतिष्ठान भी देखे जाते हैं।

3. **बाह्य मेखलाः**– यह नगर के बाहरी सीमा पर स्थित होता हैं जिसके अन्तर्गत चौड़ी सड़कों, पार्को, बगीचों आदि के रूप में पर्याप्त खुला क्षेत्र पाया जाता है। मुख्य रूप से भूमि उपयोग भी आवासीय रूप में होता है। परन्तु भारी उद्योगों, छोटे व्यापार केन्द्रो ,रेल–रोड आदि भी प्राप्त होते हैं। यहाँ पर एक मंजिल और एक परिवार वाले मकानों की अधिकता पाई जाती है। मकानों का घनत्व काफी कम क्षेत्रों मे मिलते हैं। भारतीय नगरों की अधिका"ा प्र"ाासकीय इकाइयाँ (सिविल लाइन, छावनी, जिला मुख्यालय, सिविल कोर्ट), शैक्षणिक संस्थान (विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, कालेज, शोध संस्थान इत्यादि), रेलवे स्टे"ान एवं कालोनी, औद्योगिक प्रतिष्ठान आदि इसी क्षेत्र में स्थित देखे जाते हैं। यह क्षेत्र नगर का सबसे नया बसा क्षेत्र होगा है।

4. **उपनगरीय मेखलाः**– इसकी स्थिति नगर की प्र"ाासकीय सीमा से बाहर तृतीय मेखला के विस्तार के रूप होती है। यह क्रम में इसका विकास नहीं होता। यह विखण्डित रूप में मुख्य सड़कों के किनारे अधिक विस्तृत भागो में पाई जाती है। यहाँ आवासीय, औद्योगिक, आदि नगरीय भूमि उपयोगों का विकास कही–कही पर ग्रामीण भूमि उपयोग के स्पष्ट संकेत दिखाई पड़ते हैं। इस मेखला की बाहरी समीप नगर के सुदूर भौगोलिक विस्तार को प्रकट करती है, जिसके आगे ग्रामीण भूमि उपयोग का प्रभाव दिखाई देता है। इन सभी चारों पेटियों से नगर की संगठित समाजिक–आर्थिक इकाई का निर्माण से विकास होता है, जिसे डिकिन्सन ने नगरीय भूखण्ड के नाम से बताया है।

12.8. नगरीय भूमि के प्रकार :–

डिकिन्सन ने भूमि उपयोग विशेषताओं को आधार बनाया है। संक्षेप में प्रकार्यों के आधार पर नगर में निम्नलिखित मेखलायें पाई जाता हैं – 1. व्यापारिक, 2. आवासीय, 5. प्रशासनिक, 4. औद्योगिक, 5. धार्मिक 6. शैक्षिक , 15. मनोरंजन, 8. सार्वजनिक 9. चिकित्सीय, 5. कृषि क्षेत्र इत्यादि।

1. **व्यापारिक क्षेत्र** :– यह व्यापारिक क्षेत्र आवासीय क्षेत्र के निकट पाया जाता है लेकिन तथा कभी–कभी उसके बीचों बीच में भी स्थित होता है। अधिकां"ातः यह नगर के मध्य भाग में ही पाया जाता है, जहाँ थोक व्यापार के अतिरिक्त फुटकर व्यापार के क्षेत्र मिले जुले रूप में पाये जाते हैं।यह नगर का सबसे महत्वपूर्ण भूमि उपयोग वाला क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक आवागमन, परिवहन मार्गों की अधिकता और ऊँची–ऊँची इमारतें बनी होती हैं। प"िचमी दे"ाों में 'व्यापार' को व्यापक अर्थो में प्रयोग किया जाता है जिसमें लेन–देन की सभी क्रियाओं एवं सेंवाओं को मिला लिया जाता है। इस प्रकार थोक, फुटकर एवं सरकारी व्यापार, वित्त, बीमा और अचल सम्पत्ति, व्यावसायिक, व्यक्तिगत तथा व्यापारिक सेंवायें आदि सभी कुछ इसकी परिधि में समाहित हो जाते हैं। व्यापार के अन्तर्गत नगरीय क्षेत्र का यद्यपि 5 प्रति"ात से कम क्षेत्र लगा होता है, परन्तु इससे 40 प्रति"ात या अधिक नगरीय जनसंख्या लालन–पालन तथा भरण–पोषण होता है। व्यापारिक कार्यों के स्थानीकरण में यातायात मार्गों की अभिगम्यता का वि"ोष योगदान होता है। इन कार्यो में एत्रीकरण की प्रवृति पायी जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में व्यापार क्षेत्र की स्थिति नगर के बीचों–बीच भाग में स्थित होती थी जिससे केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र का प्रादुर्भाव होता है, लेकिन बड़े नगरों में जैसी आव"यकता होती धीरे–धीरे कई व्यापार क्षेत्रों का जन्म होने लगता है। प्राउडफुट ने फिलाडेल्फिया के अध्ययन के आधार पर व्यापार क्षेत्र को निम्नलिखित पांच वर्गो में बाटा है। 1. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र 2. बाह्यस्थ व्यापार केन्द्र 3. प्रधान व्यापार मार्ग 4. प्रतिवे"ाी व्यापार वीथिका एवं 5. एकाकी विक्रयागार गुच्छ। करोल ने भी नगर के व्यापार क्षेत्र को चार प्रमुख भागों में बाटा है। 1. केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र 2. प्रादे"िाक व्यापार क्षेत्र 3. प्रतिवे"ाी व्यापार जनपद एवं 4. इसी प्रकार बेरी ने आकृति एवं प्रकार्यो के आधार पर इसे तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया है।

2. **केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र** :– इसे नगर का हृदय क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। इसे केन्द्रीय यातायात क्षेत्र, केन्द्रीय वाणिज्य क्षेत्र, केन्द्राभिमुख क्षेत्र, वाणिज्य–क्रोड, आदि नामों से जानते हैं। यह नगर का अत्यधिक भीड़–भाड़, का अधिक घनत्व ऊंची–ऊंची बहुमंजिली इमारतों और सर्वाधिक क्रय–विक्रय का केन्द्र होता है। यहाँ अधिकां"ातः फुटकर बिक्री की दुकानें पायी जाती है। इस क्षेत्र में परिवहन के साधनों की सुलभता के कारण सर्वाधिक गमनागन का क्षेत्र होता है। इसकी स्थिति नगर के केन्द्रीय भाग में पाई जाती है। नगर के आकार और महत्व के आधार पर इसका केन्द्रीय भाग प्रभावित होता है। यहाँ भूमि अत्यधिक महॅगी पायी जाती है। बाहर की तरफ भूमि के कीमतों में गिरावट दिखाई पड़ती है। यातायात परिवहन की वजह से, काफी दूर तक फैलता हुआ मिलता है। अर्थात् यह नगर का सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है जहाँ दिन में काफी भीड़–भाड़ परन्तु रात्रि में यह शांति सा हो जाता है। इसीलिए इसे नगर के 'मृत हृदय' के नाम से भी पुकारते हैं। केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र को भूमि उपयोग और व्यापार की तीव्रता के आधार पर इसे दो वर्गों में विभाजित करते हैः–

   1. **केन्द्रीय व्यापार** क्षेत्र का क्रोड भाग यह नगर का सबसे भीतर और सबसे अधिक भूमि मूल्य वाला केन्द्रीय क्षेत्र होता है जिसे ठोस क्रोड या व्यापारिक क्रोड के नाम से भी जाना जाता है। **2. सी0बी0डी0** के किनारे का भाग जो क्रोड के चारों तरफ मिश्रित भूमि उपयोग का क्षेत्र होता है। इसमें फुटकर व्यापार और कार्यालयों की प्रधानता पाई जाती है। इसे गौण क्षेत्र भी कहते है। **3. आवासीय क्षेत्र** :–प्रकार्यात्मक दृष्टि से व्यापारिक भूमि उपयोग के प"चात आवासीय क्षेत्र नगर के दूसरा वि"िाष्ट स्थान माना जाता है। नगर के विकसित क्षेत्र का एक–तिहाई से भी अधिक भाग इसके अन्तर्गत सम्मिलित होता है। डॉ0 कुसुम दत्ता के एक अध्ययन के अनुसार 55 भारतीय नगरों के विकसित क्षेत्र का 41.5 प्रति"ात से भी अधिक भाग आवासीय क्षेत्र के रूप में पाया जाता है। उदाहरणार्थ, कालीकट का 55.2 प्रति"ात, कोलकाता का 55% , मुम्बई का 54% , कानपुर का 52%, जयपुर का 51% और दिल्ली का 20% विकसित क्षेत्र आवासीय है। इसी प्रकार फिलाडेल्फिया में यह प्रति"ात 52 और ि"ाकागो में 52 पाया जाता है। समय के अनुसार आवासीय क्षेत्र की संरचना और विस्तार में परिवर्तन होता रहता है। आवासीय क्षेत्र लगभग सभी नगरों में पाया जाता है। नगर के अन्दर निवास करने वाले लोगों की आवासीय आव"कताओं की पूर्ण करता है। आवासों के स्थानीकरण एवं चयन में नगरीय सुविधाओं, स्वयं आवास की वि"ोषताओं–किराया, क्रय कीमत आदि– तथा निवासियों

की पसन्द एवं क्षमता आदि का प्रभाव देखा जाता है। नगर के दूसरे भाग में स्थित आवासीय क्षेत्र एवं उनकी वि"ोषतायें भिन्न–भिन्न प्रकार की पाई जाती हैं। जहाँ सी0बी0डी0 के पास निम्न आय वर्ग के गिरावट के आवासीय क्षेत्र स्थित हैं वहाँ नगरीय केन्द्र से दूर एवं बर्हिवर्ती भागों में उच्च आय वर्ग के अच्छे आवसों के क्षेत्र पाये जाते हैं। इसी तरह जहाँ नगर के कुछ लोग केन्द्रीय भाग के समीप रहना पसन्द करते हैं तो कुछ उद्योगों या रोजगार स्थलों के समीप तथा दूसरे प्रदूषण मुक्त उपनगरीय क्षेत्रों को आवास हेतु चुनाव करते हैं। इसी भाँति निम्न वर्ग, गरीब वर्ग के लोग नगर के उन क्षेत्रों में निवास करना चाहते हैं जहाँ उनका कार्य–क्षेत्र होता है तथा जहाँ उन्हें कम से कम किराया देना पड़े। इसके विपरीत धनी वर्ग के लोग खुले एवं प्रदूषण रहित क्षेत्र में रहना पसन्द करते हैं। इसके लिए कार्य–स्थल और आवास के बीच की दूरी का कोई मायने नहीं होता है। कई नगरों में कार्यस्थल के समीप मकानों का घनत्व इतना अधिक हो जाता है कि लोगों को मजबूरन दूरवर्ती भागों की ओर जाना पड़ता है। बड़े नगरों में तीव्र यातायात के साधनों के विकास के कारण बहुत से लोग नगर से 50 किमी0 से भी अधिक दूरी पर निवास करते हैं। मुम्बई, कोलकाता दिल्ली आदि महानगरों में रोजना आने–जाने वाले ऐसे प्रवासियों की संख्या काफी अधिक पाई जाती है। नगर के प्राचीनतम आवासीय क्षेत्र नगर केन्द्र (C B D) के समीप पाये जाते हैं, जिनमें बहुपरिवारीय आवासों की अधिकता पाई जाती है। इसके विपरीत नये आवासीय क्षेत्र नगर के बाहरी भाग में यातायात मार्गों के सहारे विकसित होते हें, जिसमें एक परिवार के भवनों की प्रधानता मिलती है। प्रत्येक महत्वपूर्ण यातायात मार्ग आवासीय क्षेत्रों के विसरण के लिए केन्द्रक का कार्य करता है। आवासीय क्षेत्रों की स्थिति और विस्तार पर नगरीय विकास एवं प्रौद्योगिक प्रगति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, जिसके उसमें परिवर्तन दिखाई पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य में लगभग 20% जनसंख्या प्रतिवर्ष अपना आवास बदल देती है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्तिगत परिवार अपने जीवन काल में औसतन आठ से नौ बार अपना आवास बदल देता है।

(अ) **आन्तरिक आवासीय पेटी** :– इसमें नगरीय जनंसख्या और इमारतों का घनत्व सबसे अधिक मिलता है। यह पेटी नगर के सी0बी0डी0 के चारों ओर पाई जाती है जो बर्गेस के मॉडल की द्वितीय एवं तृतीय मेखलाओं के रूप में जाना जाता हैं। यह नगर का ह्रासोन्मुख क्षेत्र है जिसमें मलिन बस्तियाँ भी मिलती हैं। इस पेटी में अधिकतम निम्न आय वर्गों के समूह वाले लोग निवास करते हैं जिसमें बहुपरिवारीय मकानों की प्रधानता पाई जाती है। (ब)**बाह्य आवासी पेटी**:– इस पेटी का विस्तार नगर के बाहर वाले भाग में मुख्य रूप से पाया जाता हैं, जिसमें एकल परिवार तथा सुख–सुविधा वाले मकानों की बहुतायत मिलते हैं। इस पेटी में जनसंख्या और मकानों का घनत्व निरंतर घटता जाता है। इस पेटी के आवासीय क्षेत्र कई भागों में विभक्त होते हैं। इसी प्रकार आय, सामाजिक–आर्थिक स्तर तथा सम्पन्नता के आधार पर भी आवासीय क्षेत्र को प्रमुख भागों में बॉट सकते हैं:– 1. अभिजात वर्गीय आवास 2. उच्च–मध्य वर्गीय क्षेत्र 3. औसत मध्य वर्गीय आवास क्षेत्र 4. निम्न मध्य वर्गीय एवं निम्न आय वर्गीय आवास क्षेत्र

12.9. भारतीय नगरों की आकारिकी :–

भारतीय नगरों की आकारिकी के अध्ययन में स्पेट, ब्रु"ा और स्मेल्स के प्रयास महत्वपूर्ण माना जाता हैं। ब्र"ा महोदय के मतानुसार आकारिकी की दृष्टि से भारतीय नगरों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है – 1. दे"ीय वि"ोषताओं वाले नगर जिनका स्वरूप भारतीय है। विस्तार उत्तर के मैदानों भागों, मरुस्थलीय सीमावर्ती क्षेत्र ओर दकन में पाया जाता है जिन पर द0प0 ए"िाया की (इस्लामी) संस्कृति का प्रभाव देखा जाता है। इनमें गलियाँ पतली, टेढ़ी मेढ़ी और अनियमित पायी जाती हैं। 2. यूरोपीय पद्धति पर बसाये गये नगर। इनमें ब्रिटिश शासन की सैनिक छावनियों, सिविल लाइन्स, रेलवे कालोनी आदि को सम्मिलित करते हैं, जिनमें सीधी और चौड़ी सड़कों के किनारे बंगलानुमा मकान स्थित होते हैं। इनका विकास यूरोपीय लोगों ने बंदरगाहों या यूरोपीय उपनिवे"ाों के रूप में किया था। इनकी संख्या कम है।

भारत में प्राचीन नगर या तो राजनीतिक केन्द्र–स्थल अथवा धार्मिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए हैं। इनका निर्माण साधारणतया नदियों के तट के समीप पाया जाता था, जो सुरक्षा, जल–उपलब्ध एवं यातायात के प्रमुख साधन के रूप में प्रयुक्त होती थी। अधिकां"ा प्राचीन नगर चारों तरफ दीवालों की बाउण्ड्री होने के साथ नदी तट पर स्थित दुर्गों की छत्र–छाया में विकसित होते थे। इसलिये नगरों का प्रारम्भिक स्वरूप नदी तट के समीप पाया जाता था। नदी संगम पर बने नगरों की आकृति स्वरूप और भी भिन्न होती थी। इसी तरह नदी मोड़ के

सहारे बसे नगर की आकृति अण्डाकार तथा पहाड़ी से घिरे नगरों की आकृति वृत्ताकार या अर्द्ध–वृत्ताकार के रूप में पायी जाती थी। दीवाल से घिरे नगर प्रायः चौकोर या वृत्ताकार होते थे। परन्तु उनके भीतरी भाग की सड़के आदि सीधी हुआ करती थी। नगर का यह स्वरूप मध्य कालीन युग के पूर्व तक चलता रहा इसके बाद नगरों को नयी तरह से बसाने या विकसित करने का प्रयास किया जाने लगा।

ब्रिटिश शासन काल में रेल परिवहन की शुरूआत से नगरों की आकृति एवं स्वरूप में काफी बदलाव दिखाई पड़ा। रेलों के आगमन से नदियों का व्यापारिक महत्व घटने लगा नगर का प्रसार रेलवे स्टे"ान की ओर होने लगा। कालान्तर में रेलवे स्टे"ान के आस–पास सैनिक छावनी, पुलिस लाइन्स, सिविल लाइन्स आदि नये क्षेत्र विकसित हुए। इस प्रकार नगर का वर्तमान विकसित क्षेत्र दो भागों–प्राचीन एवं नवीन भागों में बँट गया। मोटर परिवहन और सड़क यातायात के विकास से नगरीय विकास में एक नई कड़ी जुड़ गई है। इस प्रकार के मुख्य सड़कों के सहारे होने के कारण नगर की आकृति तारानुमा हो जाती है। भारतीय नगरों की सामान्य कार्यात्मक संरचना एवं नगरीय भूमि उपयोग प्रतिरूप के आधार से ही पता चलता हैं। कि अधिकां"ा नगरों में आवासीय एवं प्रकार्यो की किस तरह का अभाव पाया जाता है। इनमें व्यापारी, "िाल्पकार, नौकरी में लगे लोग और मजदूर आदि अपनी अपने कार्यात्मक क्षेत्र जैसे कार्यालय एवं फैक्ट्री के नजदीक रहने का प्रयास करते हैं। बहुधा ऊपरी मंजिलों, पीछे के भागों या समीप के क्षेत्रों का उपयोग आवासीय कार्यों हेतु किया जाता है।

भारत के नगरों के मध्यवर्ती भाग को चौक (Chowk) कहते हैं, जो नगर का प्रमुख केन्द्र होता है जिसमें बाजार क्षेत्र होता है। परन्तु इसकी वि"ोषतायें प"चात् नगरों के केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (CBD) से भिन्न पाई जाती हैं। यहाँ फुटकर व्यापार क्षेत्र मुख्य सड़कों और गलियों के सहारे काफी दूर तक फैले होते हैं। इसकी व्यापारिक संरचना में खाद्यान्न, वस्त्र, आभूषण, बर्तन, लौह सामान, सब्जी तथा अन्य वि"िाष्ट वस्तुओं के छोटे–छोटे क्षेत्र अलग–अलग मिलते हैं। प्रमुख व्यापार क्षेत्र के चारो ओर आवासीय क्षेत्र स्थित होता है जिसमें संप्रदाय, जाति, भाषा आदि के आधार पर पृथक्करण पाया जाता है। यहाँ उच्च जातियाँ और संभ्रात लोग नगर केन्द्र के निकट निवास करता है और निम्न जातियाँ और निम्न आय वर्ग के लोग बाह्य भाग में अपना निवास बनाते हैं, वर्तमान समय में इसमें पृथक्करण की प्रवृत्ति में गिरावट देखी गयी तथा मोटर गाड़ी और सड़क परिवहन के विकास के कारण उच्च और मध्य आय वर्ग के लोग नगर के बाह्म भाग में खुले और विस्तृत आवासीय क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे है। नई नियोजित कालोनियों का निर्माण भी इन्हीं उपनगरीय भागों की ओर हो रहा है। भारतीय नगरों में केन्द्रीय भाग अत्यधिक सघन और ठोस पाया जाता है। यहाँ केन्द्रोन्मुखी शक्तियों के प्रबल होने के कारण उपान्त और उपनगरीय क्षेत्रों का अपेक्षाकृत कम विकास हो पाया है जैसा कि पश्चिमी विश्व के नगरों में दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि यहाँ नगर–केन्द्र और उपान्त के बीच जनसंख्या घनत्व में काफी अन्तर दिखाई पड़ता है। प"चात् नगरों से भिन्न भारतीय नगरों में यौन–अनुपात भी अपेक्षतया कम पाया जाता है। जहाँ दक्षिणी भारत (केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदे"ा) में यौन–अनुपात अपेक्षतया अधिक है। उत्तरी भारत (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदे"ा, मध्य प्रदे"ा, बिहार आदि) में कम है। दक्षिणी भारत के नगरों में ग्रामीण महिलाओं के रोजगार के अवसर भी अपेक्षतया अधिक है। भारतीय नगरों में ग्रामीण जीवन शैली और ग्रामीण दृष्टिकोण की प्रधानता पाई जाती है। यही कारण है कि महानगरों तक में भी कच्चे मकान, झोपड़ियाँ, नगरीय भाग में तबेले पर घूमते प"ाुओं की आसानी से देखा जा सकता है। इसके भूमि उपयोग का विवरण इस प्रकार है–

1. **औद्योगिक क्षेत्र** :– औद्योगिक भूमि उपयोग का नगर के प्रकार्यात्मक आकारिकी पर वि"ोष प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया नगर का 5–6% क्षेत्र इसके अन्तर्गत पाया जाता है परन्तु कई औद्योगिक नगरों में यह मात्रा काफी अधिक पाई जाती है। उदाहरण स्वरूप मुम्बई में 13.5, जयपुर में 5.5, कोलकाता में 9.2, कानपुर में 6.6, हैदराबाद में 5.1 और दिल्ली में 1.8% क्षेत्र उद्योगों के अधीन पाया जाता है। इसी प्रकार शिकागों का 15.4, फिलाडेल्फिया का 1.8 एवं न्यूयार्क का 6.8 प्रति"ात क्षेत्र इस रूप में विद्यमान है।

   नगर में उद्योगों की स्थापना पर परिवहन मार्गों, कच्चामाल एवं ऊर्जा संसाधनों की सुलभता, पूंजी, बाजार, श्रम आदि कारकों का प्रभाव पड़ता है। सामान्यता बृहत् उद्योग नगर की बहारी सीमा पर तथा लघु उद्योग आन्तरिक भाग में स्थित पाये जाते हैं। इसी प्रकार भारी कच्चा माल उपयोग करने वाले उद्योग सागरीय पत्तनों, रेलों, सड़कों, नाव्य नदियों और नहरों के समीप स्थित पाये जाते हैं। मोटर निर्माण तेल शोधन शालाओं आदि के लिए विस्तृत भूमि की आव"यकता होती है, जिसके कारण इनकी स्थापना नगर के बाह्य भाग में की जाती है। इसी प्रकार शोर–गुल एवं प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को भी आवासीय क्षेत्रां से दूर रखा जाता है।

2. **प्रशासनिक क्षेत्र** :— नगर की शक्ति एवं सुरक्षा हेतु कु"ाल प्र"ाासन की आव"कता होती है जिसके कार्यालय नगर के विभिन्न भागों में स्थित होते हैं। इसके साथ ही साथ नगर अपने प्रभाव क्षेत्र का प्र"ाासनिक सेवायें प्रदान करता है। कुछ नगरों का अस्तित्व केवल प्र"ाासनिक कार्यों से ही जुड़ा होता है। नयी दिल्ली, चण्डीगढ़, भुवने"र, आदि इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। विश्व स्तर पर लन्दन, टोकियो, मास्को, पेरिस, वा"िंगटन, कैनबरा, ओटावा, इस्लामाबाद आदि राजधानी नगर प्र"ाासनिक कार्यों से ही सम्बद्ध हैं। प्र"ाासनिक कार्यो से संबंधित कार्यालयों को चार वर्गो में बांटा जा सकता है :— (अ) केन्द्रीय सरकार के प्र"ाासन से सम्बन्धित कार्यालय , (ब) राज्य सरकार के प्र"ाासन से सम्बन्धित कार्यालय (स) जिला प्र"ाासन से संबंधित कार्यालय, एवं (द) स्थानीय प्रशासन—नगर निगम, नगर महापालिका, नगर पालिका, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, टाउन एरिया आदि— से संबंधित कार्यालय।

3. **शैक्षणिक क्षेत्र** :— प्रत्येक नगर में कई प्रकार की ि"ाक्षा संस्थायें होती हैं, जिनका वितरण नगर के विभिन्न भागों में पाया जाता है। इनमें प्रारम्भिक ि"ाक्षण संस्थायें, माध्यमिक ि"ाक्षण संस्थायें, स्नातक एवं स्नातकोत्तर ि"ाक्षण संस्थायें, तकनीकी एवं व्यावसायिक ि"ाक्षण संस्थायें आदि सम्मिलित हैं। प्रारम्भिक ि"ाक्षण संस्थायें, जिनके लिये बहुत बड़े क्षेत्र की आ"यकता नहीं होती हैं, नगर के प्रत्येक मुहल्ले में वितरित पायी जाती हैं, परन्तु अभिजात वर्ग से सम्बन्धित कान्वेंट, मांटेसरी और पब्लिक स्कूल अपेक्षतया अधिक विस्तृत क्षेत्र पर नगर के उच्च एवं मध्य वर्गीय आवासीय क्षेत्रां के बीच स्थित पाये जाते हैं। माध्यमिक विद्यालय, जिनमें छात्रावास, क्रीड़ा क्षेत्र आदि के कारण अपेक्षतया अधिक भूमि की आव"कता होती है, नगर के मध्यभाग के उपान्त में स्थित होते हैं। बालिकाओं के विद्यालय भारतीय नगरों में आवासीय क्षेत्रों के समीप नगर के मध्य भाग में पाये जाते हैं। स्नातक और स्नातकोत्तर ि"ाक्षण संस्थायें, विश्वविद्यालय इत्यादि, जिनके लिए विस्तृत एवं सस्ती भूमि की आव"कता होती है, सामान्यतया नगर के बाह्य भाग या उपान्त में स्थित देखे जाते हैं। 4. सांस्कृतिक क्षेत्र :— सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्तर्गत धार्मिक, सामाजिक एवं मनोरंजन आदि की संस्थायें सम्मिलित की जाती हैं। भारत के कई नगरों में धार्मिक संस्थाओं का वि"ाेष प्रभाव देखा जाता है। इनमें वाराणसी में विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा में द्वारिकाधी"ा मन्दिर, अयोध्या में रामलला मन्दिर, प्रयागराज में संगम क्षेत्र, अजमेर में दरगाह आदि का धार्मिक महत्व है। विश्व स्तर पर भी मक्का, मदीना, जेरुसलेम आदि नगरों का अस्तित्व धार्मिक कारणों से सम्बद्ध है। साधारणतया धार्मिक स्थल नगर के मध्य भाग में आवासीय क्षेत्रों के समीप पाये जाते हैं। कानपुर **(Kanpur)** :— गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित कानपुर नगर ब्रिटिश शासन काल में एक छावनी के रूप में विकसित किया गया था, परन्तु धीरे—धीरे यह उत्तरी भारत का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया। आज यह दे"ा का दसवां बृहत्तम महानगर है।

12.10. सारांश :—

इस इकाई में नगर के आकरिकी और उनकी कार्यात्मक विभिन्नता को समझ गये होगे। नगर के भौतिक विन्यास में नगरीय संरचना से जिसके अन्तर्गत सड़कों, गलियों के प्रतिरूप, भवनों का समूह, उनके प्रकार्य, घनत्व आयोजना/व्यवस्था को सम्मिलित करते हैं। इसी कारण से नगर की कार्यात्मक आकारिकी को नगरीय उपयोग के रूप निदिृष्ट किया जाता है। आप समझ गये होगे कि नगर के विकास के अवस्थाओं महत्वपूर्ण फलक क्या होते है। आपने यह भी जाना होगा कि इसके भूमि उपयोग के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने अपने सिद्धान्तों का प्रयोग किया है। आपने देखा कि ये सिद्धान्तों किसी आद"ाी नगर के आन्तरिक विन्यास का सामान्यीकृत रूप से प्रस्तुत करता है। जो एक दूसरे के संन्दर्भ में स्थिति की जानकारी मिलती है। जिससे उनकी पहचान की जा सके।

12.11. स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर —

1. नगरीय आकारिकी के विकास की कितनी अवस्थायें हैं —

(अ) 5 (ब) 6 (स) 5 (द) 4

2. संकेन्द्रीय मेखला सिद्धान्त किसने दिया —

(अ) हायट (ब) वर्गेस (स) हैरिस (द) क्रिस्टालर

3. खण्ड सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

(अ) रिचथोफेन (ब) हैरिस (स) होमर हायट (द) ब्लाश

4. बर्गेस ने अपने संकेन्द्रीय सिद्धान्त कितने पेटियों में बांटा है –

(अ) 4 (ब) 6 (स) 5 (द) 5

आदर्श उत्तर (1) स (2) ब (5) स (4) द

12.12 न्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, काशीनाथ एवं जगदीश सिंह, 1975 : मानव और आर्थिक भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी।
2. वर्मा, लक्ष्मी, नारायण, 1983 : अधिवास भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 300 पृष्ठ
3. सिंह, उजागर, 1974 : नगरीय भूगोल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 413 PP.
4. शर्मा, राजीव लोचन, : प्रादेशिक एवं नगरीय नियोजनकिताब घर।
5. Turner, R, 1962 : India's Urban future, Oxford University press, Bombay,
6. Tusari, R.C.,1984: Settlement System in Rural India:A Case Study of Lower ganga

इकाई– 13

माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत, नव माल्थसवाद, अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 जनसंख्या सिद्धान्त

13.3 माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त

13.4 नव माल्थसवाद जनसंख्या सिद्धान्त

13.5 कार्ल मार्क्स की जनसंख्या सिद्धांत

13.6 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त

13.7 सारांश

13.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

13.0 प्रस्तावना

यद्यपि अध्ययन के क्षेत्र में जनसंख्या की समस्या नवीनतम नहीं है। मानवीय सभ्यता के विकास के साथ – साथ यह विविध स्वरूपों में समय – समय पर अध्ययन का विषय रही है। प्राचीन काल से विभिन्न विद्वानों ने तत्कालीन समय से जोड़ कर इसके प्रभाव की व्याख्या करने का प्रयास किया है। माल्थस ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आकड़ों के आधार पर जनसंख्या से संबन्धित सिंद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने जनसंख्या की समस्याओं का वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया था। इसके पश्चात अनेक समाज वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों एवं उत्तरवर्ती विचारकों ने अपनी मान्यताओं एवं विचार के आधार पर आलोचनाएँ की तथा संसोधित विचार भी दिए। जनसंख्या अध्ययन के इतिहास में प्लेटो ने सर्वप्रथम जनसंख्या एवं संसाधन के संबंध पर विचार प्रकट किया था। इसके पश्चात अनेकों विद्वानों ने अलग – अलग समयों पर अपने विचार प्रकट किए तथा तत्कालीन समाज के लिए उपलब्ध संसाधनों और समस्याओं को प्रकट करने का प्रयास किया ।

13.1 उद्देश्य

जनसंख्या में वृद्धि होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जब जनसंख्या उपलब्ध संसाधनों की वहन क्षमता से अधिक हो जाती है तब अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगती है। इसी परिप्रेक्ष्य में विभिन्न विद्वानों द्वारा समय – समय पर जनसंख्या का अध्ययन किया गया। उसके पश्चात जनसंख्या से संबन्धित कुछ नियम भी प्रतिपादित किए गए हैं। इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है –

1. माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की व्याख्या करना।

2. नव माल्थसवाद जनसंख्या सिद्धान्त की विवेचना करना।

5. अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की प्रासंगिकता का वर्णन करना।

13.2 जनसंख्या सिद्धान्त

अतरू ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि जनसंख्या संबन्धित जो भी सिद्धान्त प्रकट किए गए हैं उन्हें तीन प्रमुख एवं नौ गौण वर्गों में विभक्त कर अध्ययन किया जाता है –

अ) माल्थस से पहले जनसंख्या सिद्धान्त

1. जनसंख्या पर प्राचीन विद्वानों के विचार
2. जनसंख्या पर वणिकवादी विद्वानों के विचार
5. जनसंख्या पर निर्वाधवादी विद्वानों के विचार

ब) माल्थस के समकालीन जनसंख्या सिद्धान्त

4. माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त
5. नव माल्थसवादी जनसंख्या सिद्धान्त

स) माल्थस के पश्चात जनसंख्या पर सिद्धान्त

6. अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त
15. जनसंख्या का जैविक सिद्धान्त
8. जनसंख्या का सामाजिक सिद्धान्त
9. जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त

उपरोक्त सिद्धांतों में से माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त एवं नव माल्थसवादी जनसंख्या सिद्धान्त अध्ययन की प्रासंगिकता की दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

13.3 माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त

राबर्ट माल्थस एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री एवं इतिहासकर थे द्य इनका जन्म 13 फरवरी 1766 ई. में ब्रिटेन में हुआ था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा 18 वर्ष की आयु तक घर से ही प्राप्त की थी, इसके पश्चात उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कैम्ब्रिज के जेसस कालेज में दाखिला लिया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इसी कालेज में वर्ष 1795 ई. में अध्यापन कार्य शुरू किया और प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। कुछ दिन तक अध्यापन करने के पश्चात वर्ष 1804 ई. में उन्होंने हैलबरी कालेज में प्रोफेसर पद पर कार्यभार ग्रहण किया तथा वर्ष 1854 ई. में अपनी मृत्यु तक बने रहे।

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त पर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों एवं उनसे जुड़ी मान्यताओं और लेखों का अधिक प्रभाव पड़ा। सम्पूर्ण यूरोप में 18वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में खाद्यान्नों के मूल्य में निरंतर वृद्धि, भुखमरी, निर्धनता एवं बेरोजगारी आदि की भीषण स्थितियाँ देखी गई। इंग्लैंड समेत यूरोप के सभी देश युद्ध में लगे थे जिसके कारण तत्कालीन समय में अकाल एवं भुखमरी की स्थिति भयंकर होती जा रही थी। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप जहाँ पूंजीपति वर्ग की प्रभुता बढ़ती जा रही थी वहीं दूसरी ओर निम्नवर्गीय जनसंख्या एवं श्रमिकों में निर्धनता एवं बेरोजगारी का चक्र बढ़ता चला जा रहा था। माल्थस के चिंतन एवं लेखनी पर तत्कालीन लेखकों राबर्ट वेलास, वाल्टर रैले, मैथ्यू हेल, जोसेफ टाऊनसेंड एवं विलियम गाडविन आदि के लेखों एवं विचारों का प्रभाव देखा गया ।सर वाल्टर रैले ने अपनी पुस्तक 'विश्व का इतिहास' में वर्णित किया है कि यदि युद्ध और बीमारियाँ नियंत्रण नहीं लगाती तो उस समय जनसंख्या इतना अधिक बढ़ जाती की उनका भरण – पोषण हो पाना ही कठिन था। मैथ्यू हेले ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'मानवता की आदिम उत्पत्ति' में लिखा है कि सामान्यतरू जनसंख्या में वृद्धि मृत्यु की संख्या से ज्यादा होती है एवं यदि इस पर नियंत्रण नहीं लगाया गया तो जनसंख्या बढ़ती ही जाएगी। उन्होंने जनसंख्या में गुणोत्तर दर से वृद्धि की मान्यता को स्वीकार किया तथा बताया कि आने वाले प्रति 54 वर्षों में जनसंख्या दो गुनी हो जाती है। विलियम गाडविन ने वर्ष 1793 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Enquiry Concerning Political Justice and its influence on Morals and Happiness' में वर्णन किया है कि जनता की दरिद्रता तथा दुरूखों के लिए सरकार की नीतियाँ उत्तरदायी होती हैं। वह जनसंख्या वृद्धि को उचित ठहराता है तथा उसकी मान्यता है कि मानव जाति स्वर्णिम युग की ओर अग्रसर है तथा जनसंख्या वृद्धि से हानि की अपेक्षा लाभ की संभावना है।

मात्थस जिस समय में अध्यापन कार्य में संलग्न थे तथा हैलबरी कालेज में थे, उस समय उन्होंने महसूस किया कि पूरे विश्व में जनसंख्या का भार दिन – प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। आयरलैण्ड में उसी समय भयंकर अकाल पड़ा था जिसके कारण खाद्य पदार्थों के मूल्य में काफी वृद्धि होती जा रही थी। आर्थिक दशाएँ लगातार बिगड़ती जा रही थी। सम्पूर्ण समाज बदहाल था। लोगों की भीड़ बेकार, भूखी एवं आर्थिक तंगी से बदहाल थी। बीमारी, महामारी, निर्धनता के साथ युद्ध के माहौल चारों तरफ दिखाई दे रहे थे। समाज श्रमिक वर्ग एवं पूंजीपति वर्ग में विभक्त था। पूंजीपति वर्ग के शोषण से समाज तड़प रहा था। ऐसे समय एवं परिस्थितियों से प्रभावित होकर माल्थस ने इसका समाधान ढूढ़ने का प्रयास किया। इसी पृष्टभूमि में जून 1798 ई. में उसका एक निबंध प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था 'Essay on Principle of Population : As its Effects the Future Improvement of Society'- इस निबंध में उन्होंने तत्कालीन जनसंख्या के समक्ष पाई जाने वाली समस्याओं का तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया जिसने लोगों को बहुत प्रभावित किया। लोगों की स्वीकार्यता तथा प्रेरणा से प्रेरित होकर माल्थस ने 1805 ई. में अपना दूसरा निबंध लिखा जो 'An Essay on the Principles of Population : or a View of its Past and Future Effects on Human Happiness' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस निबंध में उन्होंने जनसंख्या वृद्धि एवं परिवर्तन तथा सामाजिक – आर्थिक समस्याओं से जुड़े तथ्यों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मानवतावादी दृष्टिकोण था तथा जनसंख्या से उत्पन्न समस्याओं के लिए अनुभववादी परंपरा का अनुसरण किया। इस प्रकार माल्थस ने सर्वप्रथम जनसंख्या और उससे जुड़ी समस्याओं के लिए एक तार्किक सिद्धान्त प्रस्तुत किया ।

13.3.1 सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ

राबर्ट माल्थस ने इंग्लैण्ड समेत यूरोप के अन्य देशों से प्राप्त आकड़ों, अनुभव तथा पर्यवेक्षण के आधार पर निष्कर्ष निकाला उसे 'माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त' के नाम जाना गया। माल्थस ने जनसंख्या संबंधी अपने निबन्ध में निम्नलिखित मान्यताओं का अनुसरण किया –

1) मनुष्य की काम वासना यथा स्थिर एवं स्थायी होती है। इसकी संतुष्टि भी आवश्यक होती है, जिसका प्रतिफल संतानोत्पत्ति होती है।

2) मनुष्य में संतान उत्पन्न करने की क्षमता अपरिमित होती है।

5) आर्थिक संपन्नता और संतानोत्पत्ति में सीधा संबंध पाया जाता है। संपन्नता से संतानोत्पत्ति में वृद्धि होती है।

4) मानव जाति के लिए खाद्यान्न एक आवश्यक वस्तु है।

5) कृषि में उत्पत्ति ह्रास का नियम लागू होता है।

13.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या

इन मान्यताओं को आधार मानते हुए माल्थस ने अपने जनसंख्या सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उनका काहना था कि एक निश्चित अवधि उत्पादन पद्धति कि नियत दशा के तहत आजीविका के साधनों की अपेक्षा जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति देखी जाती है। नियंत्रण के अभाव में जनसंख्या ज्यामितीय (गुणोत्तर) अनुपात में बढ़ती है, वहीं जीवन निर्वाह क्षमता में वृद्धि समांतर (अंकगणितीय) रूप में होती है। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि दर निर्वाह क्षमता की वृद्धि दर से अधिक देखी जाती है। इसके फलस्वरूप वह शीघ्र ही जीवन निर्वाह क्षमता की तुलना में अधिक हो जाती है। इस प्रकार माल्थस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की व्याख्या निम्न शीर्षकों के अंतर्गत की जाती है –

13.3.2.1 जनसंख्या वृद्धि की गुणोत्तर दर

माल्थस का मानना था कि मानव में विपरित लिंगों में कामभाव बनी रहती है, जिसके कारण संतानोत्पत्ति होना स्वाभाविक है। यदि जनसंख्या पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया तो उसमें ज्यामितीय अनुपात में वृद्धि होती रहेगी जो कि खाद्य सामाग्री की तुलना में अधिक तीव्र होगी। इसकी तीव्रता इतना अधिक होती है कि वह लगभग 25 वर्षों में ही दोगुनी हो जाती है। उनका मानना है कि यदि इसी प्रकार से जनसंख्या बढ़ती रही तो आने वाले 200 वर्षों में जनसंख्या में 256 गुना वृद्धि भी हो सकती है। माल्थस के अनुसार ज्यामितीय वृद्धि निम्न प्रकार से होती है –

1 : 2 : 4 : 8 : 16 : 32 : 64 : 128 : 256

13.3.2.2 खाद्य पदार्थों में अंकगणितीय वृद्धि

माल्थस का मानना था कि खाद्य समग्रियों की वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि के विपरीत होती है। खाद्यान्न की आपूर्ति जनसंख्या की तुलना में धीरे – धीरे होती है। खाद्य संसाधन जनसंख्या की तरह ज्यामितीय दर से नहीं बढ़ते बल्कि उनमें वृद्धि गणितीय दर से होती है। गणितीय वृद्धि का अर्थ निम्नलिखित है –

1 : 2 : 3 : 4 : 5 : 6 : 7 : 8 : 9 : 10

माल्थस के अनुसार खाद्य आपूर्ति का संबंध फसलों के उत्पादन से है। कृषि उत्पादन में ह्रास का नियम लागू होता है। कृषि उत्पादन में घटोत्तरी की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसके बढ़ने की एक निश्चित सीमा होती है परंतु जनसंख्या वृद्धि की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है। वे लिखते हैं कि जब जनसंख्या ज्यामितीय दर से बढ़ कर 256 के स्तर पर पहुँच जाएगी तब तक खाद्यान्नों की अंकगणितीय वृद्धि केवल 9 तक होगी।

13.3.2.3 जनसंख्या एवं खाद्य पदार्थों के मध्य असंतुलन

माल्थस ने बताया है कि मानव की खाद्य सामग्री में वृद्धि धीरे – धीरे अंकगणितीय दर से होती है जबकि जनसंख्या में तीव्रता से ज्यामितीय दर वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में खाद्यान्नों की वृद्धि दर तथा जनसंख्या के वृद्धि में अंतर के कारण दोनों में अंतराल बढ़ता जाता है। इसके फलस्वरूप जनसंख्या और आजीविका के साधनों के मध्य असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि 200 वर्षों के पश्चात खाद्यान्नों की आपूर्ति और जनसंख्या के मध्य अनुपात 9:256 होगा जबकि 500 वर्षों के बाद यह 15:4096 हो जाएगा। इससे स्पष्ट होता है कि माल्थस एक निराशावादी व्यक्ति थे जो मानते थे कि जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि में अवरोध या नियंत्रण यदि नहीं उपस्थित हुआ तो जनसंख्या खाद्यान्न पदार्थों की तुलना तीव्रता से बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप भुखमरी, निर्धनता, गरीबी, बेरोजगारी, एवं भ्रष्टाचार जैसी कष्टकारी दशाएँ उत्पन्न हो जाती है। इसी को संदर्भित करते हुए माल्थस ने कहा है कि "प्रकृति की खाने की मेज सीमित अतिथियों के लिए है अत: बिना नियंत्रण आने वालों को अवश्य ही भूखा मरना पड़ेगा ।"

13.3.2.4 जनसंख्या वृद्धि पर प्रतिबंध

माल्थस का मानना है कि बढ़ती जनसंख्या को यदि समय रहते नियंत्रित नहीं गया तो निश्चित ही यह जनसंख्या वहाँ खाद्य सामग्रियों की क्षमता से अधिक हो जाएगी सामान्य स्थिति का तो मानना है जनसंख्या उतनी ही रह सकती है जितनी खाद्य सामाग्री की उपलब्धता है। ऐसी अवस्था में संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रकृति की ओर से स्वंय जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाए जाने की कोशिश की जाती है। माल्थस का इस विषय पर मानना है कि ईश्वर स्वंय जनसंख्या एवं खाद्यान्न के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है। ईश्वर जनसंख्या को संतुलित करने के लिए भुखमरी, महामारी, बाढ़, अकाल, अनावृष्टि जैसे प्राकृतिक उपकरणों का प्रयोग करता है प्रकृति द्वारा जनसंख्या नियंत्रण को माल्थस ने 'नैसर्गिक अवरोध' का नाम दिया है, इसके विपरीत जनसंख्या नियंत्रण हेतु मानव जाति द्वारा जो नियंत्रण लगाया जाता है उसे 'प्रतिबंधक अवरोध' कहते हैं।

प्रतिबंधक अवरोध में जनसंख्या पर नियंत्रण मनुष्य अपनी बुद्धि एवं विवेक की श्रेष्ठता के कारण अपनाता है क्योंकि मानव एक चिंतनशील एवं विवेकशील प्राणी है। वह जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण दो प्रकार से लगाता है –

अ) माल्थस नैतिक अवरोध की संकल्पना को जनसंख्या नियंत्रण का प्रमुख आयाम मानते हैं ।इसके अंतर्गत तीन उपायों को प्रमुखता से स्वीकार किया जाता है जो हैं – विवाह नहीं करना, विवाह में विलम्ब और वैवाहिक जीवन को संयमित व्यतीत करना। ये अवरोध सामाजिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से अच्छे होते हैं तथा इनमें कहीं भी कुरीति एवं अवांछनीयता नहीं होती है।

ब) माल्थस का मानना है कि जनसंख्या में नियंत्रण का उपाय संयम भी है। वे स्वीकार करते हैं कि संयम से कुरीतियों का जन्म होता है क्योंकि संयम का अर्थ होता है अनियमित सहवास, अप्राकृतिक समागम, गर्भ समागम अथवा वेश्यावृत्ति। ये सभी जनसंख्या नियंत्रण के प्रतिबंधात्मक उपाय है। मानव संस्कृति में इन कुरीतियों को अवांछनीय रीति भी कहा जाता है (तिवारी, 2022)।

13.3.5 माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचना

माल्थस द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त को कुछ विद्वानों से समर्थन प्राप्त हुआ तो कुछ ने इसकी कटु आलोचना भी की है। जहाँ समर्थन करने वाले विद्वानों मार्शल, एली, कोसा, कार्वर, पैटन तथा टाजिंग सम्मिलित थे वहीं आलोचना करने वालों में कैनन, इग्राहम, ओमनहोम एवं मार्क्स शामिल हैं। इनकी प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित है –

1) जनसंख्या वृद्धि हेतु यह नियम बनाना कि जनसंख्या ज्यामितीय ढंग से बढ़ती है सही नहीं है क्योंकि इसके कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाई नहीं देते है।
2) माल्थस ने तर्क दिया कि जीवन निर्वाह के साधन अथवा खाद्यान्न पदार्थ गणितीय अनुपात में बढ़ते है, उचित नहीं प्रतीत होते है क्योंकि खाद्य सामग्री के अंतर्गत वनस्पतियों के साथ जीव – जन्तु भी सम्मिलित होते है। माल्थस ने खाद्य पदार्थों में केवल कृषि उत्पादों को स्वीकार किया है जबकि मछलियों एवं जंतुओं की वृद्धि पर गणितीय अनुपात नियम लागू नहीं होता है।
3) माल्थस ने मानव में कामेच्छा की पूर्ति एवं संतानोत्पत्ति को एक साथ जोड़ कर देखा है

13.4 नव माल्थसवाद

जनसंख्या और खाद्यान्न आपूर्ति के संबंधों के विषय में प्रचलित वह विचारधारा जो माल्थस के मान्यताओं का तो अनुसरण करती है परंतु उसमें कुछ व्यवहारिक संशोधन भी प्रस्तुत करती है। नव माल्थसवाद कहलाती है। नव माल्थसवादी आधुनिक संतति नियमन आंदोलन के प्रबल समर्थक हैं। साथ ही वे स्वयं को माल्थस के उत्तराधिकारी भी मानते हैं। इस आंदोलन का शुभारंभ माल्थस के अनुयायियों द्वारा सन्तति निग्रह के साथ अन्य प्रतिबंधों एवं उपाय द्वारा जनसंख्या को कम करने हेतु शुरू किया गया था। यह आंदोलन मुख्यतः माल्थस के अनुयायियों द्वारा पाश्चात्य देशों में जनसंख्या नियंत्रण हेतु प्रारंभ किया गया था। यह समुदाय संतति निग्रह हेतु रासायनिक और यांत्रिक गर्भनिरोधकों के उपयोग को अपनाने का समर्थन करता है। इंग्लैंड की श्रीमती मेरी स्टांप्स एवं अमेरिका की मारग्रेट स्ट्रेंजर इस आंदोलन की प्रमुख समर्थक रही हैं। इस आंदोलन ने तत्कालीन समय में सभी देश के विचारकों, चिकित्सकों, समाजशास्त्रियों, मानव विज्ञानियों एवं अर्थशास्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित किया। इन सभी लोगों ने जनसंख्या नियंत्रण की बात का पूरा समर्थन किया। नव माल्थसवादी संकल्पना के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण भारत में देखने को मिलते हैं जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर सरकार ने परिवार नियोजन के उद्देश्य को स्वीकार किया कृत्रिम उपायों से संतति निग्रह हेतु जनता को विविध प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई तथा उन्हें अपनाने हेतु लोगों को प्रोत्साहित भी किया गया है ।

माल्थस ने कामेच्छा तथा संतान उत्पत्ति को जहां एक माना और उसमें कोई भेद नहीं किया, वहीं नव माल्थसवादी दोनों में अंतर करते हैं। इन लोगों ने माल्थस की विचारधारा एवं सोच में संशोधन किया। वे मानते हैं कि कामेच्छा वयस्कों की एक सामान्य आवश्यकता है और उसका दमन नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके दमन से मानव में मानसिक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। दूसरी तरफ इनका मानना है की संतान उत्पन्न करने की इच्छा व्यक्तियों में मुख्यतः सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से प्रेरित होती है। मानव के अंदर कामेच्छा की इच्छा होने का मतलब यह नहीं है कि वह संतान उत्पन्न करना चाहता है। इन विचारकों ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि कोई पति–पत्नी अतिरिक्त संतान का भार उठाए बिना अपनी कामेच्छा की तृप्ति करना चाहते हैं तो इससे कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। इसके लिए वह गर्भ निरोधक, रासायनिक तथा यांत्रिक उपायों का प्रयोग करके अपनी कामेच्छा की पूर्ति कर सकता है। वह मानते हैं कि यदि वर्तमान समय में माल्थस जीवित होते तो वह भी उनकी मान्यताओं को स्वीकार करते क्योंकि उनके समय एवं वर्तमान समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हो चुका है।

13.4.1 कृत्रिम विधि से संतानोत्पत्ति पर रोक के पक्ष में तर्क

नव माल्थसवादियों ने जनसंख्या नियंत्रण हेतु कृत्रिम साधनों के प्रयोग पर बल दिया है, इसके पक्ष में इन लोगों ने निम्नलिखित तर्क दिए है –

1) किसी भौगोलिक क्षेत्र में पाए जाने वाले संसाधनों की वहन क्षमता से अधिक यदि जनसंख्या पाई जाती है तो उससे अनेक सामाजिक – आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है ऐसी स्थिति में भूमि एवं अर्थव्यवस्था पर लोगों का भार कम करने के लिए जन्म एवं जनसंख्या नियंत्रण दोनों आवश्यक है।

2) कामेच्छा का दमन करके परिवार के आकार को नियंत्रित करना लाभदायक नहीं होता है। अतः ऐसी स्थिति में कृत्रिम साधनों के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए।

उपरोक्त बातों के अनुसरण का लाभ यह होगा कि कृत्रिम साधनों के प्रयोग व्यक्ति की कामेच्छा पूर्ण होने के साथ ही जनसंख्या में वृद्धि भी नहीं होगी तथा समाज अनेक प्रकार की कुरीतियों से भी मुक्त रहेगा।

13.5 कार्ल मार्क्स की जनसंख्या सिद्धांत

कार्ल मार्क्स की जनसंख्या सिद्धांत एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली विचार है, जो समाज की आर्थिक और सामाजिक संरचना को समझने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। उन्होंने इस सिद्धांत को पूंजीवाद और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली सामाजिक—आर्थिक असमानताओं के संदर्भ में विकसित किया। मार्क्स का विचार था कि जनसंख्या वृद्धि और इससे जुड़े समस्याओं को केवल आर्थिक व्यवस्था के साथ जोड़कर ही सही तरीके से समझा जा सकता है।

मार्क्स की जनसंख्या सिद्धांत का मुख्य लक्ष्य थॉमस माल्थस के विचारों का खंडन करना था। माल्थस की जनसंख्या सिद्धांत के अनुसार, जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ती है और यह संसाधनों की उपलब्धता से अधिक हो जाती है, जिससे समाज में भुखमरी और गरीबी जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। माल्थस के अनुसार, संसाधनों की कमी और जनसंख्या वृद्धि के बीच असंतुलन स्वाभाविक है और इसे प्राकृतिक आपदाओं, युद्ध, और महामारी के माध्यम से संतुलित किया जाता है।

इसके विपरीत, मार्क्स ने माल्थस की इस धारणा को अस्वीकार किया। उन्होंने तर्क दिया कि जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं की असली वजह संसाधनों की कमी नहीं, बल्कि पूंजीवादी व्यवस्था में संसाधनों का असमान वितरण है। मार्क्स के अनुसार, पूंजीवाद में कुछ लोगों के पास संसाधनों का अत्यधिक नियंत्रण होता है, जबकि अधिकांश जनसंख्या को इन संसाधनों तक पहुंच नहीं मिलती। उन्होंने कहा कि यह असमानता जनसंख्या वृद्धि की समस्याओं का मूल कारण है।

मार्क्स की जनसंख्या सिद्धांत का एक प्रमुख पहलू 'आरक्षित श्रम सेना' का विचार है। उनके अनुसार, पूंजीवादी समाज में जनसंख्या वृद्धि को एक रणनीतिक रूप से उपयोगी संसाधन के रूप में देखा जाता है। जनसंख्या वृद्धि का परिणाम यह होता है कि मजदूर वर्ग की संख्या बढ़ती है, जिससे श्रमिकों के लिए काम के अवसर कम हो जाते हैं। इससे श्रमिकों की मजदूरी कम हो जाती है, और पूंजीपतियों को श्रमिकों का शोषण करने का अधिक अवसर मिलता है।

मार्क्स ने कहा कि पूंजीवादी व्यवस्था में एक अतिरिक्त श्रमिक वर्ग तैयार किया जाता है जिसे उन्होंने आरक्षित श्रम सेना कहा। इस सेना का मुख्य उद्देश्य पूंजीवाद को बनाए रखना होता है। जब उत्पादन के साधन पूंजीपतियों के नियंत्रण में होते हैं, तो वे अपनी आवश्यकता के अनुसार श्रमिकों को काम पर रखते हैं और जरूरत न होने पर उन्हें बेरोजगार छोड़ देते हैं। इस प्रकार, आरक्षित श्रम सेना पूंजीपतियों को मजदूरी कम रखने और श्रमिकों के शोषण का एक साधन प्रदान करती है।

मार्क्स के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि को केवल उस समय समस्या माना जाता है जब समाज में संसाधनों का वितरण असमान होता है। उन्होंने तर्क दिया कि पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का प्राथमिक उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है, न कि समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना। इसलिए, संसाधनों का उपयोग केवल उन लोगों के लिए किया जाता है जो उन्हें खरीदने की क्षमता रखते हैं, जबकि समाज के गरीब और निम्न वर्ग के लोग बुनियादी जरूरतों से वंचित रह जाते हैं। इस असमानता के परिणामस्वरूप, जनसंख्या वृद्धि को गरीबी, भुखमरी, और बेरोजगारी के कारण के रूप में देखा जाता है, जबकि वास्तविक समस्या पूंजीवादी प्रणाली में निहित है।

मार्क्स का मानना था कि समाजवादी व्यवस्था में, जहां उत्पादन के साधनों का नियंत्रण समाज के पास होता है और संसाधनों का समान वितरण किया जाता है, वहां जनसंख्या वृद्धि को बेहतर तरीके से प्रबंधित किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि जब समाज के सभी वर्गों को संसाधनों तक समान पहुंच मिलेगी, तब जनसंख्या वृद्धि कोई समस्या नहीं होगी। इसके विपरीत, पूंजीवादी व्यवस्था में यह असमानता जनसंख्या वृद्धि के नाम पर श्रमिकों का शोषण करने का एक साधन बन जाती है।

मार्क्स की दृष्टि में, एक आदर्श समाज में, जनसंख्या वृद्धि को एक समस्या के रूप में नहीं देखा जाएगा, क्योंकि समाज के सभी लोगों को उनके जरूरत के अनुसार संसाधन प्राप्त होंगे। उन्होंने कहा कि जब तक समाज पूंजीवादी व्यवस्था से मुक्त नहीं होगा, तब तक जनसंख्या वृद्धि को एक संकट के रूप में देखा जाता रहेगा, और मजदूर वर्ग का शोषण होता रहेगा। मार्क्स का मानना था कि समाजवादी या साम्यवादी व्यवस्था में, जहां सभी लोग उत्पादन के साधनों पर समान अधिकार रखते हैं, वहां जनसंख्या वृद्धि समाज के विकास और समृद्धि के लिए एक साधन होगी, न कि संकट का कारण। उनके अनुसार, जब समाज में समानता होगी, तब जनसंख्या वृद्धि के नाम पर होने वाले शोषण और असमानता को समाप्त किया जा सकेगा।

कार्ल मार्क्स की जनसंख्या सिद्धांत एक गहन आर्थिक और सामाजिक विश्लेषण पर आधारित है। उन्होंने जनसंख्या वृद्धि को पूंजीवादी समाज की समस्याओं से जोड़कर देखा और तर्क दिया कि असली समस्या संसाधनों की कमी नहीं, बल्कि उनके असमान वितरण में है। उनके अनुसार, जब तक समाज में पूंजीवाद रहेगा, तब तक जनसंख्या वृद्धि का उपयोग मजदूर वर्ग के शोषण के लिए किया जाता रहेगा। मार्क्स का दृष्टिकोण समाजवादी व्यवस्था की वकालत करता है, जहां जनसंख्या वृद्धि को एक सकारात्मक रूप में देखा जा सके और सभी के लिए समान अवसर और संसाधन उपलब्ध कराए जा सकें।

13.6 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त

किसी प्रदेश की वह अधिवासित जनसंख्या जिसे वहाँ उपलब्ध संसाधनों के अनुसार उच्चतम जीवन स्तर प्राप्त होता है अभीष्ट या अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है। अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त का आधार मूलत: आर्थिक है परन्तु यह सामाजिक दशाओं तथा समाज की तत्कालीन प्रौद्योगिकी के विकास स्तर से सम्बद्ध होती है जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य पूर्ण संतुलन की अवस्था की प्राप्ति की दशा अत्यंत कठिन है ।सामाजिक विकास एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए साम्यावस्था प्राप्त की जा सकती है। अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त उसी साम्यावस्था का बोध कराता है। साहित्यिक दृष्टिकोण से अनुकूलतम एक सापेक्षिक शब्द है जिसका अर्थ देश काल के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। यदि अनुकूलतम जनसंख्या का निर्धारण जीवन की गुणवत्ता और जीवन के स्तर के आधार पर करें तो किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों का वर्तमान ज्ञान तथा उपलब्ध तकनीकी के अनुसार उसके पूर्ण विकास के साथ उसके उपयोग के लिए सुनिश्चित जनसंख्या जिसे उच्चतम जीवन स्तर प्राप्त होता है, अनुकूलतम जनसंख्या कही जाती है।

आर्थिक एवं सामाजिक अवधारणाओं के आधार पर किसी प्रदेश में निवासित जनसंख्या के उस भाग को अनुकूलतम माना जाता है, जिससे वहाँ उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग होता है और वहाँ की जनसंख्या का जीवन स्तर उच्चतम होता है। अनुकूलतम जनसंख्या किसी प्रदेश की जनसंख्या तथा संसाधनों के मध्य सम्बन्धों की एक आदर्श स्थिति होती है, जो सामान्यत: सभी प्रदेशों में सुगमता से प्राप्त नहीं होती है। अभी तक ऐसा कोई भी प्रामाणिक मापदण्ड विकसित नहीं हो सका है जिसके सहयोग से विश्व के किसी भी देश में उपलब्ध सम्पूर्ण संसाधनों का मूल्यांकन किया जा सके और उसकी प्रभाविता का सहसंबंध वहाँ की उपलब्ध जनसंख्या से स्थापित किया जा सके। अत: यह ज्ञात करना मुश्किल है कि किसी क्षेत्र में संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो रहा है या नहीं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उच्चतम जीवन स्तर से अभिप्राय: केवल अधिकतम प्रतिव्यक्ति आय से नहीं है बल्कि इसमें प्रतिव्यक्ति पर्याप्त भोज्य पदार्थ, शुद्ध जल, शुद्ध वायु, उच्चस्तरीय आवास, पूर्ण विकसित परिवहन के साधन, मनोरंजन एवं स्वास्थ्य की पूर्ण सुविधा, सर्वोत्तम व्यापारिक दशा और सांस्कृतिक विकास के पूर्ण अवसर आदि की पर्याप्त उपलब्धता से है। इसके अभाव में उच्चतम जीवन स्तर की कल्पना नहीं की जा सकती है (मौर्या, 2005)।

किसी प्रदेश में उपलब्ध संसाधन तथा वहाँ की निवासित जनसंख्या के मध्य आदर्श साम्य की अवस्था का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में कैंटीलोन ने अनुकूलतम जनसंख्या शब्दावली का प्रयोग किया था। अनुकूलतम जनसंख्या एक आदर्श आकार होता है जिससे अधिक या कम होने पर जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य संतुलन बिगड़ जाता है। इस कारण क्षेत्र विशेष में अति जनसंख्या या अल्प जनसंख्या की समस्या उत्पन्न हो जाती हैः अनुकूलतम जनसंख्या के सैद्धान्तिक पक्ष की परिभाषा विभिन्न भूगोलविदों, समाज विज्ञानियों एवं अर्थशास्त्रियों द्वारा समय – समय पर दी गई है जो निम्नलिखित है –

कार साऊडर्स के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो अधिकतम कल्याण उत्पन्न करती है ।"

पीटर्सन के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या व्यक्तियों की वह संख्या है, जो किसी दिए हुए प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक वातावरण में अधिकतम आर्थिक प्रतिफल उत्पन्न करने में सक्षम है |"

बोल्डिंग के शब्दों में "वह जनसंख्या जिस पर किसी क्षेत्र विशेष के लोगों का जीवन स्तर उच्चतम हो अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है ।"

डाल्टन के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो प्रतिव्यक्ति अधिकतम आय देती है।"

मानव भूगोल का शब्दकोश जिसका सम्पादन जानसन एवं अन्य लोगों द्वारा किया गया है के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या की परभाषा "व्यक्तियों की वह संख्या जो किसी दी हुई आर्थिक, सैन्य या सामाजिक लक्ष्यों के संदर्भ में अधिकतम प्रतिफल को प्राप्त कराती है अनुकूलतम जनसंख्या होती है ।"

प्रसिद्ध विद्वान सावी के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या का अर्थ उस स्थिति से है जिसमें उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग एवं पूर्ण रोजगार, दीर्घ जीवन संभाव्यता, उत्तम स्वस्थ्य, ज्ञान और संस्कृति, सामाजिक सामंजस्य तथा पारिवारिक दायित्व की प्राप्ति होती है।"

वर्ष 2005 में प्रो0 आर. एन. सिंह और एस. डी. मौर्या के सम्पादन में प्रकाशित भौगोलिक पारिभाषिक शब्दकोश की परिभाषा के अनुसार "किसी प्रदेश या क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की वह आदर्श संख्या जो उस क्षेत्र के संसाधनों के पूर्ण उपयोग के लिए सक्षम होती है और जिससे सामान्य जीवन स्तर यथासंभव उच्चतम हो सकता है अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जब किसी भौगोलिक सीमा के अंतर्गत निवास करने वाली सम्पूर्ण जनसंख्या को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से सक्षम बनाने में उपलब्ध संसाधन पर्याप्त होते हैं तो ऐसी जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है। ऐसी जनसंख्या अधिकतम आर्थिक कल्याण को सुनिश्चित करती है तथा संसाधनों के पूर्ण उपयोग और उच्चतम जीवन स्तर के लिए आवश्यक आधार प्रदान करती है।

13.6.1 अनुकूलतम जनसंख्या के निर्धारण के तत्व

अनुकूलतम जनसंख्या का आकार क्या होगा इसका निर्धारण करना आसान काम नहीं है। किसी क्षेत्र विशेष में उच्चतम जीवन स्तर या अधिकतम आर्थिक उत्पादन या अधिकतम सामाजिक कल्याण का सीमांकन करना कठिन काम है। किसी क्षेत्र विशेष हेतु अनुकूलतम जनसंख्या के अधिकतम आर्थिक उत्पादन, सैन्य शक्ति, सामाजिक कल्याण के अलग – अलग मानक हो सकते हैं। इन मानकों के आधार पर अलग – अलग उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। इस प्रकार अनुकूलतम जनसंख्या के निर्धारण के प्रमुख तत्वों में सकल घरेलू उत्पाद, प्रतिव्यक्ति आय, पूर्ण रोजगार, उच्चतम जीवन स्तर, संसाधनों का पूर्ण उपयोग, संतुलित जनांकिकीय संरचना, प्रदूषण रहित विकास आदि प्रमुख है।

13.6.1.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद

समाज में अधिकतम आर्थिक उपयोगिता के आकलन के मापकों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन देशों का सकल राष्ट्रीय उत्पाद अधिक होता है वहाँ प्रतिव्यक्ति आय भी अधिक होता है। प्रतिव्यक्ति आय की अधिकता की स्थिति में जनसंख्या में आर्थिक संवृद्धि का वितरण अधिक पाया जाता है। लोगों के पास अधिक धन संचय होने, प्रतिव्यक्ति व्यय एवं क्रय क्षमता बढ़ जाती है। इससे समाज मे आर्थिक साधनों का प्रवाह अधिक देखा जाता है। चूंकि प्रतिव्यक्ति आय औसत आय को प्रकट करती है, अत जिन समाजों में यह अधिक पाई जाती है वहाँ उपलब्ध संसाधनों के समुचित उपयोग की संभावना अधिक होती है।

13.6.1.2 उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग

किसी भी देश में किसी निश्चित कालावधि में यदि तत्कालीन प्रौद्योगिक एवं तकनीकी के प्रयोग से समस्त ज्ञान संसाधनों के पूर्ण प्रयोग वाली संकल्पना अनुकूलतम जनसंख्या से साम्य रखती है। समय में परिवर्तन के साथ ही नई प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी के विकास से नवीतम संसाधनों की खोज होती है तथा पूर्व के उपलब्ध संसाधनों की गुणवत्ता में वृद्धि होती रहती है। अत: इसके आधार पर भी किसी देश काल की अनुकूलतम जनसंख्या के मानक में परिवर्तन होता रहता है।

13.6.1.2 देश की जनांकिकीय संरचना

किसी देश की अनुकूलतम जनसंख्या का संबंध वहाँ की जनांकिकीय संरचना में भी देखा जाता है। किसी भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या में लिंग, आयु आदि तत्वों में संतुलन होने पर निर्भरता अनुपात सामान्य बना रहता है। जन्मदर तथा मृत्युदर में अंतर भी धीरे – धीरे कम होने लगता है और दोनों अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच जाते है।, जिससे जनसंख्या स्थिर हो जाती है। इस प्रकार उपलब्ध संसाधनों एवं वहाँ की जनसंख्या की आवश्यकताओं के साम्य की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

13.6.1.3 पूर्ण रोजगार की अवस्था

यदि किसी देश की अर्थव्यवस्था में उसके सभी नागरिकों को उनकी योग्यता के आधार पर रोजगार के अवसर उपलब्ध हो जाते हैं तो इससे आय के वितरण की असमानता कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में आश्रित जनसंख्या का स्तर भी अपने निचले पायदन पर पहुँच जाता है। वहाँ के उपलब्ध सम्पूर्ण संसाधन वहाँ की जनसंख्या के भरण – पोषण में सक्षम हो जाते हैं।

13.6.1.4 जीवन का उच्च स्तर

जीवन के उच्चतम स्तर की अवधारणा एक सामाजिक संकल्पना है। यह उच्चतम आय एवं पूर्ण रोजगार के साथ – साथ उच्चतम स्वस्थ्य और सुखमय जीवन हेतु आवश्यक सुविधाओं की पूर्ण उपलब्धता पर निर्भर होती है। जिन समाजों ने इस स्तर को प्राप्त कर लिया है वहाँ अनुकूलतम जनसंख्या की संकल्पना सार्थक हो जाती है।

13.6.1.5 प्रदूषण रहित सतत विकास

अनुकूलतम जनसंख्या की संकल्पना मात्र आय के उच्चतम स्तर एवं आर्थिक उत्पादन से नहीं जुड़ी हुई है। इसमें पर्यावरणीय तत्वों की अनदेखी नहीं की जा सकती है। अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए पर्यावरण की निरंतर क्षति नहीं पहुंचायी जा सकती है। पर्यावरणीय अवनयन से मृदा अपरदन, निर्वनीकरण, जल एवं वायु प्रदूषण में निरंतर वृद्धि होती जाती है जो वर्तमान एवं भविष्य के लिए गंभीर पर्यावरणीय संकट उत्पन्न कर सकते हैं। प्रसिद्ध विद्वान जी. आर. टेलर के अनुसार "अनुकूलतम जनसंख्या का अधिकतम वह है जो पर्यावरण अथवा समाज को या पोषण की कमी से व्यक्ति के स्वास्थ्य को क्षति पहुंचाए बिना अनिश्चित काल तक स्थिर रह सके ।"

अनुकूलतम जनसंख्या की संकल्पना को लेकर जनसंख्याविदों एवं अन्य मानवशास्त्रियों में विवाद के अनेक पक्ष देखे जाते है। इस संकल्पना के उदय के साक्ष्य प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात संयुक्त राज्य अमेरिका एवं यूरोप के देशों में देखे जाते हैं। इसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों की आलोचना के अनेक आधार मिलते हैं। बहुत से भूगोलविदों एवं जनसंख्याविदों का मानना है कि वर्तमान संसार में अर्थव्यवस्था और समाज की गतिशीलता के साथ लगातार प्रौद्योगिकी का विकास एवं नवीन प्रकार के संसाधनों की खोज, अनवीकरणीय संसाधनों के वैकल्पिक खोज के कारण संतुलन की अवस्था की प्राप्ति अत्यंत कठिन है। ऐसी स्थिति में अनुकूलतम जनसंख्या का निर्धारण अत्यंत कठिन हो जाता है।

13.7 सारांश

आपने इस इकाई में माल्थस का जनसंख्य सिद्धांत, नव माल्थसवाद एवं अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत का अध्ययन किया है। आप समझ गए होगें कि जनसंख्या भूगोल के इन सिद्धांतों ने जनसंख्या से जुड़ी अवधारणाओं को अपने तरीके से व्यक्त करने का प्रयास किया है। वास्तव में किसी देश की जनसंख्या वहाँ का सबसे बड़ा संसाधन होती है जो उसकी भौगोलिक अवस्थिति, सरकारी नीतियों, सांस्कृतिक संगठन आदि के आधार पर विकसित होती है। माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्यान्न की आपूर्ति के सहसंबंध को जोड़कर सिद्धान्त प्रस्तुत प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।बाद में कुछ विद्वानों द्वारा इसकी प्रासंगिकता पर सवाल उठाया गया जिसके कारण इसकी काफी आलोचना भी हुई। नव माल्थसवादी माल्थस के अनुयायी थे तथा उन्होने इसकी कमियों को दूर करके सिद्धान्त प्रस्तुत किए। बाद के वर्षों में अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ, जिसमें इस बात को स्वीकार किया गया कि किस प्रकार वहाँ उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किया जाए ताकि सर्वोत्तम कल्याण की प्राप्ति हो सके।

13.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. माल्थस ने अपना जनसंख्या संबंधी सिद्धान्त कब दिया था।

   (क) 1700 ई. (ख) 1798 ई. (ग) 1808 ई. (घ) 1905 ई.

2. माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति को बताया था।

   (क) धनात्मक (ख) ऋणात्मक (ग) गुणोत्तर (घ) अंकगणितीय

5. माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति को बताया था।

   (क) अंकगणितीय (ख) ऋणात्मक (ग) धनात्मक (घ) गुणोत्तर

4. नव माल्थसवादी विचारक थे ।

   (क) माल्थस के विरोधी (ख) माल्थस के समकालीन

   (ग) माल्थस अनुयायी (घ) माल्थस समर्थक

5. अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।

   (क) उपलब्ध संसाधनों की वहन क्षमता से अधिक

   (ख) उपलब्ध संसाधनों की वहन क्षमता से कम

   (ग) उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते हुए जिनका जीवन स्तर उच्च बनाया जा सके

   (घ) उपरोक्त सभी

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Bogue, D. J., 1969, Principles of Demography, John Wiley, N. Y.
- Clarke, John I., 19155, Population Geography, Pergaman Press, Oxford.
- Crook, Nigel, 19915, Principles of Population and Development, Pergaman Press, N. Y.
- Garmier, J. B., 19150, Geography of Population, Longman, London.
- Mamoria, C. B., 1981, India's Population Problem, Kitab Mahal, New Delhi.
- Premi, M. K., 1991, India's Population, Heading Towards a Billion, B. R. Publishing Corporation.
- Blassoff, M. and Srinivasan K., 2001, Population Development Nexus in India : Challenges for the New Millennium, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Woods, R., 19159, Population Analysis in Geography, Longman, London.
- Zelinsky, W., 1966,A Prologue to Population Geography, Prentice Hall.
- चन्दना, आर. सी., 2022, जनसंख्या भूगोल – संकल्पना, नियंत्रक व विश्व प्रारूप, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
- चन्दना, आर. सी., 2022, भारत जनसंख्या (जनसंख्या भूगोल – भाग II), कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
- मौर्या, एस. डी., 2005, जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
- ओझा, आर. पी., 1984, जनसंख्या भूगोल, प्रतिभा प्रकाशन.
- हीरा लाल, 2000, जनसंख्या भूगोल के मूल तत्व, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
- तिवारी, राम कुमार, 2025, जनसंख्या भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद.

13.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

1. माल्थस के जनसंख्या संबंधी सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ?
2. नव माल्थसवादी विचारकों ने माल्थस के सिद्धान्त में जो संशोधन किया था उन्हें स्पष्ट कीजिए ?
3. अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए तथा अनुकूलतम जनसंख्या के निर्धारक तत्वों की व्याख्या कीजिए ?

इकाई 14

जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत

14.0 परिचय

14.1 सिद्धांत का विकास

14.2 जनसांख्यिकी संक्रमण के चरण

14.3 सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

14.4 जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत की आलोचना

14.5 सिद्धांत की सीमाएं

14.6 भारत में जनसंख्या का आकार,वृद्धि दर और जनांकिकीय संक्रमण

14.7 निष्कर्ष

14.8 बोध प्रश्न

14.9 अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

14.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

14.11 संदर्भ ग्रंथ

14.0 परिचय

जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत (Demographic Transition Theory) जनसंख्या विज्ञान में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जो यह समझाने का प्रयास करता है कि कैसे और क्यों जनसंख्या वृद्धि दर समय के साथ बदलती है। यह सिद्धांत समाज के विकास के विभिन्न चरणों के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि के पैटर्न का विश्लेषण करता है। यह सिद्धांत विशेष रूप से उस परिवर्तन को दर्शाता है जिसमें समाज उच्च जन्म और मृत्यु दर वाले से निम्न जन्म और मृत्यु दर वाले समाज में बदलते हैं जब वह एक मुख्य रूप से ग्रामीण कृषि और निरक्षर समाज से शहरी, औद्योगिक, साक्षर और आधुनिक समाज की ओर प्रगति करता है। जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत सबसे महत्वपूर्ण जनसंख्या सिद्धांतों में से एक है, जिसे जनांकिकीय इतिहास के आंकड़ों और आंकड़ों द्वारा सबसे अच्छे तरीके से प्रलेखित किया गया है। जनसांख्यिकीविद जैसे लैंड्री (1909) और वॉरेन थॉम्पसन (1929) ने उच्च मृत्यु दर और उच्च प्रजनन दर की स्थिति से कम मृत्यु दर और कम प्रजनन दर की स्थिति की ओर संक्रमण को वर्णित करने के लिए एक प्रकारिकी बनाने का प्रयास किया था।

14.1 सिद्धांत का विकास

जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत को सबसे पहले डब्ल्यू.एस. थॉम्पसन (1929) और ई.डब्ल्यू. नोटेस्टीन (1945) ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस सिद्धांत को विकसित करने के लिए यूरोप, उत्तरी अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में जनसंख्या वृद्धि के ऐतिहासिक आंकड़ों का अध्ययन किया। उनका उद्देश्य यह समझना था कि कैसे औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करता है। इस प्रक्रिया में शामिल तीन बहुत स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट परिकल्पनाएँ हैं:

(i) प्रजनन दर में गिरावट से पहले मृत्यु दर में गिरावट आती है ;

(ii) प्रजनन दर अंततः मृत्यु दर से मेल खाती है ; और

(iii) समाज का सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन उसके जनांकिकीय परिवर्तन के साथ–साथ होता है

14.2 जनसांख्यिकी संक्रमण के चरण

जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत पांच प्रमुख चरणों में विभाजित है, जिनमें प्रत्येक चरण जनसंख्या वृद्धि दर और सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर में परिवर्तन को दर्शाता है।

वर्तमान समय में, दुनिया के विभिन्न देश जनांकिकीय संक्रमण के विभिन्न चरणों में हैं। ट्रिवर्था के अनुसार, यह मुख्य रूप से मनुष्य के द्वैत स्वभाव के कारण होता है। उनके अनुसार, जैविक रूप से, मनुष्य हर

Fig1: Demographic Transition (After Haggett, 1975)

जगह एक समान है और प्रजनन की प्रक्रिया में लगा हुआ है, लेकिन सांस्कृतिक रूप से मनुष्य दुनिया के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में भिन्न होता है। मनुष्य की सांस्कृतिक विविधता ही अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग प्रजनन पैटर्न को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप जनांकिकीय संक्रमण के विभिन्न चरण होते हैं। जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत को स्पष्ट संक्रमण चरणों द्वारा चिह्नित किया गया है। उच्च जन्म और उच्च मृत्यु दर से निम्न दरों में संक्रमण को निम्नलिखित पांच चरणों में विभाजित किया जा सकता हैरू

चरण 1 : उच्च स्थिर चरण

पहला चरण, जिसे उच्च स्थिर चरण (High Stationary Stage) कहा जाता है, में जन्म और मृत्यु दर दोनों उच्च होते हैं। इस चरण में, समाज प्रौद्योगिकी और चिकित्सा में अविकसित होता है। कृषि प्रमुख आर्थिक गतिविधि होती है और बड़े परिवारों की प्रथा होती है। मृत्यु दर उच्च होती है क्योंकि चिकित्सा सुविधाएं और पोषण के स्तर निम्न होते हैं। जनसंख्या वृद्धि दर भी निम्न होती है क्योंकि उच्च जन्म दर उच्च मृत्यु दर द्वारा संतुलित होती है।

पहले चरण में, प्रजनन दर प्रति हजार 35 से अधिक होती है और मृत्यु दर भी अधिक होती है, जो प्रति हजार 35 से अधिक होती है। मृत्यु दर का व्यवहार, हालांकि, महामारियों और परिवर्तनीय खाद्य आपूर्ति के कारण अनियमित होता है। इस चरण में, जनसंख्या स्थिर और धीरे–धीरे बढ़ती है जहां लोग उत्पादन की अपव्ययी प्रक्रिया में लगे रहते हैं। यह चरण मुख्य रूप से कृषि समाजों में होता है जहां जनसंख्या घनत्व कम या मध्यम होता है, सामान्यतः उत्पादकता स्तर कम होता है, बड़े आकार के परिवार एक संपत्ति होते हैं, जीवन प्रत्याशा कम होती है, कृषि क्षेत्र का विकास आरंभिक चरण में होता है, जनता निरक्षर होती है, तकनीकी जानकारी की कमी होती है और शहरी विकास सीमित होता है। लगभग दो सौ साल पहले, दुनिया के सभी देश इस जनांकिकीय संक्रमण के चरण में थे। वर्तमान में, यह पता लगाना मुश्किल हो सकता है कि क्या दुनिया में कोई देश अभी भी इस प्रारंभिक चरण में है क्योंकि ऐसे क्षेत्रों के लिए प्रजनन और मृत्यु दर से संबंधित डेटा या तो अनुपलब्ध होगा या विश्वसनीय नहीं होगा। इसके अलावा, आधुनिक तकनीक का प्रसार, विशेष रूप से चिकित्सा के क्षेत्र में, इतना तेज रहा है कि यह देखना मुश्किल है कि क्या कोई देश अभी भी वैश्विक स्तर पर हो रही मृत्यु दर में गिरावट से अप्रभावित है। इसी संदर्भ में पहले चरण को पूर्व–औद्योगिक और पूर्व–आधुनिक चरण कहा गया है।

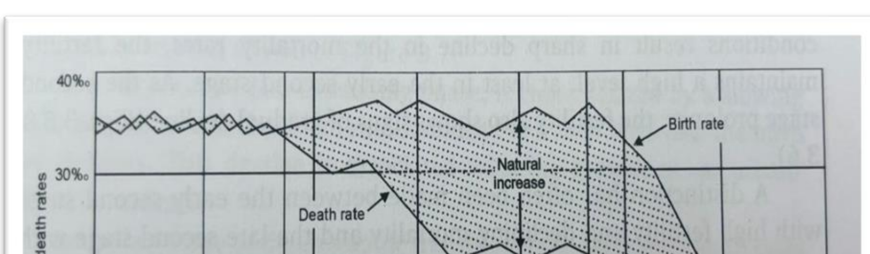

fig2:A Model of Demographic Evolution (After R. Knowles)

चरण 2: विस्तारित चरण

दूसरा चरण, विस्तारित चरण (Expanding Stage), में समाज औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की दिशा में बढ़ता है। चिकित्सा में सुधार और बेहतर पोषण के कारण मृत्यु दर घटने लगती है। हालांकि, जन्म दर उच्च बनी रहती है, जिससे जनसंख्या वृद्धि दर बढ़ जाती है। इस चरण में बाल मृत्यु दर घटती है और जीवन प्रत्याशा बढ़ती है। श्रम विभाजन और शिक्षा के प्रसार के कारण, समाज में बड़े परिवारों की आवश्यकता कम होने लगती है।

जनांकिकीय संक्रमण के दूसरे चरण की विशेषता उच्च और धीरे–धीरे घटती प्रजनन दर, जो प्रति हजार 30 से अधिक होती है, और तेजी से घटती मृत्यु दर, जो प्रति हजार 15 से अधिक होती है, से होती है। इस विस्तारशील जनांकिकीय संक्रमण चरण में, स्वास्थ्य और स्वच्छता की स्थिति में सुधार के कारण मृत्यु दर में तेजी से गिरावट आती है, जबकि प्रजनन दर कम से कम प्रारंभिक दूसरे चरण में उच्च स्तर बनाए रखती है। जैसे–जैसे दूसरा चरण आगे बढ़ता है, प्रजनन दर भी धीरे–धीरे घटती है।

अक्सर दूसरे चरण के प्रारंभिक चरण, जिसमें उच्च प्रजनन दर और घटती मृत्यु दर होती है, और दूसरे चरण के अंतिम चरण, जिसमें धीरे–धीरे घटती प्रजनन दर और तेजी से घटती मृत्यु दर होती है, के बीच एक अंतर किया गया है। दूसरे चरण में, समग्र रूप से, जनसंख्या पहले एक धीरे–धीरे बढ़ती दर पर और बाद में एक धीरे–धीरे घटती दर पर विस्तार करती है। जनसंख्या विस्फोट के मद्देनजर, जो दो महत्वपूर्ण दरों (जन्म दर और मृत्यु दर) के बीच के अंतर के साथ जुड़ा हुआ है, संसाधन जुटाने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण हो जाती है। जीवन प्रत्याशा में सुधार शुरू हो जाता है। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएँ प्रमुख हो जाती हैं। बड़े परिवार अब संपत्ति नहीं होते। परिणामस्वरूप, प्रजनन दर में धीरे–धीरे गिरावट आती है, जिससे दूसरे चरण के अंत में प्राकृतिक वृद्धि दर में धीरे–धीरे कमी आती है। दुनिया के अधिकांश विकासशील देश आधुनिक चिकित्सा और स्वच्छता उपायों की व्यापक पैठ के कारण जनांकिकीय संक्रमण के इस विस्फोटक चरण से गुजर रहे हैं, जिससे उनकी मृत्यु दर में तेजी से गिरावट आई है जबकि उनकी प्रजनन दर उच्च है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, ईरान, यमन, केन्या, इंडोनेशिया, मलेशिया आदि जैसे देश जनांकिकीय संक्रमण के दूसरे चरण की श्रेणी में हैं जहां प्रजनन दर घटनी शुरू हो गई है लेकिन चूंकि मृत्यु दर में गिरावट तेज रही है, इसलिए जनसंख्या में जबरदस्त वृद्धि हो रही है। विकासशील और विकसित देशों की जन्म और मृत्यु दर को चित्र 2 में दिखाया गया है।

चरण 3: निम्न स्थिर चरण

तीसरा चरण, निम्न स्थिर चरण (Low Stationary Stage), में प्रजनन दर भी घटने लगती है। समाज में शिक्षा और परिवार नियोजन के तरीकों के प्रसार के कारण लोग छोटे परिवारों को प्राथमिकता देने लगते हैं। मृत्यु दर स्थिर होती है और निम्न रहती है, जबकि प्रजनन दर भी घटकर निम्न स्तर पर स्थिर होती है। इस चरण में, जनसंख्या वृद्धि दर निम्न और स्थिर होती है।

चरण 4:जनसंख्या गिरावट चरण

चौथा चरण, जनसंख्या गिरावट चरण (Declining Stage), में प्रजनन दर इतनी कम हो जाती है कि यह मृत्यु दर से भी कम हो सकती है। इसका परिणाम यह होता है कि जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि दर नकारात्मक हो जाती है और जनसंख्या घटने लगती है। यह चरण समाज के अत्यधिक उन्नत होने का संकेत देता है, जहां शहरीकरण और शिक्षा के उच्च स्तर के कारण लोग बहुत छोटे परिवारों को प्राथमिकता देते हैं।

चरण 5: शून्य जनसंख्या वृद्धि

जन्म और मृत्यु दर लगभग समान, जो समय के साथ शून्य जनसंख्या वृद्धि में परिणत होगी। जनांकिकीय संक्रमण के अंतिम चरण में, दोनों जन्म और मृत्यु दर में काफी कमी आती है। जनसंख्या या तो स्थिर होती है या केवल धीरे–धीरे बढ़ती है। इस चरण में, जनसंख्या अत्यधिक औद्योगीकृत और शहरीकृत होती है। तकनीकी जानकारी प्रचुर मात्रा में होती है, परिवार के आकार पर जानबूझकर नियंत्रण आम होता है, साक्षरता और शिक्षा स्तर उच्च होते हैं, और श्रम विशेषज्ञता की डिग्री भी बहुत उच्च होती है। एंग्लो–अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, सिंगापुर, हांगकांग और जापान के देश इस जनांकिकीय संक्रमण के चरण तक पहुँच चुके हैं।

यद्यपि जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत को जनसंख्या वैज्ञानिकों द्वारा व्यापक रूप से सराहा गया है, इसे कई बिंदुओं पर आलोचना का सामना करना पड़ा है। सिद्धांत की कुछ महत्वपूर्ण आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

1. यह यूरोप, एंग्लो–अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में अनुभव किए गए अनुभवों पर आधारित है। इन देशों की सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियाँ विकासशील देशों से भिन्न हैं और इसलिए विकसित समाजों के मामले में जो सच है वह विकासशील समाजों में सही नहीं हो सकता है।
2. लॉश्की और वाइल्डकोस ने तर्क दिया कि जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत न तो भविष्यवाणीय है और न ही इसके चरण अनुक्रमिक और अनिवार्य हैं। उदाहरण के लिए, चीन ने पिछले सदी के अस्सी के दशक में चीनी सरकार द्वारा अपनाई गई सख्त एक बच्चा नीति के कारण जनांकिकीय संक्रमण के तीसरे चरण में प्रवेश किया है।
3. तकनीकी नवाचारों की भूमिका, विशेष रूप से चिकित्सा के क्षेत्र में, को कम करके नहीं आंका जा सकता है, जो मृत्यु दर को रोक सकती है।

इन सभी खामियों और कमियों के बावजूद, जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत विश्व के जनांकिकीय इतिहास का व्यापक स्तर पर सामान्यीकरण का एक प्रभावी चित्रण प्रदान करता है। ऐसे मॉडल से यह अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि संक्रमण के लिए एक विशिष्ट समय अवधि होगी, प्रजनन और मृत्यु दर के पैटर्न का एक विशिष्ट अनुक्रम होगा और प्रत्येक चरण का विशिष्ट सामाजिक–आर्थिक ताना–बाना होगा। पश्चिम में जनांकिकीय प्रवृत्ति का अवलोकन करने के आधार पर विकसित एक अनुभवात्मक सामान्यीकरण के रूप में, संक्रमण मॉडल किसी भी देश के संक्रमण प्रक्रिया को समझने में मदद करता है, बशर्ते कि स्थिति का संदर्भ ठीक से समझा गया हो। यह शैक्षणिक रूप से अनुचित होगा कि दुनिया के सभी देशों से उसी अनुक्रमिक पैटर्न का पालन करने की अपेक्षा की जाए जैसा कि यूरोपीय और एंग्लो–अमेरिकी देशों ने अनुभव किया है, क्योंकि वर्तमान संदर्भ उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय संदर्भ से महत्वपूर्ण विचलन है।

14.3 सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

जनसांख्यिकी संक्रमण के विभिन्न चरणों में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन स्पष्ट होते हैं। पहले चरण में,

कृषि प्रमुख आर्थिक गतिविधि होती है और बड़े परिवार की प्रथा होती है। दूसरे चरण में, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण श्रम विभाजन बढ़ता है और शिक्षा का प्रसार होता है। तीसरे चरण में, समाज में तकनीकी प्रगति और स्वास्थ्य सेवाओं के उन्नत स्तर के कारण प्रजनन और मृत्यु दर दोनों निम्न होते हैं। चौथे चरण में, अत्यधिक शहरीकरण और शिक्षा के उच्च स्तर के कारण जनसंख्या में गिरावट देखी जा सकती है।

औद्योगिक देशों का अनुभव

आज के औद्योगीकृत देशों द्वारा अनुभव किए गए आर्थिक विकास के दौरान जनसांख्यिकी संक्रमण की प्रक्रिया को संक्षेप में इस प्रकार समझाया जा सकता है आधुनिक युग में सभी राष्ट्र, जिन्होंने एक पारंपरिक, कृषि आधारित आर्थिक प्रणाली से एक बड़े पैमाने पर औद्योगिक, शहरीकृत आधार की ओर बढ़े हैं, ने भी उच्च मृत्यु दर और प्रजनन दर की स्थिति से कम मृत्यु दर और प्रजनन दर की स्थिति की ओर कदम बढ़ाया है।

एंसले जे. कोले और एडगर एम. हूवर ने आर्थिक विकास के साथ जुड़े जन्म और मृत्यु दर में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया है। उनकी व्याख्या इस प्रकार हैरू कृषि आधारित अर्थव्यवस्था उच्च मृत्यु दर और उच्च प्रजनन दर द्वारा विशेषीकृत होती है। मृत्यु दर आमतौर पर फसल की अनियमितता और महामारी की घटनाओं के प्रति प्रतिक्रिया में उतार–चढ़ाव होती है। ये उच्च होती है क्योंकि आहार निम्न स्तर का होता है, स्वच्छता की प्राचीन स्थिति होती है और निवारक और उपचारात्मक चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों का अभाव होता है। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में जन्म दर उच्च होती है और उच्च मृत्यु दर के प्रति एक कार्यात्मक प्रतिक्रिया होती है। इसलिए, प्रचुर प्रजनन के आदर्श इन समाजों की सामाजिक प्रणालियों, रीति–रिवाजों और विश्वासों में गहराई से समाहित होते हैं। ये आदर्श बड़े परिवारों के आर्थिक लाभों द्वारा मजबूत होते हैं।

परिवर्तन की प्रक्रिया

जैसे ही कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होने लगते हैं, यह अन्य अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भर हो जाती है, उत्पादन के उच्च स्तर पर पहुंच जाती है, और अत्यधिक औद्योगीकृत, बाजार–उन्मुख और शहरीकृत हो जाती है। जब ऐसा होता है, तो मृत्यु दर में गिरावट दर्ज होती है। जब मृत्यु दर गिरती है, तो जन्म दर भी घटने लगती है, लेकिन इसमें पर्याप्त समय लगता है। यह देरी जन्म दर में गिरावट को आर्थिक परिवर्तन के प्रति एक धीमी प्रतिक्रिया के रूप में वर्णित करती है, जो समाज में लंबे समय से प्रचलित प्रजनन की अनुकूल मान्यताओं और रीति–रिवाजों में परिवर्तन आने के बाद होती है।

जन्म और मृत्यु दर में परिवर्तन

जन्म और मृत्यु दर एक समान रूप से घटती जाती हैं, हालांकि, जन्म दर में गिरावट में थोड़ी देरी होती है। अंततः, जब मृत्यु दर में और अधिक कमी करना कठिन हो जाता है, तो जन्म दर पुनः मृत्यु दर के स्तर तक पहुंच जाती है, और जनसंख्या बहुत धीमी दर से बढ़ती है। इस चरण के दौरान, मृत्यु दर अपेक्षाकृत निम्न और अपरिवर्तित होती है, जबकि जन्म दर वर्ष दर वर्ष उतार–चढ़ाव हो सकती है क्योंकि यह मुख्य रूप से व्यक्तिगत दंपतियों के स्वैच्छिक निर्णयों पर निर्भर करती है।

14.4 जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत की आलोचना

जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत को जनसांख्यिकी इतिहास के वर्णन में एक उपयोगी सहायता के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। हालांकि, इसका योगदान सीमित माना जाता है। इस संदर्भ में कई सवाल उठते हैंरू क्या यह सिद्धांत उन बलों का सैद्धांतिक स्पष्टीकरण प्रदान कर सकता है जो जनसांख्यिकी परिवर्तनों का कारण बने, विशेष रूप से प्रजनन के संबंध में? क्या इसका कोई पूर्वानुमान मूल्य है? दूसरे शब्दों में, क्या इसका उपयोग विकासशील देशों के गुजरने वाले अनुक्रम की भविष्यवाणी करने के लिए किया जा सकता है? ऐसे सवालों ने जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत की काफी आलोचना को प्रेरित किया है।

यह ध्यान देने योग्य है कि यह सिद्धांत पश्चिमी देशों में औद्योगिक और आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों के दौरान महत्वपूर्ण दरों में बदलाव के वास्तविक अनुभव पर आधारित है। हालांकि, इस सिद्धांत के आलोचक इस बात की ओर इशारा करते हैं कि विभिन्न यूरोपीय देशों के अनुभव समान नहीं थे, क्योंकि सिद्धांत के कथन में वर्णित चरणों का अनुक्रम समान नहीं था। हाल के अध्ययन बताते हैं कि स्पेन और कुछ पूर्वी और दक्षिणी यूरोपीय देशों में, प्रजनन दर में गिरावट तब हुई जब मृत्यु दर बहुत उच्च थी। कुछ देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में, संक्रमणोत्तर चरण में वृद्धि दर शायद जनसांख्यिकी संक्रमण के चरण 2 और चरण 3 से भी अधिक थी। नोटेस्टीन का दावा कि प्रजनन दर पहले शहरी क्षेत्रों में गिरी थी, कुछ देशों में सत्य नहीं पाया गया है। उदाहरण के लिए, जिन देशों में प्रमुख रूप से ग्रामीण जनसंख्या थी, जैसे फ्रांस, स्वीडन, फिनलैंड, बुल्गारिया, उनमें जन्म दर में गिरावट उसी हद तक हुई थी जितनी कि कुछ अत्यधिक शहरीकृत देशों में, जैसे इंग्लैंड और वेल्स में। ऐसे अपवाद बताते हैं कि जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत केवल एक व्यापक सामान्यीकरण है, जो सभी पश्चिमी देशों के अनुभवों

को समाहित नहीं करता है। यह सिद्धांत 'बेबी बूम' की घटना को भी स्पष्ट नहीं कर सकता है जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के आर्थिक पुनरुद्धार और पश्चिमी देशों में हुआ था।

14.5 सिद्धांत की सीमाएं

इस सिद्धांत की एक और आलोचना इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि यह प्रजनन के एक महत्वपूर्ण बल का सैद्धांतिक स्पष्टीकरण प्रदान नहीं करता है। जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत, हालांकि, आज भी जनसांख्यिकी अध्ययन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह ऐतिहासिक घटनाओं और विकास की प्रक्रियाओं को समझने में सहायता करता है। इसके बावजूद, इस सिद्धांत को विकासशील देशों में जनसांख्यिकी परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने और भविष्यवाणी करने के लिए और अधिक शोध और अध्ययन की आवश्यकता है।

जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत जनसंख्या विज्ञान में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो यह समझने में मदद करता है कि कैसे समाज समय के साथ जनसंख्या वृद्धि के विभिन्न चरणों से गुजरते हैं। यह सिद्धांत समाज के सामाजिक–आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति के साथ जनसंख्या वृद्धि दर के परिवर्तन को दर्शाता है। विभिन्न चरणों के माध्यम से, यह सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि कैसे जन्म और मृत्यु दर के परिवर्तन जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करते हैं और समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

14.6 भारत में जनसंख्या का आकार,वृद्धि दर और जनांकिकीय संक्रमण

भारत की जनसंख्या का अध्ययन आर्थिक विकास और कल्याण की गतिशीलता को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धांत जनसंख्या के बदलाव को समझने और उसका विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करता है। भारत के पास विश्व के कुल भूमि क्षेत्र का लगभग 2.4 प्रतिशत है और यह दुनिया की लगभग 17 प्रतिशत जनसंख्या का निवास स्थल है। 2011 में, भारत की जनसंख्या 1210 मिलियन थी, जो इसे विश्व में दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बनाती है। क्षेत्रफल के आधार पर, भारत का स्थान दुनिया में सातवां है।

भारत की जनसंख्या वृद्धि दर के अध्ययन को चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

चरण–1 : 1891–1921 (स्थिर जनसंख्या)

इन 30 वर्षों के दौरान, भारत की जनसंख्या 236 मिलियन से बढ़कर 251 मिलियन हो गई। इस अवधि में उच्च जन्म दर को उच्च मृत्यु दर ने संतुलित कर दिया, जिससे जनसंख्या वृद्धि स्थिर बनी रही। कुल जनसंख्या में केवल 15 मिलियन की वृद्धि हुई और वार्षिक चक्रवृद्धि वृद्धि दर मात्र 0.19 प्रतिशत थी। यह जनांकिकीय संक्रमण का पहला चरण था, जिसमें जनसंख्या स्थिर रही। इस समयावधि में, महामारी, भूख और अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं के कारण उच्च मृत्यु दर ने जनसंख्या वृद्धि को सीमित रखा।

चरण–II:1921–1951 (स्थिरतापूर्ण वृद्धि)

जनांकिकीय संक्रमण के दूसरे चरण में, 1921 में भारत की जनसंख्या 251 मिलियन से बढ़कर 1951 में 361 मिलियन हो गई। इस अवधि में प्रति वर्ष 1.22 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर के साथ जनसंख्या में 110

तालिका :1भारत की जनसंख्या की वृद्धि 1891)– (2008

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (मिलियन में)	वृद्धि याह्रास (मिलियन में)	प्रतिशत वृद्धि या ह्रास
1891	236		
1901	236	0.0	0.0
1911	252	+16	+5.7
1921	251	- 1	-0.3
(1891–1921)		+15	+0.19
1931	279	+28	+11.0

1941	319	+40	+14.2
1951	361	+42	+13.3
(1921-1951)		+110	+1.22
1961	439	+78	+21.6
1971	548	+109	+24.8
1981	683	+135	+24.7
(1951-1981)		+322	+2.14
1991	846	+161	+23.9
2001	1029	+183	+21.5
2011	1210	+181	+17.64
(1981-2011)			

स्रोत 2001 जनगणना

मिलियन की वृद्धि हुई। मृत्यु दर 47 प्रति हजार से घटकर 27 प्रति हजार हो गई, जो मुख्य रूप से प्लेग, चेचक, हैजा जैसी महामारियों के नियंत्रण के कारण हुई, जो पहले मानव जीवन को भारी नुकसान पहुंचाती थीं। 1921 से भारत ने जनसंख्या की स्थिर लेकिन निम्न वृद्धि दर के साथ जनांकिकीय संक्रमण के दूसरे चरण में प्रवेश किया। इस समयावधि में, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार और महामारी नियंत्रण के प्रयासों ने मृत्यु दर को कम किया, जबकि जन्म दर उच्च स्तर पर बनी रही।

चरण–III: 1951–1981 (तीव्र वृद्धि)

तीसरे चरण में (1951–1981), भारत की जनसंख्या 361 मिलियन से बढ़कर 683 मिलियन हो गई। इस अवधि में वार्षिक वृद्धि दर लगभग 2 प्रतिशत थी, जिससे कुल 322 मिलियन की जनसंख्या वृद्धि हुई। आर्थिक नियोजन की शुरुआत के साथ, अस्पतालों और चिकित्सा सुविधाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ। इसके परिणामस्वरूप, मृत्यु दर में तीव्र गिरावट आई, जो 15 प्रति हजार तक पहुंच गई। हालांकि, जन्म दर समान गति से कम नहीं हुई और यह 40 से घटकर केवल 37 प्रति हजार तक ही आ सकी। इस अवधि में जनसंख्या विस्फोट देखा गया, जो उच्च प्रजनन दर और मृत्यु दर में भारी गिरावट के कारण हुआ था। इस चरण में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार ने जनसंख्या वृद्धि को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ावा दिया।

चरण–IV: 1981–2011 (धीमा होने के निश्चित संकेतों के साथ तीव्र वृद्धि)

भारत ने जनांकिकीय संक्रमण के चौथे चरण में प्रवेश किया, जिसमें उच्च जनसंख्या वृद्धि के बावजूद धीमा होने के संकेत दिखाई दिए। 1981 में कुल जनसंख्या 683 मिलियन थी, जो 2011 में बढ़कर 1210 मिलियन हो गई, जो 30 वर्षों में 77.2 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाती है। इस अवधि में जनसंख्या की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर 2.14 प्रतिशत (1991–2001) से घटकर 1.54 प्रतिशत (2001–2011) हो गई।

अधिकांश भारतीय राज्यों, जैसे केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, और असम ने इस चरण के दौरान कम जन्म दर दर्ज की। हालांकि, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, और राजस्थान जैसे राज्यों को परिवार नियोजन कार्यक्रम के पूर्ण कार्यान्वयन में कुछ और वर्षों की आवश्यकता होगी।

इस चरण में, देश ने जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन के महत्व को समझा, जिससे कुछ राज्यों में प्रजनन दर में गिरावट आई। जनसंख्या वृद्धि के इस धीमे चरण में, भारत ने प्रजनन दर को नियंत्रित करने और परिवार नियोजन के प्रयासों को बढ़ावा देने के महत्व को मान्यता दी, जिसके परिणामस्वरूप कई राज्यों में प्रजनन दर में गिरावट दर्ज की गई।

COVID–19 के चलते जनगणना 2021 के परिणामों में देरी हुई है, लेकिन वर्तमान संकेत बताते हैं कि भारत राज्य स्तर पर प्रतिस्थापन स्तर प्रजनन दर और जनसंख्या स्थिरीकरण की दिशा में तेजी से प्रगति कर रहा है। हाल के सर्वेक्षणों के अनुसार, अधिकांश भारतीय राज्यों में प्रजनन दर 2.1 के प्रतिस्थापन स्तर से काफी नीचे गिर चुकी है, और देश खुद प्रतिस्थापन के करीब पहुँच रहा है। 2017 में, भारत की कुल प्रजनन दर 2.2 थी। इन परिणामों से यह जाहिर होता है कि भारत के परिवार नियोजन और जनसंख्या नियंत्रण प्रयास तेजी से प्रभावी हो रहे हैं, और जनसंख्या स्थिरीकरण की ओर बढ़ रहा है।

14.7 निष्कर्ष

भारत की जनसंख्या वृद्धि और जनांकिकीय संक्रमण के चरणों का अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कैसे देश ने समय के साथ विभिन्न जनांकिकीय चरणों को पार किया है। पहले चरण में उच्च जन्म और मृत्यु दर के साथ स्थिर जनसंख्या, दूसरे चरण में स्थिरतापूर्ण वृद्धि, तीसरे चरण में तीव्र जनसंख्या वृद्धि और चौथे चरण में धीमी होती वृद्धि दर के संकेत मिले हैं। प्रत्येक चरण में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और चिकित्सा कारकों ने जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित किया है। वर्तमान समय में, भारत ने प्रतिस्थापन स्तर प्रजनन दर की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जिससे भविष्य में जनसंख्या स्थिरीकरण की उम्मीद की जा सकती है।

भारत की जनसंख्या नीति और परिवार नियोजन कार्यक्रमों ने भी इस जनांकिकीय संक्रमण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सरकार द्वारा चलाई गई जागरूकता अभियानों और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण, लोगों ने छोटे परिवार के महत्व को समझा है। इसके अलावा, शिक्षा और महिला सशक्तिकरण ने भी जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आने वाले वर्षों में, यदि यह प्रवृत्ति जारी रहती है, तो भारत स्थिरीकरण के चरण में प्रवेश कर सकता है, जहां जनसंख्या वृद्धि दर में और गिरावट आएगी। यह आर्थिक विकास और संसाधनों के प्रबंधन के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होगा। हालांकि, इसके लिए निरंतर प्रयास और नीतिगत समर्थन की आवश्यकता होगी ताकि जनसंख्या वृद्धि को स्थिर और नियंत्रित रखा जा सके।

अंततः, भारत की जनसंख्या गतिशीलता के इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कैसे विभिन्न चरणों और नीतियों ने देश की जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित किया है और आने वाले समय में इस दिशा में और भी सुधार की संभावना है।

14.8 बोध प्रश्न

1. जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत के अनुसार, निम्नलिखित में से किस चरण में जन्म दर और मृत्यु दर दोनों उच्च होते हैं?
   a) पहला चरण
   b) दूसरा चरण
   c) तीसरा चरण
   d) चौथा चरण
2. जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत का चौथा चरण निम्नलिखित में से किसके साथ जुड़ा है?
   a) उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु दर
   b) उच्च जन्म दर और निम्न मृत्यु दर
   c) निम्न जन्म दर और निम्न मृत्यु दर
   d) निम्न जन्म दर और उच्च मृत्यु दर
3. जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत के अनुसार, निम्नलिखित में से किस चरण में जनसंख्या वृद्धि सबसे अधिक होती है?

a) पहला चरण

b) दूसरा चरण

c) तीसरा चरण

d) चौथा चरण

4. निम्नलिखित में से कौन सा कारक जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत के दूसरे चरण में मृत्यु दर में गिरावट का कारण बनता है?

a) उच्च जन्म दर

b) चिकित्सा उन्नति और स्वच्छता में सुधार

c) उच्च मृत्यु दर

d) कृषि सुधार

5. जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत के किस चरण में जनसंख्या स्थिर हो जाती है?

a) पहला चरण

b) दूसरा चरण

c) तीसरा चरण

d) चौथा चरण

6. निम्नलिखित में से कौन सा कथन जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत के तीसरे चरण के बारे में सही है?

a) उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु दर

b) उच्च जन्म दर और निम्न मृत्यु दर

c) जन्म दर में गिरावट और मृत्यु दर निम्न

d) निम्न जन्म दर और उच्च मृत्यु दर

14.9 अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत के मुख्य चरण कौन–कौन से हैं?
2. जनसांख्यिकीय संक्रमण प्रक्रिया के दौरान जन्म दर कैसे बदलती है?
3. जनसांख्यिकीय संक्रमण के दूसरे चरण में मृत्यु दर में गिरावट के सामान्यतः कौन से कारण होते हैं?
4. जनसांख्यिकीय संक्रमण के तीसरे चरण में जन्म दर में गिरावट क्यों शुरू होती है?
5. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत विकासशील और विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि के रुझानों को कैसे समझाता है?

14.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत के चरणों की विस्तृत चर्चा करें, जिसमें प्रत्येक चरण की विशेषताएं और जन्म और मृत्यु दर में बदलाव को प्रेरित करने वाले समाजशास्त्रीय और आर्थिक कारक शामिल हों। ये कारक विकसित और विकासशील देशों के बीच कैसे भिन्न होते हैं?

2. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत का जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है? उच्च जन्म और मृत्यु दर से निम्न जन्म और मृत्यु दर में संक्रमण का श्रम बाजार, स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियाँ, और सामाजिक संरचनाओं पर अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रभाव क्या होते हैं?
3. जनसांख्यिकीय संक्रमण और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संबंध की जांच करें। जनसांख्यिकीय संक्रमण के विभिन्न चरणों से संबंधित जनसंख्या आकार और आयु संरचना में बदलाव संसाधन उपयोग, कचरा उत्पादन, और पर्यावरणीय क्षति को कैसे प्रभावित करते हैं?
4. आधुनिक वैश्विक जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियों के संदर्भ में जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत की प्रासंगिकता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें। क्या ऐसे कोई क्षेत्र या देश हैं जहां यह सिद्धांत पूरी तरह से लागू नहीं होता? इन विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए कौन से वैकल्पिक स्पष्टीकरण या संशोधन आवश्यक हो सकते हैं?
5. जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत औद्योगिक–पूर्व चरण से लेकर औद्योगिक–उत्तर चरण तक जनसंख्या वृद्धि के पैटर्न में बदलाव को कैसे समझाता है? संक्रमण के विभिन्न चरणों में स्थित देशों के उदाहरण प्रदान करें।
6. जनसांख्यिकीय संक्रमण के दूसरे चरण में मृत्यु दर में गिरावट के प्रमुख कारण क्या हैं? विकसित और विकासशील देशों में ये कारण कैसे भिन्न होते हैं?
7. एक विकसित क्षेत्र और एक विकासशील क्षेत्र से दो देशों के जनसांख्यिकीय संक्रमण अनुभवों की तुलना और विरोधाभास करें। उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, और नीति संबंधी भिन्नताओं ने उनके जनसांख्यिकीय परिवर्तनों को कैसे प्रभावित किया है?

14.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Chandana, R.C.: Geography of Population: Concept, Determinants and Patterns, Kalyani Publishers, 2000.
2. C.P. Blacker, "Stages in Population Growth," The Eugenics Review, Vol. 39. No. 3, October 1947, pp. 88-101.
3. Frank W. Notestein, "Population: The Long View," Theodore Schultz (Ed.), Food for the World, Chicago: The University of Chicago Press, 1945, pp. 36-57.
4. Frank W. Notestein."The Economic Problems of Population Change," Proceedings of the Eight International Conference of Agricultural Economists, 1953, London: pp. 15-18.
5. Chandana, R.C.: Geography of Population: Concept, Determinants and Patterns, Kalyani Publishers, 2000.
6. Bloom, David (2011): 'Population Dynamics in India and Implications for Economic Growth", PGDA, Harvard School of Public Health. Working paper no. 65.
7. Dreze, Jean and Amartya Sen (2013). An Uncertain Glory India and its Contradiction. Penguin.
8. Kapila, Uma (2017). 'Demography and Development", Academic Foundation Publication.
9. Hussain, M. (2007). Models in Geography. Rawat Publications, New Delhi.
10. Maurya, S. D., & Shalini. (2022). Models, Theory and Laws in Human Geography. Pravalika Publications, Prayagraj.
11. Bhende Asha A. & Kanitkar Tara (2015). 'Principles of Population Studies", Himalaya Publishing Hou

इकाई – 15
संघवाद की संकल्पना तथा भौगोलिक आधार

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 विषय प्रवेश

15.3 संघवाद की संकल्पना

15.4 संघवाद की प्रकृति

15.5 संघवाद की वांछनीयता के आधार

15.6 संधीय तंत्रों की अवधारणा

15.7 संघ, परिसंघ तथा सम्मेल

15.7.1 संघ

15.7.2 परिसंघ

15.7.3 सम्मेल

15.8 साहचर्य तथा संगठन

15.8.1 साहचर्य

15.8.2 संगठन

15.9 संघात्मक राज्यों के प्रकार

15.10 संघवाद की असफलता

15.11 विश्व के संघीय राज्य

15.12 संघवाद के भौगोलिक आधार

15.13 संघीय राज्यों की स्थापना के प्रमुख भौगोलिक कारक

15.14 भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधार

15.15 सारांश

15.16 शब्दसूची

15.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

15.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

15.19 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु

15.0 प्रस्तावना :–

राजनीतिक भूगोल विषय के पाठ्यक्रम की यह सातवीं इकाई है। इसमें आप संघवाद की संकल्पना और उसके भौगोलिक आधारों का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः कुशल राजनीतिक प्रबन्धन से उपजी अनेकता में एकता की शासन व्यवस्या को संधीय राज्य व्यवस्था कहते हैं। यह एक त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था होती है जिसमें केन्द्रीय एवं स्थानीय स्तरों के बीच प्रांतीय स्तर पर स्वायत्त प्रादेशिक सरकारों का अस्तित्व होता है। वास्तव में संघवाद'

शब्द 'सह अस्तित्व का घोतक है लेकिन भूगोलविदों में इसके संकल्पनात्मक स्वरूप को लेकर पर्याप्त मतभेद है। ऐसी स्थिति में एक राजनीतिक भूगोल के विद्यार्थी को संघवाद भी मूलभावना से परिचित होना आवश्यक है, इसीलिए इस इकाई में संधवाद के विविध पक्षों को विस्तार से प्रस्तुत किया जा रहा है। विद्याथियों के ज्ञान को संपुष्ट बनाने के उद्देश्य से यहाँ संघवाद के भौगोलिक आधारों की भी विस्तृत समीक्षा की जा रही है। एक संधात्मक राज के रूप में भारतीय शासन प्रणाली का मूल्यांकन भी इस इकाई में प्रस्तुत किया जायेगा जो विद्यार्थियों के संघात्मक शासन प्रणाली सम्बन्धी ज्ञान में अभिवृद्धि करेगा।

15.1 उद्देश्य :–

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. संघवाद की मूलभावना से विद्यार्थियों को परिचित कराना।

2. संघवाद की प्रकृति और उसकी वांछनीयता के आधारों को स्पष्ट करना।

5. संघीय शासन प्रणाली के विभिन्न पक्षों से विद्यार्थियों को अवगत करना।

4. संघवाद के भौगोलिक आधारों की समीक्षा से विद्यार्थियों के राजनीतिक– भौगोलिक ज्ञान में अभिवृद्धि करना।

5. भारतीय संघवाद के मूल्यांकन के माध्यम से विद्यार्थियों को भारतीय संघीय शासन प्रणाली के प्रति अभिरुचि पैदा करना।

15.2 विषय प्रवेश :–

राज्य पद्धति और उसका शासन स्वरूप' राजनीतिक भूगोल के अध्ययन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय वस्तु है। किसी राज्य की राज्य पद्धति (Polity) उस राज्य की राजनीतिक शक्तियों के क्षेत्रीय एवं कार्यात्मक विभाजन का परिणाम होती है तथा वह राज्य के विभिन्न भागों की भौतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक–विधिक विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करती है। शासन' सामाजिक व्यवस्था की अनिवार्य शर्त है। व्यवस्था के अभाव में कोई समाज समग्र इकाई नहीं बन सकता। शासन मूलतः संस्थाओं पर आधारित प्रक्रिया और व्यवस्था है जिसके माध्यम से राज्य के नागरिकों के आपसी सम्बन्धों एवं उनके बीच होने वाले विविध सम्बन्धों को समग्रता और अनुशासन बद्धता प्राप्त होती है। यह समग्रता और अनुशासन बद्धता ही किसी राज्य का राजनीतिक भू–दृश्य' विकसित करती है। सैद्धान्तिक स्तर पर लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में दो भिन्न–भिन्न प्रकार की शासन पद्धति और तदनुरूप दो अलग–अलग प्रकार की संवैधानिक व्यवस्थाओं का प्रचलन है। एक को एकात्मक राज्य व्यवस्था (Unitary Polity) तथा दूसरी को संघीय राज्य व्यवस्था (Federal Polily) की संज्ञा दी गई है।

राजनीतिक शक्तियों का केन्द्रीकरण जब एक ही स्थान पर होता है, तो एकात्मक राज्य व्यवस्था का जन्म होता है ऐसे राज्य प्रायः छोटे आकार के होते है। इस व्यवस्था में केन्द्रीय व्यवस्थापिका, केन्द्रीय कार्यपालिका और केन्द्रीय न्यायपालिका सर्वोच्च होती है। जनसंख्या–संरचना, उसने ऐतिहासिक संस्कार, भाषा, साहित्य, धर्म एवं समरस जीवनमूल्य राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ प्रायः एक जैसे रहते है वहा एकात्मक राज्य व्यवस्था सफल द्विस्तरीय केन्द्रीय एवं स्थानीय प्रणाली वाली एकात्मक राज्य व्यवस्था में अपकेन्द्रीय (Centrifugal) शक्तियाँ, जो राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में मिलती है, जब प्रभावहीन हो जाती है, तब एकात्मक राज्य व्यवस्था दीर्घकालीन एवं स्थाई होती है। फ्रांस ऐसी केन्द्रीकृत ऐकिक राजनीतिक इकाई का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके विपरीत वृहत् आकार वाले राज्यों में अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक कारणों से अन्तर्क्षेत्रीय विविधताएँ अधिक मुखर होती हैं। वहाँ सम्पूर्ण राज्य को पूर्णतया केन्द्रीकृत सूत्र में बाँधे रखना कठिन कार्य होता है। ऐसे राज्यों में राजनीतिक प्रबन्धन ऐसी शासन व्यवस्या को जन्म देता है जो अनेकता में एकता का संचार कर सके और क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक असंतोष को "जन्म दिए बिना राज्य के केन्द्रीय मूल्यों और उद्देश्यों के प्रति नागारिकों को अधिक आस्थावान बना सके। कुशल राजनीतिक प्रबन्धन से उपजी इसी शासन व्यवस्था को संघीय राज्य व्यवस्था कहते हैं। यह त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था होती है जिसमें केन्द्रीय स्थानीय स्तरों के बीच प्रांतीय स्तर पर स्वायत्त प्रादेशिक सरकारों का अस्तित्व होता है। इस सम्पूर्ण त्रिस्तरीय राजनीतिक व्यवस्था का अंतिम सन्दर्भ विन्दु राष्ट्रीय संविधान है जिसकी रचना राज्य अपनी ऐतिहासिक और साँस्कृतिक धरोहर और अपने भौगोलिक एवं समाजिक अनुकूल है। यही संघवाद (federalism) है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए संघवाद वृहदाकार राज्यों की एक

भूराजनीतिक आवश्यकता है क्योंकि यही एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था है जो क्षेत्रीय आधार पर सक्रिय अपकेन्द्रीय शक्तियों को प्रभावशाली ढंग से समायोजित कर सकती है। भारत, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं स0रा0 अमेरिका इसके अद्भुत उदाहरण है।

15.3 संघवाद की संकल्पना (Concept of Federalism) :–

हिन्दी भाषा का 'संघवाद शब्द अंग्रेजी भाषा के ' Federallism शब्द का हिन्दी अनुवाद है। ''Federal' शब्द की उत्पन्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Foederi' (फोडेरिस) शब्द से हुई है जिसका अर्थ League' अर्थात' संघ' होता है। संघवाद' शब्द सह–अस्तित्व का द्योतक है। इसका प्रयोग आन्तरिक विविधता युक्त उन राजनीतिक इकाइयों के लिए किया जाता है जो अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए विविधता के बावजूद भी संघीय एकता को स्वीकार करती है। संघवाद पर उपलब्ध साहित्य की समीक्षा से ज्ञात होता है कि भूगोलविदों में संघवाद की परिभाषा और उसके संकल्पनात्मक स्वरूप को लेकर पर्याप्त मतभेद है। लेकिन इस तथ्य पर प्रायः सभी विद्वान एक मत हैं। कि संघवाद की संकल्पना के अभ्युदय का इतिहास लगभग 255 वर्ष से अधिक पुराना है। इसका प्रादुर्भाव 115815 ई0में तब हुआ जब संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की घोषणा हुई। तब से लेकर अब तक अनेक विद्वानों ने संघवाद और उसके संकल्पनात्मक स्वरूप पर अलग–अलग ढंग से अपने विचार प्रकट किए हैं।

के0डब्ल्यू0 राबिन्सन (1961) के अनुसार – संघात्मक व्यवस्था सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक सार्थक व्यवस्था है जो क्षेत्रीय विभिन्नताओं के अस्तित्व तथा संधटक क्षेत्रो के वैयक्तिक चरित्र कायम रखने की माँग को स्वीकार कर लेने पर आधारित है।

के0सी0 हीयर (1965) के अनुसार – संघीय संविधान में सरकार की शक्ति सम्पूर्ण देश कि सरकार एवं देश के विभिन्न भागों की सरकार के बीच मे इस प्रकार विभक्त होती है कि प्रत्येक सरकार अपने क्षेत्र में विधिक रूप से स्वतंत्र होती है।

एन० जे० जी पाउण्ड्रात (1965) के अनुसार – 'संघीय सिद्धांत एक सरकारी उपाय है जिसके जरिए संघटक प्रदेशों को प्रशासन में कुछ हद तक स्वायत्तता देते हुए वाह्य एकता को बनाए रखा जाताहै।

डब्ल्यू० एच० राइकर (1964) के अनुसार – किसी भी देश का संघीय संविधान पूर्व केन्द्रीयकरण की पक्षधर शक्तियों एवं अधिकतम क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग करने वाली क्षेत्रीय शक्तियों के बीच मोल–भाव के आधार पर निर्मिति व्यवस्था है।... यह अभिकेन्द्री और अपकेन्द्री बलों के बीच एक समझौता है।

एफ० न्यूमान (1965) के अनुसार – 'संघवाद एक ऐसी युक्ति है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रतिस्पर्धी इकाइयों के द्वारा शक्ति के गलत उपयोग को नियंत्रित किया जाता है। इसमे नागरिक दोहरी न्याय प्रणाली–एक संघ सरकार के तथा दूसरा प्रान्तीय सरकार के अधीन रहता है।

सी०डी० टार्लटन (1965) के अनुसार – 'संघीय सम्बन्ध का वास्तविक अर्थ इस पद्धति में विभिन्नता युक्त क्षेत्रीय इकाइयों का समायोजन है।

एच० जे० डी ब्लिज (1980's) के अनुसार – 'संघात्मक ढाँचे में एक केन्द्रीय सरकार होती है जो राज्य के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करती है तथा अनेक सामान्य विषय, जैसे– रक्षा, विदेशी सम्बन्ध, संचार आदि को संचालित करती है तथा राज्य की विभिन्न इकाइयों अपना अस्तित्व रखती हैं, राजस्व वसूली करती है तथा अपने कानून बनाती है।

आर 0डी0 दीक्षित (2000) के अनुसार – संघीय व्यवस्था एक विशिष्ट प्रकार की संविदा (Contract) का परिणाम है। अन्य प्रकार की संविदा की भाँति इस राजनीतिक संविदा की शर्तें भी लिखित रूप में होनी अनिवार्य हैं। देश का संघीय संविधान यही लिखित शर्तनामा है जिसका अनुपालन केन्द्रीय और क्षेत्रीय सरकारों के लिए समान रूप से अनिवार्य है तथा जिसकी शर्तों को एक पक्षीय निर्णय से नहीं बदला जा सकता।.... इस तरह संघीय व्यवस्था एक विशेष प्रकार की ऐतिहासिक–सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु निर्मित ''व्यवस्था है। यह एक सोद्देश्य प्रक्रिया है, न कि एक स्थूल अचलकृति। विद्वानों' के उपरोक्त विभिन्न मतों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघवाद की संकल्पना प्रादेशिक विविधताओं को संरक्षित तथा अभिकल्पित करने के साथ–साथ उसको अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग की सुविधा प्रदान करने वाली एक सफलतम विधि है। विविधता एवं असमानता की समस्या को

हल करने के लिए यह संकल्पना एक सार्वभौम उत्तर है। टार्लटन (1965) ने (संघवाद की संकल्पना को मुख्य सर्व रोग हर औषधि (Panace) के रूप में स्वीकार किया है वास्तव में संघवाद ऐसी गतिशील भू–राजनीतिक संकल्पना है, जिसकी राजनीतिक प्रणाली सबसे अधिक लचीली होती है और बदलते हुए स्थानिक राजनीतिक सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तनशील होती है।

15.4 संघवाद की प्रकृति (Nature of Federalism) :–

उपलब्ध साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि राजनीतिक भूगोल में संघवाद की प्रकृति पर बहुत गहराई से बहुत कुछ नहीं कहा गया है। परिणाम स्वरूप इसकी प्रकृति और स्वरूप के प्रति भ्रामक स्थिति बनी रहती है। आर0डी0 दीक्षित (2000) के अनुसार 1989 में भारत में मिली–जुली सरकारों द्वारा केन्द्र में सत्ता संभालने के बाद तथा सत्ता में क्षेत्रीय दलों की प्रमुख भागीदारी के परिणाम स्वरूप यह भ्रम और भी गहन हो गया है। फिर भी कुछ ऐसे बिन्दु है जो संघवाद की प्रकृति के मूल में हैं और उनके विषय में राजनीतिक भूगोलविदों में मतैक्य है। संघवाद भी प्रकृति के प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं–

1. संघवाद एक ऐसी परिकल्पना है जिसके द्वारा राज्य राष्ट्र में समायोजित होते हैं अथवा राष्ट्र का समायोजन राज्य के साथ होता है ।
2. संघवाद तब विकसित होता है जब संघ के लिए उत्सुक राजनीतिक इकाइयों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सुरक्षात्मक हित सम्मान होते हैं।
3. राजनीतिक इकाइयाँ एकसंघ रूप में तब मिलती हैं जब केन्द्राभिमुखी शाक्तियाँ केन्द्रोपसारी शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं
4. केन्द्राभिखी और केन्द्रीपसारी शक्तियों को संतुलित रखना संघवाद की मूल प्रकृति। एकता के स्थान पर सहअस्तित्व को सक्षम बनाना संघवाद का मूल स्वाभाव है;
5. राज्य विचार संघीय व्यवस्था की जीवन–संजीवनी है। संघवाद का सृजन ही राज्य विचार को विकसित करने के लिए किया गया है;।
6. संघवाद अत्यधिक क्षेत्रीय विविधता वाले राज्य के लिए केन्द्राभिमुख–सह–राज्य विचार का वाहक है;
7. संघवाद की प्रकृति और संतुलन समय सापेक्ष होता है। यह गतिशील संकल्पना है; ।
8. प्रादेशिकता की भावना संघवाद के विकास का मूल है। यह भावना राजनीतिक इकाइयों को एक सूत्र में बाँधने का काम करती है;।
9. प्रायः उपनिवेश के विघटित क्षेत्रों पर विकसित संघवाद भौगोलिक रूप से अभिव्यक्त–शील नहीं होता। ऐसे संघ स्वेच्छाचारी संघवाद के पोषक होते हैं;।
10. निरंतर विकासशील व्यवस्था संघवाद की स्वाभाविक प्रकृति है;।
11. संघवाद में राजनीतिक इकाइयाँ पूर्ण एकता और पूर्ण पृथकता के बीच मध्यम मार्ग का अनुसरण करती हैं और इसका ही भू–राजनीतिक परिणाम होता है–संघ।

15.5 संघवाद की वांक्षनीयता के आधार (Bases of Desirability of federalism) :–

कुछ निश्चित भौगोलिक दशाएं संघवाद की वांछनीयता के लिए आधार का सूजन करती है, यथा –

1. **शक्ति नियंत्रण** – अपनी भौगोलिक विविधताओं के कारण जब कोई एकात्मक राज्य केन्द्रोपसारी शक्तियों के प्रभाव में आकर विखराव व विखण्डन की स्थिति में आता है तो वह राज्य को एक राजनीतिक इकाई के रूप में बनाये रखने के लिए संघीय शासन प्रणाली की ओर उन्मुख होता है। अधिकांश मामलों में संघीय प्रणाली केन्द्रोपसारी शक्तियों को नियंत्रित करने में सक्षम सिद्ध होती है। डी ब्लिज (19152) के अनुसार संघीय ढाँचा केन्द्रोपसारी शक्तियों का सामना करने में समर्थ हैं। यह इस (संघीय) प्रणाली की उपयुक्तता एवं वांछनीयता का परिचायक है।

2. **राज्य का आकार** – प्रायः बड़े आकार वाले राज्यों में प्रादेशिक तौर पर समूहिक विविधता व्याप्त रहती है। संचार व्यवस्था अविकसित मिलती है, सम्पर्क स्थापित करने में बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं, परिणामतः राज्य के विस्तृत भू–भागों पर प्रशासनिक नियंत्रण प्रभावहीन रहता है। ऐसे राज्यों के लिए संघीय ढाँचा ही अधिक वांछनीय होता है जो सम्पूर्ण राज्य में अपनी प्रान्तीय सरकारों के माध्यम से प्रभाव – पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सकता है।

3. **राज्य की आकृति** – राज्य की आकृति भी संघवाद की वांछनीयता का एक प्रमुख आधारभूत कारक है। यदि कोई एकात्मक राज्य 'लम्बाकार आकृति' वाला है तो वह केन्द्रोपसारी शक्तियों का स्रोत हो सकता है जिससे राज्य के आन्तरिक प्रशासन के लिए समस्यायें' खड़ी हो सकती हैं। अतः केन्द्रोपसारी शक्तियों को निष्क्रिय करने के लिए तथा क्षेत्र को विखण्डन से बचाने के किए संघीय ढाँचे के अन्तर्गत क्षेत्रीय स्वशासन ही एक मात्र उपाय होता है। इसी तरह यदि कोई राज्य अपखण्डित आकृति वाला है, जनसंख्या में एकरूपता नहीं है, धार्मिक, प्रजातीय तथा भाषाई विविधता है, तो ऐसी भौगोलिक परिस्थितियों से उत्पन्न केन्द्रोपसारी शक्तियों को प्रभावहीन करने के किए संघीय शासन प्रणाली ही उपयुक्त एवं वांछनीय होती है। दीर्घवृत्तीय आकृति वाले राज्यों के लिए भी संघीय ढाँचा सुप्रभाव्य एवं उपयुक्त होता है। ब्राजील, चिली देश इसने सर्वोत्तम उदाहरण है।

4. **अधिक क्रोड क्षेत्रों की उपस्थिति** – किसी राज्य में बहुक्रोड क्षेत्रों की उपस्थिति भी केन्द्रोपसारी शक्तियों को बल प्रदान करती है और वे क्रोड क्षेत्र अपनी भाव प्रवणता एवं विशिष्ट जीवन पद्धति के कारण अपनी अस्मिता को क्षेत्रीय अभिव्यक्ति देने लगते हैं और राज्य की एकता के लिए संकट बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में संघीय प्रणाली ही उन्हें एक सामान्य तंत्र के अधीन लाकर एकता एवं अनेकता का सह–अस्तित्व कायम कर सकती है। डी ब्लिज के अनुसार– ' केवल संघीय संविधान द्वारा ही विभिन्नता वाले प्रदेशों को एक साथ जोड़े रखा जा सकता है।

5. **विरल जनसंख्या वाले विशिष्ट जनसमूह** – अल्प जनसंख्या और विशाल क्षेत्रों वाले राज्यों में अलग–अलग भौगोलिक परिस्थितियों में विकसित विशिष्ट जनसमूह भी राज्य की एकता एवं अखण्डता में बाधक हो सकते हैं, कारण कि प्रत्येक विशिष्ट जन समूह में क्षेत्रीय भावना बहुत प्रबल होती है। राबिन्सन (1961) के अनुसार–वृहत् क्षेत्र एवं छोटी जनसंख्या वाले राज्यों अथवा बड़ी जनसंख्या जिसका संकेन्द्रण विस्तीर्ण रूप से हुआ हो, के लिए संघीय प्रणाली स्पष्ट रूप से उपयुक्त है।

सारांशत :–

संघवाद उन राज्यों के लिए भी वांछनीय है, जहाँ :–

- विभिन्न प्रजातीय मूल एवं भाषा के लोग निवास करते हैं;
- जहाँ साँस्कृतिक एवं धार्मिक विविधताएं विद्यमान हों;
- जहाँ के निवासी अपने व्यक्तिगत क्षेत्र को गृहक्षेत्र (Home Land) के रूप में देखते हों, और उनकी भावनाएं उसके साथ गहराई से जुड़ी हों;
- जहाँ कठोर एवं प्रखर धार्मिक विभेद की स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हों।
- संघवाद उन राज्यों के लिए भी भौगोलिक आवश्यकता बन जाता है जिनका आधार धर्म निरपेक्षता होता है।

15.6 संघीय तंत्रों की अवधारणा (Concept of federal Systems) :–

सी0 डी0 टार्लटन ने सन् 1965 ई0 में अपने शोध लेख (Symmetry and Asymmetry as Elements of Federation:A Theoretical speculation) में संघवाद की भौगोलिक प्रकृति के आधार पर संघवाद की दो अवधारणाओं का प्रतिपादन किया है

(1) सममित अवधारणा **(2)** असममित अवधारणा

1 **सममित अवधारणा (Symmetrical Concept)** :– सममित का अर्थ वे सामान्य विशेषताएं हैं जिसमें सभी अंगीभूत इकाइयाँ समानरूप से हिस्सेदार होती है। **टार्लटन (1965) के अनुसार**– ''एक आदर्श सममित संघीय व्यवस्था

वह होती है, जो वैसी राजनीतिक इकाइयों से निर्मित है जिसका क्षेत्र, जनसंख्या, आर्थिक विशेषताएँ, जलवायु दशाएँ, सांस्कृतिक प्रारूप, सामाजिक समुदाय तथा राजनीतिक संगठन समान हो। सममित संघीय व्यवस्था के इस मॉडल में प्रत्येक राजनीतिक इकाई सम्पूर्ण संघीय व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को लघुरूप में प्रतिविम्बित करती है। महत्वपूर्ण मुद्दों पर, राजनीतिक–तंत्र तथा संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में अंगीभूत इकाइयों के बीच कोई मतभेद नहीं होता।" टार्लटन की यह भी अवधारणात्मक मान्यता थी कि इस मॉडल में किसी खास सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक विशिष्टताओं का कोई अस्तित्व नहीं होता बल्कि केन्द्र व राज्य सरकारों के मध्य शक्ति का विभाजन प्रत्येक मामले में समान होता है।।

2. **असममित अवधारणा (Asymmetrical Concept)** :– असममित का अर्थ वे सामान्य विशेषताएं जिसमें सभी अंगीभूत इकाइयाँ समान रूप से हिस्सेदार नहीं होती। **टार्लटन (1965) के अनुसार**– ''असममित संघीय व्यवस्था वैसी राजनीतिक इकाइयों से निर्मित होती है जिनके हितों; प्रकृति, बनावट तथा समाज में विविधता हो। इस प्रकार की संघीय व्यवस्था विशिष्ट राज्यों द्वारा सृजित होती हैं जिसमें प्रत्येक की अलग–अलग समस्यायें तथा प्रतिस्पर्धात्मक हित रहते हैं। इसमें केन्द्र– राज्य संघर्ष की संभावना रहती है तथा कभी–कभी समाधान कठिन हो जाता है।"

किसी अंगीभूत राजनीतिक इकाई का संघ से सम्बन्ध, जिसका वह सदस्य है, सममित है अथवा असममित है, इसका निर्णय निम्नलिखित पाँच विशेषताओं के प्रारूप से निर्णीत होता है –

(i) संघ की जातीय विशेषता

(ii) संघ की सामाजिक विशेषता,

(iii) संघ की साँस्कृतिक विशेषता,

(iv) संघ की आर्थिक विशेषता, एवं संघ की राजनीतिक विशेषता ।

सारांशतः उन राज्यों में संघीय प्रणाली उपयुक्त होती हैं। जहाँ राज्य में समान (सममित) विशेषताएँ मिलती है। इसके विपरीत जहाँ पर पर्याप्त राजनीतिक शक्ति तथा प्रेरणा युक्त विविधता के तत्वों का अभाव होता है, वहाँ एकात्मक तथा केन्द्रीयकृत व्यवस्था बेहतर सिद्ध होती है।

15.7 संघ, परिसंघ तथा सम्मेल (federation, Confederation and Union) :-

संघ' और 'परिसंघ' दो ऐसे शब्द है, जिनका प्रयोग' राजनीतिक विश्लेषको के द्वारा प्रायः पर्यायवाची के रूप में होता है। राजनीतिक व्यवस्थाओं से जुड़े हुए ये दोनों शब्द व्युत्पत्ति में समानार्थी हैं और उनकी राजनीतिक संरचना भी एक ही प्रकार की है, लेकिन राजनीति तथा विधि के शास्त्रीय विमर्श में दोनों की परिभाषाएं सर्वथा भिन्न हैं।

15.7.1 संघ (Federation) :–

के० सी० हीयर (1965) के अनुसार – संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य का संविधान केन्द्र सरकार को उसके विनिर्दिष्ट कार्य क्षेत्र में राज्य के सभी भागों में स्वतंत्र प्रशासकीय निर्णय का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है। इस व्यवस्था में राज्य के नागरिक एक साथ ही द्विस्तरीय राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया के प्रभाव क्षेत्र में रहते हैं, एक केन्द्रीय तथा दूसरा क्षेत्रीय (प्रान्तीय)। दोनों स्तर एक–दूसरे के कार्य क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकते। **आर०डी० दीक्षित (2000) अनुसार** – 'एक संघ में राज्य के लोगों एवं केन्द्र सरकार के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है जो केवल इनके गठन में ही भाग नहीं लेते, बल्कि अपने कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित विधि सम्मत सूत्रों को प्रादेशिक सरकार की मध्यस्थता के बिना केन्द्र सरकार के सम्मुख प्रस्तुत भी कर सकते हैं।

15.7.2 परिसंघ (Confederation) –

के0 सी0 हीयर (1965) के अनुसार – 'परिसंघ स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों का एक ऐसा संघ है जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सत्ता विभिन्न क्षेत्रीय सत्ताओं पर निर्भर होती है। केन्द्रीय सत्ता ऐसा कोई निर्णय नहीं ले सकती जो प्रत्येक राजनीतिक इकाई को पूरी तरह स्वीकार्य न हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि परिसंघ के संविधान में क्षेत्रीय सरकारों पर केन्द्र सरकार की निर्भरता का सिद्धांत समाविष्ट होता है। परिसंघ में सभी प्रादेशिक या क्षेत्रीय

सरकारें अपनी सम्प्रभुता बनाये रखती हैं। केन्द्रीय सत्ता उस प्रादेशिक इकाई पर इकाई छोटी हो या बड़ी अपना निर्णय आरोपित नहीं कर सकती। इसमें प्रभुता का विभाजन भी नहीं होता।

संक्षेप में 'संघ' और परिसंघ में मूलभूत अन्तर यह है कि– 'संघ (फेडरेशन) स्वायत्त क्षेत्रों के संयोग से निर्मित एक प्रभुता सम्पन्न और सन्निहित राष्ट्रीय इकाई है, जबकि 'परिसंघ' (कॉनफेडरेशन) स्वतंत्र राज्यों के आपसी समझौते के आधार पर निर्मित अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक व्यवस्था है' (आर0 डी0 दीक्षित, 2000)।

15.7.3 सम्मेल (Union) –

सम्मेल एक ऐसी एकात्मक राजनीतिक इकाई है जो सीधे केन्द्र सरकार से शासित होती है। इस एकात्मक व्यवस्था में सारी शक्तियाँ केन्द्र सरकार में निहित होती हैं। एक तरह से वे केन्द्र सरकार की दया पर निर्भर रहती है, लेकिन संघीय व्यवस्था के सदस्य के रूप में वे केन्द्र प्रदत्त सारी सुविधाओं का लाभ उठाती हैं।

15.8. साहचर्य तथा संगठन (Alliance and Leage) –

राजनीतिक भूगोल में संघवाद की संकल्पना से उपजे दो और शब्द है – 'साहचर्य' या मैत्री तथा संगठन"। इन दोनों शब्दों की व्याख्या भी आवश्यक है क्योंकि राजनीतिक भौगोलिक रूप में इनका भी पर्याप्त महत्व है।

15.8.1 साहचर्य (Alliance) :–

'साहचर्य' एक क्षणिक समझौता है जो विभिन्न स्वतंत्र राज्य अपने कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करते हैं। ये प्रायः सैन्य, आर्थिक या राजनीतिक उद्देश्यों से अभिप्रेरित होते हैं''। इन समझौतों की शर्तें नियम, उपनियम सदस्य राज्यों की पारस्परिक सहमति के आधार पर तय किए जाते हैं। इनका कोई संवैधानिक अधिकार नहीं होता। जब उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है तो 'साहचर्य भंग हो जाता है।

15.8.2 संगठन (Leage) :–

'संगठन' अर्थात् 'लीग' विभिन्न राज्यों का एक स्थाई संघ रहता है जिसे कुछ स्वतंत्र राज्य मिलकर कुछ निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निर्मित करते हैं। सदस्य इकाइयों की पारस्परिक सहमति के आधार पर इसे कुछ संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त होने हैं, लेकिन इन अधिकारों का प्रयोग सदस्य इकाइयों की सर्वसम्मति से ही किया जा सकता है। इन संघों में कुछ समान नियम–परिनियम आपसी सहमति के आधार पर बना लिए जाते हैं जो कि सदस्य राज्यों द्वारा मान्य होते हैं। संयुक्त राष्ट्र, सार्क, आसियान, नाटो, जी–7 आदि ऐसे ही संगठन है।

15.9. संघात्मक राज्यों के प्रकार (Types of federal States) :–

नई दुनिया (अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया) तथा उदीयमान विश्व (उपनिवेशों से आजाद हुए एशिया एवं अफ्रीका के देश) के संघीय व्यवस्था वाले राज्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि सभी संघीय राज्यों की स्थापना का आधार एवं उद्देश्य एक जैसा नहीं रहा है। कुछ राज्यों ने संघीय व्यवस्था का चयन स्वयं किया है; कुछ बहुसंख्यक जनता भी स्वाभाविक प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप विकसित हुए हैं, जबकि कुछ राज्यों पर यह व्यवस्था थोप दी गई है। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रख कर एच०जे०डी० ब्लिज ने संघात्मक राज्यों को चार प्रकारों में विभक्त क्रिया है–

1. **पारस्परिक हित पर आधारित संघात्मक राज्य (Federal States Based on Mutuall Interest)** :– कुछ संघात्मक राज्यों में जातीय एवं भाषाई एकता होती है तो कुछ दूसरे राज्यों में क्षेत्रीय विविधता होती है। ये वैसे संघात्मक राज्य है जो एकात्मक राज्य के रूप में भी अच्छी तरह से कार्य कर सकते हैं, लेकिन इसके बावजूद भी उन्होंने अपने राज्यों में संघीय राज्य व्यवस्था लागू की। इसका मूल कारण था उनके पारस्परिक हित; उदाहरण के लिया आस्ट्रेलिया जो मानवीय कारक के दृष्टिकोण से एक समरूप संघ है, परन्तु उसे प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में साम्राज्यवादी गतिविधियों एवं आर्थिक प्रभाव का भय है जिसकी वजह से वह एक जुट हुआ है। विस्तारशील संयुक्त राज्य अमेरिका के भय एवं दक्षिण से आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए दो भाषा–भाषी (फ्रेंच (एवं अंग्रेजी) समुदायों वाला क्षेत्र होने के बावजूद भी कनाडा समझौते पर आधारित संघ के रूप में उभरा। सं० रा० अमेरिका, ब्राजील, स्विट्जरलैण्ड, द० अफ्रीकी संघ जैसे कुछ ऐसे संघीय राज्य है जो पारस्परिक हितों के आधार पर ही अस्तित्व में आये। अधिकांश संघ जिनमें पारस्परिक हित निहित हैं, स्थाई एवं शक्तिशाली है और वहाँ पूरे संघ में राज्य विचार फल–फूल रहा है।

2. **आपसी समझौते पर आधारित संघात्मक राज्य (Federal States Based on Compromise)** :– जब कुछ क्षेत्रीय राज्य एक वृहद् राज्य की स्थापना के लिए अपने कुछ व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर देते हैं और कुछ समझौतों के आधार पर एक संघीय राज्य को जन्म देते हैं, तो उन्हें इस श्रेणी में रखा जाता है। नाइजीरिया और भारत इस श्रेणी के सर्वोत्तम उदाहरण है। नाइजीरियाई संघ में तीन प्रमुख समुदायां (द०पू० के योरुबा, द०पू० के इबो तथा द० के हॉउसा) के बीच का समझौता अन्तर्निहित है। 1960 में जब यह स्वतंत्र हुआ, तब यह तीन संघीय प्रदेशों से युक्त था। लेकिन बाद के वर्षों में यहाँ जाति एवं भाषाई आधार पर गृह युद्ध की दशाएँ पैदा हो गई जिन्हें कठिनाई से शान्त किया गया। अंततः 1968 में नाइजीरिया के प्रमुख समुदायों के बीच समझौते के परिणाम स्वरूप नाइजीरिया को 12 प्रदेशों में विभक्त कर संघीय स्वरूप दिया गया। इसी तरह 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो यहाँ की दो दर्जन से अधिक पूर्ववर्ती ब्रिटिश प्रान्त तथा 562 विभिन्न आकार वाली अर्ध संप्रभु देशी रियासतें थीं। हिन्दू, मुस्लिम, सिख समुदाय थे। उत्तर दक्षिण विवाद था। विभिन्न भाषा–भषीय क्षेत्रीय वर्ग थे, जिनमें समन्वय एक अत्यधिक कठिन कार्य था। लेकिन कुशलता से समझौतों के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। देशी रियासतो को भारतीय संघ में शामिल किया गया और संवैधानिक आधार पर भारत को संघीय राज्य रूप में स्थापित किया गया। उल्लेखनीय है कि समझौता युक्त संघ कभी–कभी आंतरिक राजनीतिक अस्थिरता के शिकार हो जाते हैं तथा वहाँ क्षेत्रीयता व भाषा की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है और अलग प्रान्त की माँग उठने लगती है।

3. **केन्द्रीयकृत संघात्मक राज्य (Centralized federal states)** :–इस श्रेणी में वे संघात्मक राज्य आते हैं जिनका स्वरूप तो संघीय होता है, लेकिन संवैधानिक कार्यकलाप काफी केन्द्रीयकृत होते हैं। ऐसे संघात्मक राज्यों में प्रादेशिक विविधताएं काफी अधिक होती है और उन्हें एक जुट रखने के लिए एकता ऊपर से आरोपित करने की आवश्यरना पड़ती है। केन्द्रीय सत्ता को अतिरिक्त शक्ति देकर इस आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। पूर्व सोवियत संघ और यूगोस्लाविया इसके उत्तम उदाहरण हैं क्योंकि यहाँ संघीय इकाइयों को अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं का परित्याग कर वृहद् राष्ट्रीय हित के लिए एकीकृत होने को बाध्य किया गया था। राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार "भारत देखने में संघीय राज्य जैसा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में एकात्मक राज्य जैसा है, क्योंकि अत्यधिक केन्द्रीकरण ने इसकी संघीय संरचना को परिवर्तित कर दिया है"।

4. **आरोपित संघात्मक राज्य (Imposed federal states)** :– वे संघात्मक राज्य जिनका सृजन बहुसंख्यक समुदाय की अनुमति के बिना एवं उनकी इच्छा के विरुद्ध किसी शक्तिशाली अल्पसंख्यक समुदाय, औपनिवेशिक शक्ति या वाह्य अभिकर्ता द्वारा किया जाता है, तो वे आरोपित संघात्मक राज्य कहे जाते हैं। ऐसे संघात्मक राज्यों का जीवन छोटा होता है। उनमें काफी मात्रा में राजनीतिक अस्थिरता पाई जाती है। उनकी सफलता सदैव संदिग्ध रहती है और वे असफल हो जाते हैं। वेस्टइंडीज संघ (जो 1958 में सृजित हुआ और बाद में असफल होकर टूट गया), मध्य अफ्रीकी संघ (जो अपने जन्म के एक दश्क के भीतर ही समाप्त हो गया), मलेशिया संघ, इथियोपिया और इरीट्रिया संघ (जिसका सृजन 1952 में किया गया और 1962 में समाप्त हो गया) आरोपित संघात्मक राज्यों के बेहतर उदाहरण है।

15.10 संघवाद की असफलता (Failure of Federalism) :–

पारस्परिक समझौते पर आधारित संघीय प्रणाली की स्वीकृति के कुछ प्रमुख कारण होते हैं, जैसे :–

(i) इसकी संरचना और प्रशासनिक वैधता;

(ii) इसमें निहित क्षेत्रीय स्वायत्तता का सिद्धांत;

(iii) पड़ोसी प्रान्तीय इकाइयों से परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध; और

(iv) हितों और उद्देश्यों में पर्याप्त समानता।

एक आदर्श संघीय राज्य में संघीय सरकार के कुछ कर्तव्य भी होते हैं जैसे :–

(i) सभी प्रान्तीय राजनीतिक इकाइयों के साथ वह समभाव रखे;

(ii) यथेष्ट आधार पर वित्तीय अनुदानों का निर्धारण एवं वितरण करे,

(iii) आपातकाल में सभी को यथोचित सहायता प्रदान करें;

(iv) सभी प्रान्तीय इकाइयों का, उनके उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप विकास करे;

(v) संसाधन की दृष्टि से विपक्ष इकाइयों को संसाधनों के सही आवंटन द्वारा सहायता प्रदान करें।

यदि कोई संघीय सरकार अपनी स्वीकृत के प्रमुख आधारों एवं कारणों से हटने लगती है, अपने कर्तव्यों का समुचित पालन नहीं'' करती है, तो प्रान्तीय राजनीतिक इकाइयों में केन्द्र के प्रति असंतोष उपजने लगता है और वे संघीय प्रणाली से अलग होने की भावना से प्रेरित होने लगती है। उनमें क्षेत्रीय अस्तित्व का भाव प्रबल होने लगता है और कालान्तर में वह संघीय राज्य बिखरने लगता है और अंततः टूटकर असफल हो जाता है।

संघीय राज्यों के बिखराव के कई उदाहारण वर्तमान समय में भी हमें देखने को मिले हैं। यूगोस्लावियाई संघ टूट चुका है। यहाँ संघीय शासन में सभी जातीय व धार्मिक समूहों का समुचित प्रतिनिधित्व न होने से, विभिन्न धार्मिक समूहों के क्षेत्रीय समूहन से संघ में बिखराव की स्थिति पैदा हुई। यहीं प्रक्रिया चेकोस्लोवाकिया के बिखराव में भी देखी जा सकती है। पूर्व सोवियत संघ भी संधीय असफलता का एक बेहतर उदाहरण है। यह विखंडित होकर 15 राज्यों में विभक्त हो गया। वेस्ट इंडीज संघ जो 1958 में सृजित हुआ, वह भी असफल होकर टूट गया। लीबिया–मिस्त्री संघ भी मिस्र में प्रबल जन विरोध के कारण टूट गया। संघात्मक से एकात्मक व्यवस्था स्वीकार करने वाले राज्यों में इथिओपिया (1962), लीबिया (1965), जाम्बिया व वेनेजुएला (1955) और इंडोनेशिया प्रमुख है।

सारांशतः संघ की अंगीभूत प्रादेशिक इकाइयों के बीच का सम्बन्ध संघवाद की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण होता है। जब उनके बीच कोई विवाद पैदा होता है तो वह संघीय प्रणाली को कमजोर बनाता है। एक और मौलिक करक जो संधीय स्थिरता की प्राप्ति में सहायक होता है, वह है प्रादेशिक अस्मिता' जिस पर संघ की अंगीभूत राजनीतिक इकाइयाँ आधारित होती है। किसी भी संघीय राज्य को बिखराव व असफलता से बचने के लिए उपरोक्त दो महत्वपूर्ण कारकों पर ध्यान देना व उन पर अमल करना आवश्यक है।

15.11 विश्व के संघीय राज्य (Federal States of the World) :–

एन0जे0जी0 पाउण्ड्स द्वारा प्रस्तुत सूची के अनुसार 1960 के प्रारंभिक दशक में कुल 2 संघात्मक राज्य थे जो विश्व के कुल राज्यों के 1.5 प्रतिशत भाग का निर्माण करते थे। महाद्वीपीय स्थिति के अनुसार इन संघीय राज्यों का विवरण निम्नवत् है **(चित्र नं. 15.1)**

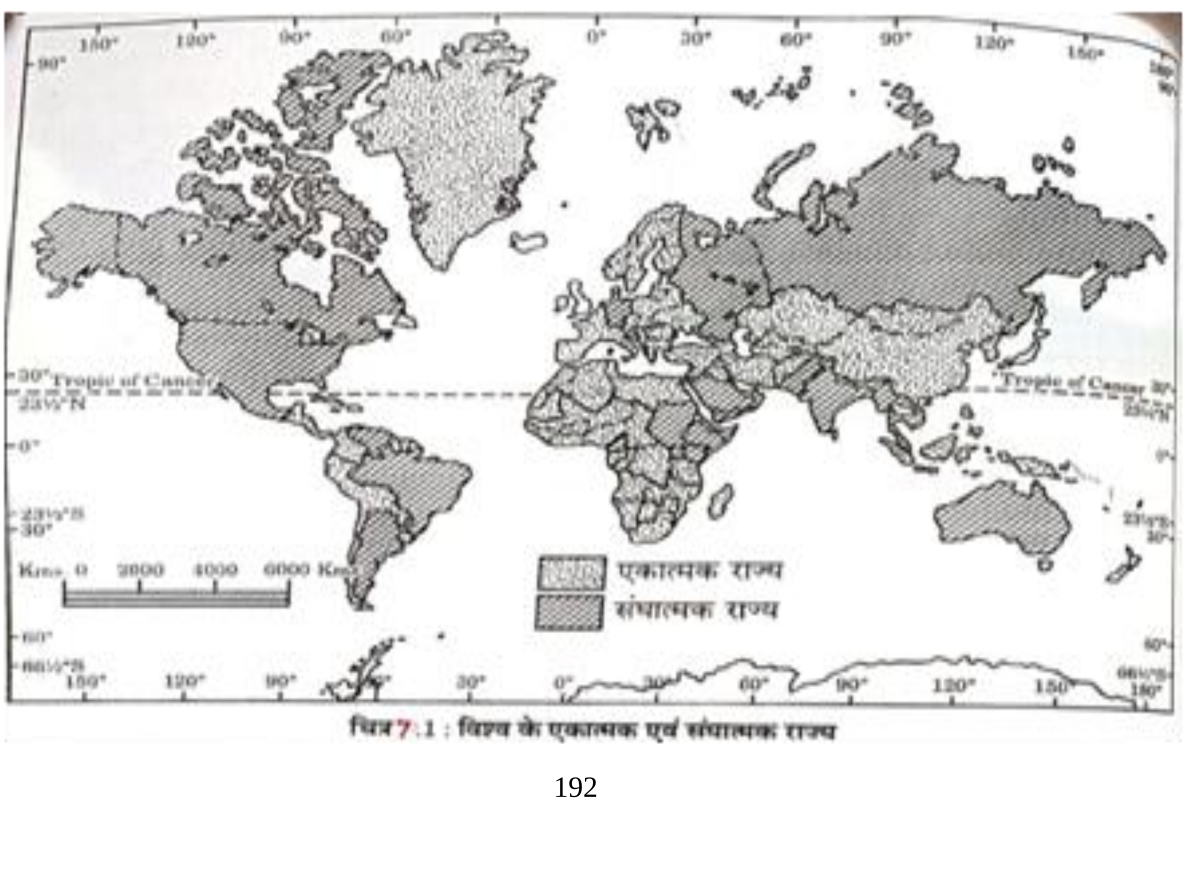

चित्र 7.1 : विश्व के एकात्मक एवं संघात्मक राज्य

उत्तरी अमेरिका महाद्वीप– इस महादीप में कुल तीन संघात्मक राज्य हैं– संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और मेक्सिको।

दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप – इस महाद्वीप में कुल दो संघात्मक राज्य है– ब्राजील एवं अर्जेन्टिना ।

यूरोप महाद्वीप – इस महाद्वीप में कुल चार संघात्मक राज्य हैं–पश्चिमी जर्मनी, यूगोस्लाविया, स्विट्जर लैण्ड तथा सोवियत संघ। उल्लेखनीय है कि पाउंड्स ने सोवियत संघ को एशिया महादीप में सम्मिलित न कर यूरोप महाद्वीप में सम्मिलित किया है।

अफ्रीका महाद्वीप – इस महाद्वीप में कुल तीन संघात्मक राज्य हैं– नाइजीरिया, इथियोपिया, कांगो (जायरे)।

एशिया महाद्वीप – इस महाद्वीप में कुल तीन संघात्मक राज्य है– भारत, पाकिस्तान एवं मलेशिया ।

ओशिनिया – इस महाद्वीप में मात्र एक संघात्मक राज्य है – आस्ट्रेलियाई वर्तमान में संघात्मक राज्यों की संख्या मात्र 15 है, कारण कि तीन संघीय राज्यों (इथियोपिया– इरिट्रिया का 1962 में, सोवियत संघ और यूगोस्लाविया का 1992 में का विघटन हो चुका है। अब विश्व के कुल राज्यों का मात्र 6.65 प्रतिशताही हिस्सा जो संघात्मक राज्यों के पास है।

15.12 संघवाद के भौगोलिक आधार (Geographical Bases of Federalism) :–

राजनीतिक भूगोल में एक लम्बे अर्से तक संघवाद का विश्लेषण वैधानिक आधार पर ही किया जाता रहा है और इसे क्षेत्र विशेष की एक वैधानिक विशेषता ही माना जाता था, लेकिन संघवाद की उत्पत्ति, उसका विकास और कार्यप्रणाली तथा विभिन्न देशों की शासन प्रणालियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि संघीय प्रणाली मूलतः भौगोलिक आधारों पर ही विकसित हुई है। विभिन्न संघीय राजनीतिक इकाइयों की विशिष्ट पहचान भौगोलिक कारणों से ही संभव है। अर्थात् धरातलीय, जलवायविक जनांकिकीय तथा प्राकृतिक संसाधनों की विषमताएँ तथा इनसे उत्पन्न ऐतिहासिक–सामाजिक–राजनीतिक विशिष्टता के परिणाम स्वरूप ही पृथक–पृथक राजनीतिक इकाइयों को पृथक–पृथक विशिष्टता प्राप्त होती है। राजनीतिक भूगोल में इसीलिए संघीय व्यवस्था का भौगोलिक विश्लेषण तर्कसंगत माना जाता है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास **डी0 व्हिटलसी** ने 1955 में प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने शोध प्रपत्र (Political Geography :A Complex Aspect of Geography) में विभिन्न राज्य प्रणालियों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि राज्य के विभिन्न कार्यों का भू–दृश्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। **वॉन वाल्डेन वर्ग** ने 1959 में अपनी पुस्तक 'Elements of Political Geography' में विभिन्न शासन प्रणालियों की उत्पत्ति विकास और अस्तित्व के सन्दर्भ में एक भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। वस्तुतः संघीय राज्य व्यवस्था भौगोलिक रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण योग्य होने के बावजूद भी किसी भी भूगोलविद् ने इसरा क्रम बद्ध अध्ययन नहीं किया है। स्पेट (1944) पहले ऐसे भूगोल वेत्ता थे जिन्होंने संघवाद की विभिन्न विशेषताओं के लिए भौगोलिक कारकों को उत्तरदायी ठहराते हुए अपनी एक अवधारणा प्रस्तुत की।

ओ० एच० के० स्पेट की अवधारणा के अनुसार :– स्पेट ने अपने शोध पत्र 'Geography and Federalism' (1944) में विभिन्न संघात्मक राज्यों का अध्ययन करके यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि ''विस्तृत क्षेत्रफल और विरल जनसंख्या वाले राज्य संघीय होते हैं। अपनी परिकल्पना का आधार प्रस्तुत करते हुए स्पेट ने कहा– ''एक विस्तृत भू–क्षेत्र में अनेक प्राकृतिक विषमताएं होंगी। ये क्षेत्रीय विषमताएं अलग–अलग क्षेत्रीय इकाइयों में ऐसे समाजों का विकास करेंगी, जो किसी सीमा तक. एक–दूसरे से अलग होंगे। इसलिए अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखने हेतु ये इकाइयाँ कभी भी एकात्मक शासन प्रणाली में नहीं बदलेगी, बल्कि वे एक संघीय प्रणाली में ही बदल जायेंगी।'' स्पेट की यह अवधारणा यद्यपि कि बहुत से बड़े आकार वाले राज्यों के सन्दर्भ में सही दिखाई पड़ती है, जैसे कि भारत जहाँ 1947 ई. की से संघात्मक राज्य प्रणाली सफलता पूर्वक चल रही है। लेकिन इस अवधारणा का साधारणीकरण नहीं किया जा सकता, कारण कि स्विट्जरलैंड जो कि एक लघु आकार का देश है, लेकिन वहाँ संघीय शासन प्रणाली 1848 से सफलता पूर्वक चल रही है। आलोचको के अनुसार इस अवधारणा से यह भी स्पष्ट

नहीं होता कि– संघवाद और विस्तृत क्षेत्रफल या विरल जनसंख्या में क्या भौगोलिक अन्तर्सम्बन्ध है इस सन्दर्भ में आलोचको ने भारत का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया कि भारत क्षेत्रफल में भले ही विशाल है, लेकिन यहाँ जनसंख्या अति संघन है जब कि स्पेट की अवधारणा के अनुसार क्षेत्रफल की विशालता के साथ जनसंख्या का विरल होना आवश्यक है। आलोचकों का यह तर्क वस्तुतः विल्कुल सही नहीं है, कारण कि कनाडा और आस्ट्रेलिया क्षेत्र फल के दृष्टिकोण से दो वृहत् संघ है और जनसंख्या के दृष्टिकोण से दोनो लधुत्तर (विरल) भी है जो स्पेट भी अवधारणा के अनुरूप ही संघीय राज्य के रूप में विकसित हुऐ है।

डब्ल्यू० एम० राबिन्सन (1952) के अनुसार :– 'अगर किसी राज्य में राजनीतिक इकाइयाँ प्रदेशिक रुप से समूहित है, तो भौगोलिक दृष्टि से इसका परिणाम यह होगा कि समाज संधीय होगा। इस प्रकार राज्य के भौगोलिक क्षेत्र के अन्तर्गत एक संघ प्रादेशिक रुप से समूहित अनेक समदायों के अस्तित्व पर आधरित होता है।

के. डब्ल्यू० राबिन्सन (1961) के अनुसार :– 'संघीय व्यवस्था सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक अभिव्यक्तशील है। यह प्रादेशिक विभिन्नताओं पर आधारित है तथा अंगीभूत इकाइयों को अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को कायम रखने के दावे को मान्यता प्रदान करता है।

राबिन्सन का यह कथन संघवाद के भौगोलिक आधारों को स्पष्ट करता है। वस्तुतः संघीय व्यवस्था में राज्य का आकार चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, अगर वहाँ धार्मिक तथा सांस्कृतिक विविधताएँ विद्यमान है, तथा सभी भाषाई–धार्मिक समुदायों के ऐतिहासिक अनुभव एवं उद्देश्य अलग–अलग हैं, तो संघवाद–वहाँ के लिए भौगोलिक आवश्यकता बन जाती है।

आर०डी० दीक्षित (19151) के अनुसार :– संधीय व्यवस्था भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक अभिव्यक्तिशील है दीक्षित के अनुसार इसके दो मुख्य कारण है– संघवाद की संरचना एवं प्रशासनिक वैधता संघवाद के संरचना के सन्दर्भ में दीक्षित का कहना है कि– 'इसकी संरचना में निहित क्षेत्रीय स्वायत्तता का सिद्धान्त और इसकी स्थानिकता 'और 'क्षेत्र मूलकता इस विश्वास पर आधारित है कि विभिन्न क्षेत्रीय सामाजिक इकाइयों अपनी स्थानिकता के कारण अनेक क्षेत्रीय इकाइयों से अनेक अर्थों में विशिष्ट है, इस तथ्य के उपरान्त भी अपनी अन्य पड़ोसी इकाइयों से उनके सम्बन्ध परस्पर मैत्रीपूर्ण है और उनके हितों और उद्देश्यों में पर्याप्त समानता है। दीक्षित के अनुसार ''संघीय व्यवस्था की भौगोलिक अभिव्यंजना का दूसरा कारण यह है कि प्रशासनिक वैधता की व्यवस्था में क्षेत्रीय स्वायत्तता के परिणाम (स्वरूप क्षेत्रों को उनके संविधान द्वारा निर्धारित दायरे में विचार स्वातंत्रता और राजनीतिक वरण की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है, परिणाम स्वरूप उनकी क्षेत्रीय विविधता और स्थानिक अस्मिता को निरंतरता मिल जाती है ।' राजनीतिक भूगोलः समसामयिक परिदृष्टि, 2000, पृ 150)।

15.13 संघीय राज्यों की स्थापना के प्रमुख भौगोलिक कारक :–

संघवाद के भौगोलिक आधारों के सम्बन्ध में प्रस्तुत किए गए विभिन्न भूगोल विदों के उपरोक्त विचारों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघीय राज्यों के स्थापना में निम्नलिखित भौगोलिक कारकों का प्रमुख योगदान होता है–

(1) राज्य का विशाल क्षेत्र स्थानिक तौर पर समूहित असमान जनसंख्या

(2) अनूठी आकृति

(5) राज्य में कई क्रोड क्षेत्रों भी उपस्थिति

1. **राज्य का विशाल क्षेत्र और स्थानिक तौर पर समूहित आसमान जनसंख्या** :– एक वृहद आकार वाले राज्य में अनेक भौगोलिक विषमताएँ मिलती है, जिससे अलग–अलग भागों में (स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले जनसंख्या के कई समुदाय विकसित होते हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ संघवाद ही एकमात्र उपयुक्त प्रणाली रहती है क्योंकि इसमें विभिन्न समुदायों की क्षेत्रीय स्वायत्तता भी बनी रहती है और संघ का भी स्थायित्व बना रहता है। संभवतः इसीलिए **आए० एस० पारकर (1949)** ने लिखा है– "अधिकतर आधुनिक संघ अपने प्रारंभिक काल में विशाल क्षेत्रों पर राजनीतिक संघ के रूप में उभरे जहाँ जनसंख्या के केन्द्र बिखरे हुए तथा संचार व्यवस्था अपेक्षाकृत कम विकसित थी। ऐसी भौगोलिक परिस्थितियों में'' संघवाद एक आवश्यक राजनीतिक ढाँचा प्रतीत हुआ।

   ''कॉर्नेल (1961) का भी अभिमत है कि ''संघवाद विशेष रूप उन बड़े महाद्वीपीय राज्यों के राजनीतिक एकीकरण के लिए उपयुक्त हो सकता है जिनकी जनसंख्या कम है तथा संचार माध्यम कम विकसित है।'' **जी०**

सॉवर (1969) ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है कि– ''आज भी राज्य के आकार तथा उनके संचार माध्यमों की समर्थता को एकात्मक एवं संघात्म राज्यतंत्र के बीच चयन के भौगोलिक कारक के रूप में देखा जाता है।''

2. **अनूठी आकृति** – भौगोलिक कारक के रूप में राज्य आकार की तुलना में उनकी आकृति उतनी महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी **डी ब्लिज (1912)** ने राज्य कुछ की आकृतियों को संघीय व्यवस्था के लिए उत्तरदायी बताया है। उनके अनुसार खंडित आकृति वाले एवं लम्बायित आकृति वाले राज्य संघीय व्यवस्था के लिए अधिक अनुकुल होते हैं कारण कि वे राज्य की कार्य प्रणाली को प्रभावित करते हैं। एशिया महाद्वीप का मलेशिया संघ जिसकी आकृति खंडित है, इसके दूसरे उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. **राज्य में कई क्रोड क्षेत्रों की उपस्थिति** – जब कोई राज्य बहु क्रोड क्षेत्र वाला होता है तो सभी क्रोड क्षेत्रों की भाव–प्रवणता केन्द्रीय सभी शक्तियों को बल प्रदान करती है, तथा वे शक्तियों संगठित हाने लगती हैं। इन शक्तियों पर तभी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है जब राज्य संघीय प्रणाली के अधीन हो और उसमें एकता एवं अनेकता का सह–अस्तित्व कायम रहे। भारत इसका एक अच्छा उदाहरण है भारत एक बहुक्रोड वाला राजा है और यहाँ संघीय प्रणाली केन्द्रोपसारी शक्तियों से उत्पन्न खिंचाव कारक से निपटने में काफी सिद्ध हुई है।

15.14 भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधार :–

भारत विश्व का सातवाँ बृहद्देश है। इसका कुल क्षेत्रफल 5281526 वर्ग कि०मी० है और जनसंख्या 130 करोड़ से अधिक है। इतने विशाल क्षेत्रफल तथा इतनी अधिक जनसंख्या में अनेक प्रकार की विविधताएं मिलती हैं, जैसे आकार में विविधता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं अधिवास में भिन्नताएं, भौतिक विविधता, जलवायु एवं मिट्टी में विविधता, भाषा, प्रजाति, धर्म एवं आर्थिक हितों में अन्तर, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं की भिन्नता आदि। ये विविधताएँ संघीय व्यवस्था को अपनाने का महत्वपूर्ण कारण है। **डी0 ब्लिज (19152) के अनुसार** – भारत में संघीय विचार का उदय देश के स्वशासन की ओर बढ़ते कदम के साथ हुआ तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य एक संघीय संरचना, के रूप में, देश में मौजूद महान आन्तरिक विविधता की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में संविधान में संशोधन के द्वारा परिवर्तित हो गया'' वास्तव में भारतीय सीमाओं के अर्न्तगत मौजूद प्रादेशिक रुप से समूहिक विविधताएँ ही भारतीय संघवाद का भौगोलिक आधार हैं। भौगोलिक आधार के रूप में मौजूद भारतीय संघवाद की प्रादेशिक रूप से समूहित प्रमुख विविधताएँ निम्नलिखि है जो संघीय व्यवस्था के लिए आदर्श भौगोलिक आधार प्रस्तुत करती हैं –

(1) **स्वाकृतिक विविधता**– भारत में चार महत्वपूर्ण भू–आकृतियाँ मिलती है– हिमालय पर्वत माला, मध्यवर्ती मैदान, प्रायद्वीपीय (दक्कन का) पठार तथा थार का रोगिस्तान। भौतिक अवरोधों एवं उच्चावच्च में अत्यधिक विविधता के कारण अनेक लघु भू–आकृतिक प्रदेशों का विकास हुआ है। यह प्राकृतिक विषमता की एक अपकेद्रीय बल है और इसे नियंत्रित करने के लिए संघीय व्यवस्था आवश्यक है।

(2) **भाषाई विविधता** – 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में 844 प्रमुख भाषा एवं बोलियाँ है। यह भाषाई विविधता भी प्रमुख अपकेन्द्रीय शक्ति है। संघीय समन्वय बनाये रखने के लिए यहाँ त्रिभाषा सिद्धांत (हिन्दी–अंग्रेजी–क्षेत्रीय भाषा) को अपनाया गया है।

(5) **धार्मिक विविधता**– भारत में विश्व की सर्वाधिक हिन्दू, सिक्ख एवं पारसी जनसंख्या तथा दूसरी वृहद् मुस्लिम जनसंख्या निवास करती है। इसने अलावा बौद्ध, इसाई एवं जैन धर्मावलंबी जनसमूह भी है। जनसंख्या का धार्मिक समूह भी प्रादेशिक रूप से अधिक प्रतिबिम्बित है, जैसे पंजाब में सिक्ख अधिक है, यह धार्मिक विविधा एक उपकेन्द्रीय बल हैं, जो भारतीय संधवाद की उत्पत्ति में समयक है। नागालैंड एवं मिजोरम इसाई बहुल हैं, जबकि जम्मू–कश्मीर मे मुस्लिम अधिक हैं।

(4) **सांस्कृतिक विविधता** – भाषा एवं धर्म सामूहिक रूप में संस्कृति के जनक होते है। यही कारण है कि विशाल क्षेत्र एवं जनसंख्या वाले भारत में अनेक संस्कृतियाँ है। उत्तर भारत की संस्कृति दक्षिण भारत से भिन्न है, जबकि पूर्वोत्तर की संस्कृति मध्य भारत से भिन्न है। वस्तुतः यहाँ हर राज्य एक अलग संस्कृति का धोतक है। ऐसी भिन्न संस्कृतियों से समन्वित कर राज्य प्रणाली की स्थापना में संधीय पद्धति हो प्रमुख है।

(5) **प्रजातीय भिन्नता** – भारत में पांच प्रजाति के लोग का बासव हैं। ये प्रजातियाँ हैं– आस्ट्रेलायड, मंगोलायड, नार्डिक, अल्पाइन,निग्रो ये पाँच प्रजातियाँ लगभग 200 जनजातियों में विभक्त हैं जिनमें पर्याप्त विविधता है। सिक्किम में रहने वाले मंगोलायड की जीवन पद्धति अण्डमान–निकोबार द्वीप के लोगों से सर्वथा भिन्न है। यह प्रजातीय एवं जनजातीय विविधता क अपकेन्द्रीय बल है जो भारत राज्य में अस्थिरता उत्पन्न कर सकता है और इसीलिए भारत के संघीय स्वरूप के उद्भव में सहायक है।

(6) **आर्थिक विषमता** – आर्थिक विषमता भी संघीय व्यवस्था के लिए भौगोलिक आधार प्रस्तुत करती है। भारत में पर्याप्त आर्थिक विषमता मौजूद है। महाराष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था उद्योग प्रधान है, जबकि पंजाब हरित क्रांति पर आधारित अर्थव्यवस्था वाला प्रान्त है। असम के चावल क्षेत्रों की तुलना राजस्थान भी शुष्क वातावरण में विकसित कृषि नहीं की जा सकती। यही आर्थिक विषमता भावनात्मक विषमता पूर्व जन्म देती है एवं संघीय परिस्थितियों को अनिवार्य बना देती है।

(15) **ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य** – ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो भारत कभी भी एक देश नहीं था। यह सिर्फ भावनात्मक मान्यता थी जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अलग–अलग प्रशासन वाली 562 देशी रियासतों एवं 12 ब्रिटिश कालीन प्रान्तों को 1949 में। विलय द्वारा भारतीय संघ में आत्मसात किया। भारतीय संघ के रूप में इनका एकीकरण देश की अखण्डता व एकाता के लिए आवश्यक था। बावजूद विविधता के यहाँ के जन–समूह में भारतीयता की भावना बहुत गहराई से विद्यमान है जो संघीय व्यवस्था का आवश्यक तत्व है।

(8) **अपकेन्द्रीय एवं अभिकेन्द्रीय शक्तियाँ** – अपकेन्द्रीय एवं अभिकेन्द्रीय शक्तिया में इनका एकीकरण भौगोलिक कारकों के अन्तर्गत आती है। अपकेन्द्रीय शक्तियाँ देश में क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद एवं अलगाववाद को बढ़ावा देती है, जिससे देश में अस्थिरता उत्पन्न होती है। इसीलिए भारत में केन्द्रीयकृत संघवाद की व्यवस्था है जिससे इन शक्तियों पर नियंत्रण स्थापित हो सके अभिकेंद्रीय शक्ति के रूप में भारत में विविधता में एकता एवं भारतीयता का सूत्र विद्यमान है जो भारतीय संघ को एक सूत्र में विद्यमान है जो भारतीय संघ को एक सूत्र में आबद्ध करने व उसे सुचारू रूप से संचालित करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

15.15 सारांश :–

इस प्रकार के अध्ययन से आप यह भली भाँति समझ गए होंगे कि संघवाद की संकल्पना का विकास कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुआ और यह शासन प्रणाली किस प्रकार के राज्यों के लिए उपयुक्त होती है? वस्तुतः संघीय शासन प्रणाली की उन राज्यों के लिए वांछनीय होती है जहाँ प्रजातीय, धार्मिक, भासाई और संस्कृ तिक विविधताएं होती है। संघवाद उन राज्यों के लिए भी भौगोलिक आवश्यकता बन जाता है जिनका आधार धर्म निरपेक्षता होता है। संघवाद की असफलता के कारणों को भी आपने इस इकाई में भलीभाँति समझा तथा संधवाद के भौगोलिक आधारों की समीक्षा से आपने यह भी जाना कि किसी राज्य का प्रशासन उस राज्य के भौगोलिक परिवेश से किस हद तक प्रभावित होता है? भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधारों की समीक्षा से आपके भारत सम्बन्धी राजनीतिक – भौगोलिक ज्ञान में निश्चित रूप से अभिवृद्धि हुई होगी।

15.16 शब्द सूची :–

राज्य पद्धति	Polity	गृहक्षेत्र	Home Land
संघीय	Federal	संघ	Federation
एकात्मक	Unitary	परिसंघ	Confederation
संघवाद	Federalism	सम्मेल	Union
सर्वतमहर औषधि	Panacea	साहचर्य	Alliance
संगठन	Leage	आरोपित	Imposed

15.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर :—

स्वमूल्यांकन प्रश्न –

1. संघीय राज्य की प्रमुख विशेषता है –

(अ) आर्थिक निर्भरता **(ब)** एकता का अभाव **(स)** अधिक जनसंख्या **(द)** अनेकता में एकता

2. भारत की शासन व्यवस्था है–

(अ) संघात्मक **(ब)** एकात्मक **(स)** केन्द्रीकृत **(द)** सैनिक

5. एकात्मक शासन प्रणाली उपयुक्त होती है–

(अ) बृहद् राज्यों हेतु **(ब)** छोटे राज्यों के लिए

(स) मध्यम आकार वाले राज्यों के लिए **(द)** संगठित राज्यों हेतु

4. एकात्मक राज्यों में सर्वोच्च होती है –

(अ) केन्द्रीय न्यायपालिका **(ब)** केन्द्रीय कार्य पालिका **(स)** केन्द्रीय व्यवस्थापिका **(द)** उपरोक्त सभी

5. शासन की किस व्यवस्था में केन्द्रोन्मुखी एवं वाह्यमुखी शक्तियों का समायोजन होता है ?

(अ) एकात्मक **(ब)** संघात्मक **(स)** केन्द्रीकृत **(द)** अर्थसंघात्मक

आदर्शउत्तर –

1. (द); **2.** (अ); **5.** (ब); **4.** (द); **5.** (ब)

15.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें :—

- De, Blij, H.J., (1992): 'Systematic Political Geography', Wiley New York.
- Dixit, R.D., (19151): ' Geography and federalsim', A.A.A. Geographers, Vol. 61, pp. 915-15
- Neumann, F., (1965): 'On the Theory of Federal states', In (Ed.)
- 'Federalism Mature and Emergent', New York, C.u. Press.
- Parker, R.S., (1949): 'Australian Federation: The Influence of Economic Interest in Political Pressure! New Zealand, 4, pp-1-24 Pounds, N.J.G, (1965)- Political Geography,New York, Mc Graw-Hill Beok Company
- Riker,W- H-, (1964)% Federalism% Origins, Operation and significance Boston Little Braon and Co
- Robinson, K.W., (1961)- ''Sixty years of Federation in Australia, Geographical Review, Vot% St] pp. 1-15.
- Sawer, G-, (1969): 'Modern federalism, London, C. A. Watts. Tarlton, C. D., (1965): 'Symmetry and Asymmetry as Elements of federation:A Theoretical Speculation, Journal of Politics,Vol. 215, AP. 861-8154.
- Where, K.C.,(1965): 'Federal Government, London, Oxford Univ. Press- Whittlesey. D., (1955): Political Geography:A Comple• Aspect of Geography Education, 50: 295—298.

15.19 अभ्यासार्थ प्रश्न : सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु :—

1. एकात्मक एवं संघात्मक राज्यों में अन्तर स्पष्ट भीजिए।
2. संघवाद के भौगोलिक आधार बताइए।

5. संक्षेप में संघात्मक राज्यों के प्रकार बताइए।

4. विश्व में वर्तमान में किस महादीप में कितने संघात्मक राज्य है।

5. भारत में कैसी शासन व्यवस्था है? समझाइए।

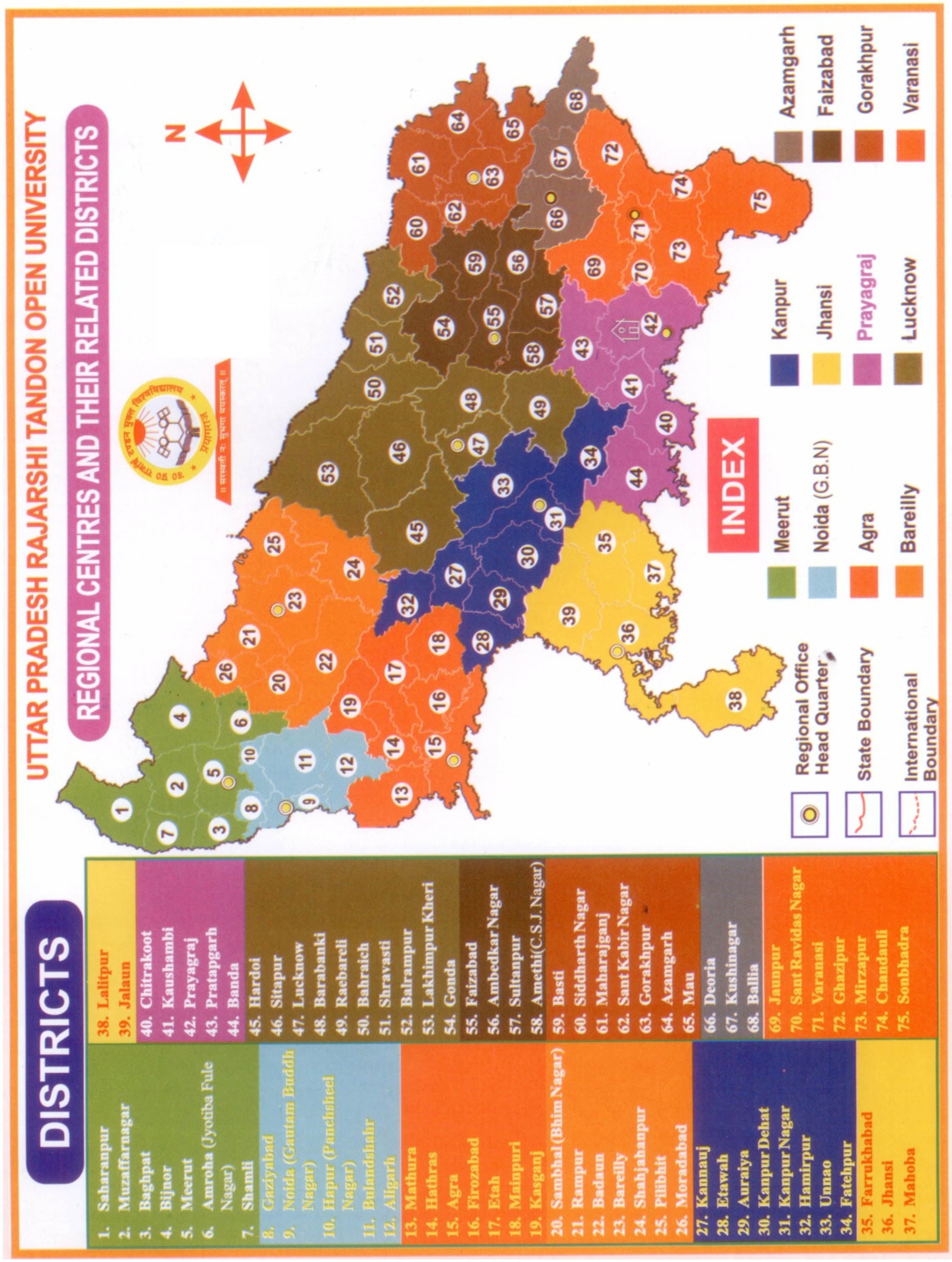

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333